रुद्रसंहिता, तृतीय (पार्वती) खण्ड

हिमालयके स्थावर-जंगम द्विविध स्वरूप एवं दिव्यत्वका वर्णन, मेनाके साथ उनका विवाह तथा मेना आदिको पूर्वजन्ममें प्राप्त हुए सनकादिके शाप एवं वरदानका कथन

नारदजीने पूछा—ब्रह्मन्! पिताके यज्ञमें अपने शरीरका परित्याग करके दक्षकन्या जगदम्बा सती देवी किस प्रकार गिरिराज हिमालयकी पुत्री हुईं? किस तरह अत्यन्त उग्र तपस्या करके उन्होंने पुनः शिवको ही पतिरूपमें प्राप्त किया? यह मेरा प्रश्न है, आप इसपर भलीभाँति और विशेषरूपसे प्रकाश डालिये।

ब्रह्माजीने कहा—मुने! नारद! तुम पहले पार्वतीकी माताके जन्म, विवाह और अन्य भक्तिवर्धक पावन चरित्र सुनो। मुनिश्रेष्ठ! उत्तर दिशामें पर्वतोंका राजा हिमवान् नामक महान् पर्वत है, जो महातेजस्वी और समृद्धिशाली है। उसके दो रूप प्रसिद्ध हैं—एक स्थावर और दूसरा जंगम। मैं संक्षेपसे उसके सूक्ष्म (स्थावर) स्वरूपका वर्णन करता हूँ। वह रमणीय पर्वत नाना प्रकारके रत्नोंका आकर (खान) है और पूर्व तथा पश्चिम समुद्रके भीतर प्रवेश करके इस तरह खड़ा है, मानो भूमण्डलको नापनेके लिये कोई मानदण्ड हो। वह नाना प्रकारके वृक्षोंसे व्याप्त है और अनेक शिखरोंके कारण विचित्र शोभासे सम्पन्न दिखायी देता है। सिंह, व्याघ्र आदि पशु सदा सुखपूर्वक उसका सेवन करते हैं। हिमका तो वह भंडार ही है, इसलिये अत्यन्त उग्र जान पड़ता है। भाँति-भाँतिके आश्चर्यजनक दृश्योंसे उसकी विचित्र शोभा होती है। देवता, ऋषि, सिद्ध और मुनि उस पर्वतका आश्रय लेकर रहते हैं। भगवान् शिवको वह बहुत ही प्रिय है, तपस्या करनेका स्थान है। स्वरूपसे ही वह अत्यन्त पवित्र और महात्माओंको भी पावन करनेवाला है। तपस्यामें वह अत्यन्त शीघ्र सिद्धि प्रदान करता है। अनेक प्रकारके धातुओंकी खान और शुभ है। वही दिव्य शरीर धारण करके सर्वाङ्ग-सुन्दर रमणीय देवताके रूपमें भी स्थित है। भगवान् विष्णुका अविकृत अंश है, इसीलिये वह शैलराज साधु-संतोंको अधिक प्रिय है।

एक समय गिरिवर हिमवान्‌ने अपनी कुल-परम्पराकी स्थिति और धर्मकी वृद्धिके लिये देवताओं तथा पितरोंका हित करनेकी अभिलाषासे अपना विवाह करनेकी इच्छा की। मुनीश्वर! उस अवसरपर सम्पूर्ण देवता अपने स्वार्थका विचार करके दिव्य पितरोंके पास आकर उनसे प्रसन्नतापूर्वक बोले।

देवताओंने कहा—पितरो! आप सब लोग प्रसन्नचित्त होकर हमारी बात सुनें और यदि देवताओंका कार्य सिद्ध करना आपको भी अभीष्ट हो तो शीघ्र वैसा ही करें। आपकी ज्येष्ठ पुत्री जो मेना नामसे प्रसिद्ध है, वह मङ्गलरूपिणी है। उसका विवाह आपलोग अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक हिमवान् पर्वतसे कर दें। ऐसा करनेपर आप सब लोगोंको सर्वथा महान् लाभ होगा और देवताओंके दुःखोंका निवारण भी पग-पगपर होता रहेगा।

देवताओंकी यह बात सुनकर पितरोंने

परस्पर विचार करके स्वीकृति दे दी और अपनी पुत्री मेनाको विधिपूर्वक हिमालयके हाथमें दे दिया। उस परम मङ्गलमय विवाहमें बड़ा उत्सव मनाया गया। मुनीश्वर नारद! मेनाके साथ हिमालयके शुभ विवाहका यह सुखद प्रसङ्ग मैंने तुमसे प्रसन्नतापूर्वक कहा है। अब और क्या सुनना चाहते हो?

नारदजीने पूछा—विधे! विद्वन्! अब आदरपूर्वक मेरे सामने मेनाकी उत्पत्तिका वर्णन कीजिये। उसे किस प्रकार शाप प्राप्त हुआ था, यह कहिये और मेरे संदेहका निवारण कीजिये।

ब्रह्माजी बोले—मुने! मैंने अपने दक्ष नामक जिस पुत्रकी पहले चर्चा की है, उनके साठ कन्याएँ हुई थीं, जो सृष्टिकी उत्पत्तिमें कारण बनीं। नारद! दक्षने कश्यप आदि श्रेष्ठ मुनियोंके साथ उनका विवाह किया था, यह सब वृत्तान्त तो तुम्हें विदित ही है। अब प्रस्तुत विषयको सुनो। उन कन्याओंमें एक स्वधा नामकी कन्या थी, जिसका विवाह उन्होंने पितरोंके साथ किया। स्वधाकी तीन पुत्रियाँ थीं, जो सौभाग्य-शालिनी तथा धर्मकी मूर्ति थीं। उनमेंसे ज्येष्ठ पुत्रीका नाम 'मेना' था। मँझली 'धन्या'के नामसे प्रसिद्ध थी और सबसे छोटी कन्याका नाम 'कलावती' था। ये सारी कन्याएँ पितरोंकी मानसी पुत्रियाँ थीं—उनके मनसे प्रकट हुई थीं। इनका जन्म किसी माताके गर्भसे नहीं हुआ था, अतएव ये अयोनिजा थीं; केवल लोकव्यवहारसे स्वधाकी पुत्री मानी जाती थीं। इनके सुन्दर नामोंका कीर्तन करके मनुष्य सम्पूर्ण अभीष्टको प्राप्त कर लेता है। ये सदा सम्पूर्ण जगत्‌की वन्दनीया लोकमाताएँ हैं और उत्तम अभ्युदयसे सुशोभित रहती हैं। सब-की-सब परम योगिनी, ज्ञाननिधि तथा तीनों लोकोंमें सर्वत्र जा सकनेवाली हैं। मुनीश्वर! एक समय वे तीनों बहिनें भगवान् विष्णुके निवासस्थान श्वेतद्वीपमें उनका दर्शन करनेके लिये गयीं। भगवान् विष्णुको प्रणाम और भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति करके वे उन्हींकी आज्ञासे वहाँ ठहर गयीं। उस समय वहाँ संतोंका बड़ा भारी समाज एकत्र हुआ था।

मुने! उसी अवसरपर मेरे पुत्र सनकादि सिद्धगण भी वहाँ गये और श्रीहरिकी स्तुति-वन्दना करके उन्हींकी आज्ञासे वहाँ ठहर गये। सनकादि मुनि देवताओंके आदिपुरुष और सम्पूर्ण लोकोंमें वन्दित हैं। वे जब वहाँ आकर खड़े हुए, उस समय श्वेतद्वीपके सब लोग उन्हें देख प्रणाम करते हुए उठकर खड़े हो गये। परंतु ये तीनों बहिनें उन्हें देखकर भी वहाँ नहीं उठीं। इससे सनत्कुमारने उनको (मर्यादा-रक्षार्थ) उन्हें स्वर्गसे दूर होकर नर-स्त्री बननेका शाप दे दिया। फिर उनके प्रार्थना करनेपर वे प्रसन्न हो गये और बोले।

सनत्कुमारने कहा—पितरोंकी तीनों कन्याओ! तुम प्रसन्नचित्त होकर मेरी बात सुनो। यह तुम्हारे शोकका नाश करनेवाली और सदा ही तुम्हें सुख देनेवाली है। तुममेंसे जो ज्येष्ठ है, वह भगवान् विष्णुकी अंशभूत हिमालय गिरिकी पत्नी हो। उससे जो कन्या होगी, वह 'पार्वती'के नामसे विख्यात होगी। पितरोंकी दूसरी प्रिय कन्या, योगिनी धन्या राजा जनककी पत्नी होगी। उसकी कन्याके रूपमें महालक्ष्मी अवतीर्ण होंगी, जिनका नाम 'सीता' होगा। इसी प्रकार पितरोंकी छोटी पुत्री कलावती द्वापरके

अन्तिम भागमें वृषभानु वैश्यकी पत्नी होगी और उसकी प्रिय पुत्री 'राधा'के नामसे विख्यात होगी। योगिनी मेनका (मेना) पार्वतीजीके वरदानसे अपने पतिके साथ उसी शरीरसे कैलास नामक परमपदको प्राप्त हो जायगी। धन्या तथा उनके पति, जनककुलमें उत्पन्न हुए जीवन्मुक्त महायोगी राजा सीरध्वज, लक्ष्मीस्वरूपा सीताके प्रभावसे वैकुण्ठ धाममें जायँगे। वृषभानुके साथ वैवाहिक मङ्गलकृत्य सम्पन्न होनेके कारण जीवन्मुक्त योगिनी कलावती भी अपनी कन्या राधाके साथ गोलोकधाममें जायगी—इसमें संशय नहीं है। विपत्तिमें पड़े बिना कहाँ किनकी महिमा प्रकट होती है। उत्तम कर्म करनेवाले पुण्यात्मा पुरुषोंका संकट जब टल जाता है, तब उन्हें दुर्लभ सुखकी प्राप्ति होती है। अब तुमलोग प्रसन्नतापूर्वक मेरी दूसरी बात भी सुनो, जो सदा सुख देनेवाली है। मेनाकी पुत्री जगदम्बा पार्वती देवी अत्यन्त दुस्सह तप करके भगवान् शिवकी प्रिय पत्नी बनेगी। धन्याकी पुत्री सीता भगवान् श्रीरामजीकी पत्नी होंगी और लोकाचारका आश्रय ले श्रीरामके साथ विहार करेंगी। साक्षात् गोलोक-धाममें निवास करनेवाली राधा ही कलावतीकी पुत्री होंगी। वे गुप्त स्नेहमें बँधकर श्रीकृष्णकी प्रियतमा बनेंगी।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! इस प्रकार शापके व्याजसे दुर्लभ वरदान देकर सबके द्वारा प्रशंसित भगवान् सनत्कुमार मुनि भाइयोंसहित वहीं अन्तर्धान हो गये। तात! पितरोंकी मानसी पुत्री वे तीनों बहिनें इस प्रकार शापमुक्त हो सुख पाकर तुरंत अपने घरको चली गयीं। (अध्याय १-२)

☆

देवताओंका हिमालयके पास जाना और उनसे सत्कृत हो उन्हें उमाराधनकी विधि बता स्वयं भी एक सुन्दर स्थानमें जाकर उनकी स्तुति करना

नारदजी बोले—महामते! आपने मेनाके पूर्वजन्मकी यह शुभ एवं अद्भुत कथा कही है। उनके विवाहका प्रसङ्ग भी मैंने सुन लिया। अब आगेके उत्तम चरित्रका वर्णन कीजिये।

ब्रह्माजीने कहा—नारद! जब मेनाके साथ विवाह करके हिमवान् अपने घरको गये, तब तीनों लोकोंमें बड़ा भारी उत्सव मनाया गया। हिमालय भी अत्यन्त प्रसन्न हो मेनाके साथ अपने सुखदायक सदनमें निवास करने लगे। मुने! उस समय श्रीविष्णु आदि समस्त देवता और महात्मा मुनि गिरिराजके पास गये। उन सब देवताओंको आया देख महान् हिमगिरिने प्रशंसापूर्वक उन्हें प्रणाम किया और अपने भाग्यकी सराहना करते हुए भक्तिभावसे उन सबका आदर-सत्कार किया। हाथ जोड़ मस्तक झुकाकर वे बड़े प्रेमसे स्तुति करनेको उद्यत हुए। शैलराजके शरीरमें महान् रोमाञ्च हो आया। उनके नेत्रोंसे प्रेमके आँसू बहने लगे। मुने! हिमशैलने प्रसन्न मनसे अत्यन्त प्रेमपूर्वक प्रणाम किया और विनीतभावसे खड़े हो श्रीविष्णु आदि देवताओंसे कहा।

हिमाचल बोले—आज मेरा जन्म सफल हो गया, मेरी बड़ी भारी तपस्या

सफल हुई। आज मेरा ज्ञान सफल हुआ और आज मेरी सारी क्रियाएँ सफल हो गयीं। आज मैं धन्य हुआ। मेरी सारी भूमि धन्य हुई। मेरा कुल धन्य हुआ। मेरी स्त्री तथा मेरा सब कुछ धन्य हो गया, इसमें संशय नहीं है; क्योंकि आप सब महान् देवता एक साथ मिलकर एक ही समय यहाँ पधारे हैं। मुझे अपना सेवक समझकर प्रसन्नतापूर्वक उचित कार्यके लिये आज्ञा दें।

हिमगिरिका यह वचन सुनकर वे सब देवता बड़े प्रसन्न हुए और अपने कार्यकी सिद्धि मनाते हुए बोले।

देवताओंने कहा—महाप्राज्ञ हिमाचल! हमारा हितकारक वचन सुनो। हम सब लोग जिस कामके लिये यहाँ आये हैं, उसे प्रसन्नतापूर्वक बता रहे हैं। गिरिराज! पहले जो जगदम्बा उमा दक्षकन्या सतीके रूपमें प्रकट हुई थीं और रुद्रपत्नी होकर सुदीर्घकालतक इस भूतलपर क्रीड़ा करती रहीं, वे ही अम्बिका सती अपने पितासे अनादर पाकर अपनी प्रतिज्ञाका स्मरण करके यज्ञमें शरीर त्याग अपने परम धामको पधार गयीं। हिमगिरे! वह कथा लोकमें विख्यात है और तुम्हें भी विदित है। यदि वे सती पुनः तुम्हारे घरमें प्रकट हो जायँ तो देवताओंका महान् लाभ हो सकता है।

ब्रह्माजी कहते हैं—श्रीविष्णु आदि देवताओंकी यह बात सुनकर गिरिराज हिमालय मन-ही-मन प्रसन्न हो आदरसे झुक गये और बोले—'प्रभो! ऐसा हो तो बड़े सौभाग्यकी बात है।' तदनन्तर वे देवता उन्हें बड़े आदरसे उमाको प्रसन्न करनेकी विधि बताकर स्वयं सदाशिव-पत्नी उमाकी शरणमें गये। एक सुन्दर स्थानमें स्थित हो समस्त देवताओंने जगदम्बाका स्मरण किया और बारंबार प्रणाम करके वे वहाँ श्रद्धापूर्वक उनकी स्तुति करने लगे।

देवता बोले—शिवलोकमें निवास करनेवाली देवि! उमे! जगदम्बे! सदाशिव-प्रिये! दुर्गे! महेश्वरि! हम आपको नमस्कार करते हैं। आप पावन शान्तस्वरूप श्रीशक्ति हैं, परमपावन पुष्टि हैं। अव्यक्त प्रकृति और महत्तत्त्व—ये आपके ही रूप हैं। हम भक्तिपूर्वक आपको नमस्कार करते हैं। आप कल्याणमयी शिवा हैं। आपके हाथ भी कल्याणकारी हैं। आप शुद्ध, स्थूल, सूक्ष्म और सबका परम आश्रय हैं। अन्तर्विद्या और सुविद्यासे अत्यन्त प्रसन्न रहनेवाली आप देवीको हम प्रणाम करते हैं। आप श्रद्धा हैं। आप धृति हैं। आप श्री हैं और आप ही सबमें व्याप्त रहनेवाली देवी हैं। आप ही सूर्यकी किरणें हैं और आप ही अपने प्रपञ्चको प्रकाशित करनेवाली हैं। ब्रह्माण्डरूप शरीरमें और जगत्के जीवोंमें रहकर जो ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त सम्पूर्ण जगत्की पुष्टि करती हैं, उन आदिदेवीको हम नमस्कार करते हैं। आप ही वेदमाता गायत्री हैं, आप ही सावित्री और सरस्वती हैं। आप ही सम्पूर्ण जगत्के लिये वार्ता नामक वृत्ति हैं और आप ही धर्मस्वरूपा वेदत्रयी हैं। आप ही सम्पूर्ण भूतोंमें निद्रा बनकर रहती हैं। उनकी क्षुधा और तृप्ति भी आप ही हैं। आप ही तृष्णा, कान्ति, छवि, तुष्टि और सदा सम्पूर्ण आनन्दको देनेवाली हैं। आप ही पुण्यकर्ताओंके यहाँ लक्ष्मी बनकर रहती हैं और आप ही पापियोंके घर सदा ज्येष्ठा (लक्ष्मीकी बड़ी बहिन दरिद्रता) के रूपमें वास करती हैं। आप ही सम्पूर्ण

जगत्‌की शान्ति हैं। आप ही धारण करनेवाली धात्री एवं प्राणोंका पोषण करनेवाली शक्ति हैं। आप ही पाँचों भूतोंके सारतत्त्वको प्रकट करनेवाली तत्त्वस्वरूपा हैं। आप ही नीतिज्ञोंकी नीति तथा व्यवसायरूपिणी हैं। आप ही सामवेदकी गीति हैं। आप ही ग्रन्थि हैं। आप ही यजुर्मन्त्रोंकी आहुति हैं। ऋग्वेदकी मात्रा तथा अथर्ववेदकी परम गति भी आप ही हैं। जो प्राणियोंके नाक, कान, नेत्र, मुख, भुजा, वक्षःस्थल और हृदयमें धृतिरूपसे स्थित हो सदा ही उनके लिये सुखका विस्तार करती हैं। जो निद्राके रूपमें संसारके लोगोंको अत्यन्त सुभग प्रतीत होती हैं, वे देवी उमा जगत्‌की स्थिति एवं पालनके लिये हम सबपर प्रसन्न हों।

इस प्रकार जगज्जननी सती-साध्वी महेश्वरी उमाकी स्तुति करके अपने हृदयमें विशुद्ध प्रेम लिये वे सब देवता उनके दर्शनकी इच्छासे वहाँ खड़े हो गये।

(अध्याय ३)

☆

उमा देवीका दिव्यरूपसे देवताओंको दर्शन देना, देवताओंका उनसे अपना अभिप्राय निवेदन करना और देवीका अवतार लेनेकी बात स्वीकार करके देवताओंको आश्वासन देना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! देवताओंके इस प्रकार स्तुति करनेपर दुर्गम पीड़ाका नाश करनेवाली जगज्जननी देवी दुर्गा उनके सामने प्रकट हुईं। वे परम अद्भुत दिव्य

रत्नमय रथपर बैठी हुई थीं। उस श्रेष्ठ रथमें घुँघुरू लगे हुए थे और मुलायम बिस्तर बिछे थे। उनके श्रीविग्रहका एक-एक अङ्ग करोड़ों सूर्योंसे भी अधिक प्रकाशमान और रमणीय था। ऐसे अवयवोंसे वे अत्यन्त उद्भासित हो रही थीं। सब ओर फैली हुई अपनी तेजोराशिके मध्यभागमें वे विराजमान थीं। उनका रूप बहुत ही सुन्दर था और उनकी छविकी कहीं तुलना नहीं थी। सदाशिवके साथ विलास करनेवाली उन महामायाकी किसीके साथ समानता नहीं थी। शिवलोकमें निवास करनेवाली वे देवी त्रिविध चिन्मय गुणोंसे युक्त थीं। प्राकृत गुणोंका अभाव होनेसे उन्हें निर्गुणा कहा जाता है। वे नित्यरूपा हैं। वे दुष्टोंपर प्रचण्ड क्रोप करनेके कारण चण्डी कहलाती हैं, परंतु स्वरूपसे शिवा (कल्याणमयी) हैं। सबकी सम्पूर्ण पीड़ाओंका नाश करनेवाली तथा सम्पूर्ण जगत्‌की माता हैं। वे ही

प्रलयकालमें महानिद्रा होकर सबको अपने अङ्कमें सुला लेती हैं तथा वे समस्त स्वजनों (भक्तों)का संसार-सागरसे उद्धार कर देती हैं। शिवादेवीकी तेजोराशिके प्रभावसे देवता उन्हें अच्छी तरह देख न सके। तब उनके दर्शनकी अभिलाषासे देवताओंने फिर उनका स्तवन किया। तदनन्तर दर्शनकी इच्छा रखनेवाले विष्णु आदि सब देवता उन जगदम्बाकी कृपा पाकर वहाँ उनका सुस्पष्ट दर्शन कर सके।

इसके बाद देवता बोले—अम्बिके! महादेवि! हम सदा आपके दास हैं। आप प्रसन्नतापूर्वक हमारा निवेदन सुनें। पहले आप दक्षकी पुत्रीरूपसे अवतीर्ण हो लोकमें रुद्रदेवकी वल्लभा हुई थीं। उस समय आपने ब्रह्माजीके तथा दूसरे देवताओंके महान् दुःखका निवारण किया था। तदनन्तर पितासे अनादर पाकर अपनी की हुई प्रतिज्ञाके अनुसार आपने शरीरको त्याग दिया और स्वधाममें पधार आयीं। इससे भगवान् हरको भी बड़ा दुःख हुआ। महेश्वरि! आपके चले आनेसे देवताओंका कार्य पूरा नहीं हुआ। अतः हम देवता और मुनि व्याकुल होकर आपकी शरणमें आये हैं। महेशानि! शिवे! आप देवताओंका मनोरथ पूर्ण करें, जिससे सनत्कुमारका वचन सफल हो। देवि! आप भूतलपर अवतीर्ण हो पुनः रुद्रदेवकी पत्नी होइये और यथायोग्य ऐसी लीला कीजिये, जिससे देवताओंको सुख प्राप्त हो। देवि! इससे कैलास पर्वतपर निवास करनेवाले रुद्रदेव भी सुखी होंगे। आप ऐसी कृपा करें, जिससे सब सुखी हों और सबका सारा दुःख नष्ट हो जाय।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! ऐसा कहकर विष्णु आदि सब देवता प्रेममें मग्न हो गये और भक्तिसे विनम्र होकर चुपचाप खड़े रहे। देवताओंकी यह स्तुति सुनकर शिवादेवीको भी बड़ी प्रसन्नता हुई। उसके हेतुका विचार करके अपने प्रभु शिवका स्मरण करती हुई भक्तवत्सला दयामयी उमादेवी उस समय विष्णु आदि देवताओंको सम्बोधित करके हँसकर बोलीं।

उमाने कहा—हे हरे! हे विधे! और हे देवताओ तथा मुनियो! तुम सब लोग अपने मनसे व्यथाको निकाल दो और मेरी बात सुनो। मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, इसमें संशय नहीं है। सब लोग अपने-अपने स्थानको जाओ और चिरकालतक सुखी रहो। मैं अवतार ले मेनाकी पुत्री होकर उन्हें सुख दूँगी और रुद्रदेवकी पत्नी हो जाऊँगी। यह मेरा अत्यन्त गुप्त मत है। भगवान् शिवकी लीला अद्भुत है। वह ज्ञानियोंको भी मोहमें डालनेवाली है। देवताओ! उस यज्ञमें जाकर पिताके द्वारा अपने स्वामीका अनादर देख जबसे मैंने दक्षजनित शरीरको त्याग दिया है, तभीसे वे मेरे स्वामी कालाग्नि रुद्रदेव तत्काल दिगम्बर हो गये। वे मेरी ही चिन्तामें डूबे रहते हैं। उनके मनमें यह विचार उठा करता है कि धर्मको जाननेवाली सती मेरा रोष देखकर पिताके यज्ञमें गयी और वहाँ मेरा अनादर देख मुझमें प्रेम होनेके कारण उसने अपना शरीर त्याग दिया। यही सोचकर वे घर-बार छोड़ अलौकिक वेष धारण करके योगी हो गये। मेरी स्वरूपभूता सतीके वियोगको वे महेश्वर सहन न कर सके। देवताओ! भगवान् रुद्रकी भी यह अत्यन्त इच्छा है कि भूतलपर मेना और

हिमाचलके घरमें मेरा अवतार हो; क्योंकि वे पुनः मेरा पाणिग्रहण करनेकी अधिक अभिलाषा रखते हैं। अतः मैं रुद्रदेवके संतोषके लिये अवतार लूँगी और लौकिक गतिका आश्रय लेकर हिमालय-पत्नी मेनाकी पुत्री होऊँगी।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! ऐसा कहकर जगदम्बा शिवा उस समय समस्त देवताओंके देखते-देखते ही अदृश्य हो गयीं और तुरंत अपने लोकमें चली गयीं। तदनन्तर हर्षसे भरे हुए विष्णु आदि समस्त देवता और मुनि उस दिशाको प्रणाम करके अपने-अपने धाममें चले गये।

(अध्याय ४)

☆

मेनाको प्रत्यक्ष दर्शन देकर शिवादेवीका उन्हें अभीष्ट वरदानसे संतुष्ट करना तथा मेनासे मैनाकका जन्म

नारदजीने पूछा—पिताजी! जब देवी दुर्गा अन्तर्धान हो गयीं और देवगण अपने-अपने धामको चले गये, उसके बाद क्या हुआ?

ब्रह्माजीने कहा—मेरे पुत्रोंमें श्रेष्ठ विप्रवर नारद! जब विष्णु आदि देवसमुदाय हिमालय और मेनाको देवीकी आराधनाका उपदेश दे चले गये, तब गिरिराज हिमाचल और मैना दोनों दम्पतिने बड़ी भारी तपस्या आरम्भ की। वे दिन-रात शम्भु और शिवाका चिन्तन करते हुए भक्तियुक्त चित्तसे नित्य उनकी सम्यक् रीतिसे आराधना करने लगे। हिमवान्‌की पत्नी मेना बड़ी प्रसन्नतासे शिवसहित शिवादेवीकी पूजा करने लगीं। वे उन्हींके संतोषके लिये सदा ब्राह्मणोंको दान देती रहती थीं। मनमें संतानकी कामना ले मेना चैत्रमासके आरम्भसे लेकर सत्ताईस वर्षोंतक प्रतिदिन तत्परतापूर्वक शिवा-देवीकी पूजा और आराधनामें लगी रहीं। वे अष्टमीको उपवास करके नवमीको लड्डू, बलि-सामग्री, पीठी, खीर और गन्ध-पुष्प आदि देवीको भेंट करती थीं। गङ्गाके किनारे ओषधिप्रस्थमें उमाकी मिट्टीकी मूर्ति बनाकर नाना प्रकारकी वस्तुएँ समर्पित करके उसकी पूजा करती थीं। मेनादेवी कभी निराहार रहतीं, कभी व्रतके नियमोंका पालन करतीं, कभी जल पीकर रहतीं और कभी हवा पीकर ही रह जाती थीं। विशुद्ध तेजसे चमकती हुई दीक्षिता मेनाने प्रेमपूर्वक शिवामें चित्त लगाये सत्ताईस वर्ष व्यतीत कर दिये। सत्ताईस वर्ष पूरे होनेपर जगन्मयी शंकरकामिनी जगदम्बा उमा अत्यन्त प्रसन्न हुईं। मेनाकी उत्तम भक्तिसे संतुष्ट हो वे परमेश्वरी देवी उनपर अनुग्रह करनेके लिये उनके सामने प्रकट हुईं। तेजोमण्डलके बीचमें विराजमान तथा दिव्य अवयवोंसे संयुक्त उमादेवी प्रत्यक्ष दर्शन दे मेनासे हँसती हुई बोलीं।

देवीने कहा—गिरिराज हिमालयकी रानी महासाध्वी मेना! मैं तुम्हारी तपस्यासे बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हारे मनमें जो अभिलाषा हो, उसे कहो। मेना! तुमने तपस्या, व्रत और समाधिके द्वारा जिस-जिस वस्तुके लिये प्रार्थना की है, वह सब मैं तुम्हें दूँगी। तब मेनाने प्रत्यक्ष प्रकट हुई कालिकादेवीको देखकर प्रणाम किया और इस प्रकार कहा।

मेना बोलीं—देवि ! इस समय मुझे आपके रूपका प्रत्यक्ष दर्शन हुआ है। अतः मैं आपकी स्तुति करना चाहती हूँ। कालिके ! इसके लिये आप प्रसन्न हों।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! मेनाके ऐसा कहनेपर सर्वमोहिनी कालिका देवीने मनमें अत्यन्त प्रसन्न हो अपनी दोनों बाहोंसे खींचकर मेनाको हृदयसे लगा लिया। इससे उन्हें तत्काल महाज्ञानकी प्राप्ति हो गयी। फिर तो मेनादेवी प्रिय वचनोंद्वारा भक्ति-भावसे अपने सामने खड़ी हुई कालिकाकी स्तुति करने लगीं।

मेना बोलीं—जो महामाया जगत्‌को धारण करनेवाली चण्डिका, लोकधारिणी तथा सम्पूर्ण मनोवाञ्छित पदार्थोंको देनेवाली हैं, उन महादेवीको मैं प्रणाम करती हूँ। जो नित्य आनन्द प्रदान करनेवाली माया, योगनिद्रा, जगज्जननी तथा सुन्दर कमलोंकी मालासे अलंकृत हैं, उन नित्य-सिद्धा उमादेवीको मैं नमस्कार करती हूँ। जो सबकी मातामही, नित्य आनन्दमयी, भक्तोंके शोकका नाश करनेवाली तथा कल्पपर्यन्त नारियों एवं प्राणियोंकी बुद्धिरूपिणी हैं, उन देवीको मैं प्रणाम करती हूँ। आप यतियोंके अज्ञानमय बन्धनके नाशकी हेतुभूता ब्रह्मविद्या हैं। फिर मुझ-जैसी नारियाँ आपके प्रभावका क्या वर्णन कर सकती हैं। अथर्ववेदकी जो हिंसा (मारण आदिका प्रयोग) है, वह आप ही हैं। देवि ! आप मेरे अभीष्ट फलको सदा प्रदान कीजिये। भावहीन (आकाररहित) तथा अदृश्य नित्यानित्य तन्मात्राओंसे आप ही पञ्चभूतोंके समुदायको संयुक्त करती हैं। आप ही उनकी शाश्वत शक्ति हैं। आपका स्वरूप नित्य है। आप समय-समयपर योगयुक्त एवं समर्थ नारीके रूपमें प्रकट होती हैं। आप ही जगत्‌की योनि और आधार-शक्ति हैं। आप ही प्राकृत तत्त्वोंसे परे नित्या प्रकृति कही गयी हैं। जिसके द्वारा ब्रह्मके स्वरूपको वशमें किया जाता (जाना जाता) है, वह नित्या विद्या आप ही हैं। मातः ! आज मुझपर प्रसन्न होइये। आप ही अग्निके भीतर व्याप्त उग्र दाहिका शक्ति हैं। आप ही सूर्य-किरणोंमें स्थित प्रकाशिका शक्ति हैं। चन्द्रमामें जो आह्लादिका शक्ति है, वह भी आप ही हैं। ऐसी आप चण्डी देवीका मैं स्तवन और वन्दन करती हूँ। आप स्त्रियोंको बहुत प्रिय हैं। ऊर्ध्वरिता ब्रह्मचारियोंकी ध्येयभूता नित्या ब्रह्मशक्ति

भी आप ही हैं। सम्पूर्ण जगत्‌की वाञ्छा तथा श्रीहरिकी माया भी आप ही हैं। जो देवी इच्छानुसार रूप धारण करके सृष्टि, पालन और संहारमयी हो उन कार्योंका सम्पादन करती हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्रके शरीरकी भी हेतुभूता हैं, वे आप ही हैं। देवि! आज आप मुझपर प्रसन्न हों। आपको पुनः मेरा नमस्कार है।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! मेनाके इस प्रकार स्तुति करनेपर दुर्गा कालिकाने पुनः उन मेनादेवीसे कहा—'तुम अपना मनोवाञ्छित वर माँग लो। हिमाचलप्रिये! तुम मुझे प्राणोंके समान प्यारी हो। तुम्हारी जो इच्छा हो, वह माँगो। उसे मैं निश्चय ही दे दूँगी। तुम्हारे लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है।'

महेश्वरी उमाका यह अमृतके समान मधुर वचन सुनकर हिमगिरिकामिनी मेना बहुत संतुष्ट हुईं और इस प्रकार बोलीं—'शिवे! आपकी जय हो, जय हो। उत्कृष्ट ज्ञानवाली महेश्वरि! जगदम्बिके! यदि मैं वर पानेके योग्य हूँ तो फिर आपसे श्रेष्ठ वर माँगती हूँ। जगदम्बे! पहले तो मुझे सौ पुत्र हों। उन सबकी बड़ी आयु हो। वे बल-पराक्रमसे युक्त तथा ऋद्धि-सिद्धिसे सम्पन्न हों। उन पुत्रोंके पश्चात् मेरे एक पुत्री हो, जो स्वरूप और गुणोंसे सुशोभित होनेवाली हो; वह दोनों कुलोंको आनन्द देनेवाली तथा तीनों लोकोंमें पूजित हो। जगदम्बिके! शिवे! आप ही देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये मेरी पुत्री तथा रुद्रदेवकी पत्नी होइये और तदनुसार लीला कीजिये।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! मेनकाकी बात सुनकर प्रसन्नहृदया देवी उमाने उनके मनोरथको पूर्ण करनेके लिये मुसकराकर कहा।

देवी बोलीं—पहले तुम्हें सौ बलवान् पुत्र प्राप्त होंगे। उनमें भी एक सबसे अधिक बलवान् और प्रधान होगा, जो सबसे पहले उत्पन्न होगा। तुम्हारी भक्तिसे संतुष्ट हो मैं स्वयं तुम्हारे यहाँ पुत्रीके रूपमें अवतीर्ण होऊँगी और समस्त देवताओंसे सेवित हो उनका कार्य सिद्ध करूँगी।

ऐसा कहकर जगद्धात्री परमेश्वरी कालिका शिवा मेनकाके देखते-देखते वहीं अदृश्य हो गयीं। तात! महेश्वरीसे अभीष्ट वर पाकर मेनकाको भी अपार हर्ष हुआ। उनका तपस्या-जनित सारा क्लेश नष्ट हो गया। मुने! फिर कालक्रमसे मेनाके गर्भ रहा और वह प्रतिदिन बढ़ने लगा। समयानुसार उसने एक उत्तम पुत्रको उत्पन्न किया, जिसका नाम मैनाक था। उसने समुद्रके साथ उत्तम मैत्री बाँधी। वह अद्भुत पर्वत नागवधुओंके उपभोगका स्थल बना हुआ है। उसके समस्त अङ्ग श्रेष्ठ हैं। हिमालयके सौ पुत्रोंमें वह सबसे श्रेष्ठ और महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न है। अपनेसे या अपने बाद प्रकट हुए समस्त पर्वतोंमें एकमात्र मैनाक ही पर्वतराजके पदपर प्रतिष्ठित है।

(अध्याय ५)

देवी उमाका हिमवान्‌के हृदय तथा मेनाके गर्भमें आना, गर्भस्था देवीका देवताओंद्वारा स्तवन, उनका दिव्यरूपमें प्रादुर्भाव, माता मेनासे बातचीत तथा नवजात कन्याके रूपमें परिवर्तित होना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! तदनन्तर मेना और हिमालय आदरपूर्वक देव-कार्यकी सिद्धिके लिये कन्याप्राप्तिके हेतु वहाँ जगज्जननी भगवती उमाका चिन्तन करने लगे। जो प्रसन्न होनेपर सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाली हैं, वे महेश्वरी उमा अपने पूर्ण अंशसे गिरिराज हिमवान्‌के चित्तमें प्रविष्ट हुईं। इससे उनके शरीरमें अपूर्व एवं सुन्दर प्रभा उतर आयी। वे आनन्दमग्न हो अत्यन्त प्रकाशित होने लगे। उस अद्भुत तेजोराशिसे सम्पन्न महामना हिमालय अग्निके समान अधृष्य हो गये थे। तत्पश्चात् सुन्दर कल्याणकारी समयमें गिरिराज हिमालयने अपनी प्रिया मेनाके उदरमें शिवाके उस परिपूर्ण अंशका आधान किया। इस तरह गिरिराजकी पत्नी मेनाने हिमवान्‌के हृदयमें विराजमान करुणानिधान देवीकी कृपासे सुखदायक गर्भ धारण किया। सम्पूर्ण जगत्‌की निवासभूता देवीके गर्भमें आनेसे गिरिप्रिया मेना सदा तेजोमण्डलके बीचमें स्थित होकर अधिक शोभा पाने लगीं। अपनी प्रिया शुभाङ्गी मेनाको देखकर गिरिराज हिमवान् बड़ी प्रसन्नताका अनुभव करने लगे। गर्भमें जगदम्बाके आ जानेसे वे महान् तेजसे सम्पन्न हो गयी थीं। मुने ! उस अवसरमें विष्णु आदि देवता और मुनियोंने वहाँ आकर गर्भमें निवास करनेवाली शिवा-देवीकी स्तुति की और तदनन्तर महेश्वरीकी नाना प्रकारसे स्तुति करके प्रसन्नचित्त हुए वे सब देवता अपने-अपने धामको चले गये। जब नवाँ महीना बीत गया और दसवाँ भी पूरा हो चला, तब जगदम्बा कालिकाने समय पूर्ण होनेपर गर्भस्थ शिशुकी जो गति होती है, उसीको धारण किया अर्थात् जन्म ले लिया। उस अवसरपर आद्याशक्ति सती-साध्वी शिवा पहले मेनाके सामने अपने ही रूपसे प्रकट हुईं। वसन्त ऋतुमें चैत्र मासकी नवमी तिथिको मृगशिरा नक्षत्रमें आधी रातके समय चन्द्रमण्डलसे आकाशगङ्गाकी भाँति मेनकाके उदरसे देवी शिवाका अपने ही स्वरूपमें प्रादुर्भाव हुआ। उस समय सम्पूर्ण संसारमें प्रसन्नता छा गयी। अनुकूल हवा चलने लगी, जो सुन्दर, सुगन्धित एवं गम्भीर थी। उस समय जलकी वर्षाके साथ फूलोंकी वृष्टि हुई। विष्णु आदि सब देवता वहाँ आये। सबने सुखी होकर प्रसन्नताके साथ जगदम्बाके दर्शन किये और शिव-लोकमें निवास करनेवाली दिव्यरूपा महामाया शिवकामिनी मङ्गलमयी कालिका माताका स्तवन किया।

नारद ! जब देवतालोग स्तुति करके चले गये, तब मेनका उस समय प्रकट हुई नील कमल-दलके समान कान्तिवाली श्यामवर्णा देवीको देखकर अतिशय आनन्दका अनुभव करने लगीं। देवीके उस दिव्य रूपका दर्शन करके गिरिप्रिया मेनाको ज्ञान प्राप्त हो गया। वे उन्हें परमेश्वरी समझकर अत्यन्त हर्षसे उल्लसित हो उठीं और संतोषपूर्वक बोलीं।

मेनाने कहा—जगदम्बे ! महेश्वरि ! आपने बड़ी कृपा की, जो मेरे सामने प्रकट हुईं। अम्बिके ! आपकी बड़ी शोभा हो रही है। शिवे ! आप सम्पूर्ण शक्तियोंमें आद्याशक्ति तथा तीनों लोकोंकी जननी हैं। देवि ! आप भगवान् शिवको सदा ही प्रिय हैं तथा सम्पूर्ण देवताओंसे प्रशंसित पराशक्ति हैं। महेश्वरि ! आप कृपा करें और इसी रूपसे मेरे ध्यानमें स्थित हो जायँ। साथ ही मेरी पुत्रीके अनुरूप प्रत्यक्ष दर्शनीय रूप धारण करें।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! पर्वत-पत्नी मेनाकी यह बात सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुई शिवादेवीने उस गिरिप्रियाको इस प्रकार उत्तर दिया।

देवी बोलीं—मेना ! तुमने पहले तत्परतापूर्वक मेरी बड़ी सेवा की थी। उस समय तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्न हो मैं वर देनेके लिये तुम्हारे निकट आयी। 'वर माँगो' मेरी इस वाणीको सुनकर तुमने जो वर माँगा, वह इस प्रकार है—'महादेवि ! आप मेरी पुत्री हो जायँ और देवताओंका हित-साधन करें।' तब मैंने 'तथास्तु' कहकर तुम्हें सादर यह वर दे दिया और मैं अपने धामको चली गयी। गिरिकामिनि ! उस वरके अनुसार समय पाकर आज मैं तुम्हारी पुत्री हुई हूँ। आज मैंने जो दिव्य रूपका दर्शन कराया है, इसका उद्देश्य इतना ही है कि तुम्हें मेरे स्वरूपका स्मरण हो जाय; अन्यथा मनुष्य-रूपमें प्रकट होनेपर मेरे विषयमें तुम अनजान ही बनी रहतीं। अब तुम दोनों दम्पति पुत्रीभावसे अथवा दिव्यभावसे मेरा निरन्तर चिन्तन करते हुए मुझमें स्नेह रखो। इससे मेरी उत्तम गति प्राप्त होगी। मैं पृथ्वीपर अद्भुत लीला करके देवताओंका कार्य सिद्ध करूँगी। भगवान् शम्भुकी पत्नी होऊँगी और सज्जनोंका संकटसे उद्धार करूँगी।

ऐसा कहकर जगन्माता शिवा चुप हो गयीं और उसी क्षण माताके देखते-देखते प्रसन्नतापूर्वक नवजात पुत्रीके रूपमें परिवर्तित हो गयीं।

(अध्याय ६)

☆

पार्वतीका नामकरण और विद्याध्ययन, नारदका हिमवान्‌के यहाँ जाना, पार्वतीका हाथ देखकर भावी फल बताना, चिन्तित हुए हिमवान्‌को आश्वासन दे पार्वतीका विवाह शिवजीके साथ करनेको कहना और उनके संदेहका निवारण करना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! मेनाके सामने महातेजस्विनी कन्या होकर लौकिक गतिका आश्रय ले वह रोने लगी। उसका मनोहर रुदन सुनकर घरकी सब स्त्रियाँ हर्षसे खिल उठीं और बड़े वेगसे प्रसन्नतापूर्वक वहाँ आ पहुँचीं। नील कमल-दलके समान श्याम कान्तिवाली उस परम तेजस्विनी और मनोरम कन्याको देखकर गिरिराज हिमालय अतिशय आनन्दमें निमग्न हो गये। तदनन्तर सुन्दर मुहूर्तमें मुनियोंके साथ हिमवान्‌ने अपनी पुत्रीके काली आदि सुखदायक नाम रखे। देवी शिवा गिरिराजके भवनमें

दिनोंदिन बढ़ने लगीं—ठीक उसी तरह, जैसे वर्षाके समयमें गङ्गाजीकी जलराशि और शरद्-ऋतुके शुक्लपक्षमें चाँदनी बढ़ती है। सुशीलता आदि गुणोंसे संयुक्त तथा बन्धुजनोंकी प्यारी उस कन्याको कुटुम्बके लोग अपने कुलके अनुरूप पार्वती नामसे पुकारने लगे। माताने कालिकाको 'उ मा' (अरी ! तपस्या मत कर) कहकर तप करनेसे रोका था। मुने ! इसलिये यह सुन्दर मुखवाली गिरिराजनन्दिनी आगे चलकर लोकमें उमाके नामसे विख्यात हो गयी। नारद ! तदनन्तर जब विद्याके उपदेशका समय आया, तब शिवादेवी अपने चित्तको एकाग्र करके बड़ी प्रसन्नताके साथ श्रेष्ठ गुरुसे विद्या पढ़ने लगीं। पूर्वजन्मकी सारी विद्याएँ उन्हें उसी तरह प्राप्त हो गयीं, जैसे शरत्कालमें हंसोंकी पाँत अपने-आप स्वर्गङ्गाके तटपर पहुँच जाती है और रात्रिमें अपना प्रकाश स्वतः महौषधियोंको प्राप्त हो जाता है। मुने ! इस प्रकार मैंने शिवाकी किसी एक लीलाका ही वर्णन किया है। अब अन्य लीलाका वर्णन करूँगा, सुनो।

एक समयकी बात है तुम भगवान् शिवकी प्रेरणासे प्रसन्नतापूर्वक हिमाचलके घर गये। मुने ! तुम शिवतत्त्वके ज्ञाता और उनकी लीलाके जानकारोंमें श्रेष्ठ हो। नारद ! गिरिराज हिमालयने तुम्हें घरपर आया देख प्रणाम करके तुम्हारी पूजा की और अपनी पुत्रीको बुलाकर उससे तुम्हारे चरणोंमें प्रणाम करवाया। मुनीश्वर ! फिर स्वयं ही तुम्हें नमस्कार करके हिमाचलने अपने सौभाग्यकी सराहना की और अत्यन्त मस्तक झुका हाथ जोड़कर तुमसे कहा।

हिमालय बोले—हे मुने नारद ! हे ब्रह्मपुत्रोंमें श्रेष्ठ ज्ञानवान् प्रभो ! आप सर्वज्ञ हैं और कृपापूर्वक दूसरोंके उपकारमें लगे रहते हैं। मेरी पुत्रीकी जन्मकुण्डलीमें जो गुण-दोष हो, उसे बताइये। मेरी बेटी किसकी सौभाग्यवती प्रिय पत्नी होगी।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ ! तुम बातचीतमें कुशल और कौतुकी तो हो ही, गिरिराज हिमालयके ऐसा कहनेपर तुमने कालिकाका हाथ देखा और उसके सम्पूर्ण अङ्गोंपर विशेषरूपसे दृष्टिपात करके हिमालयसे इस प्रकार कहना आरम्भ किया।

नारद बोले—शैलराज और मेना ! आपकी यह पुत्री चन्द्रमाकी आदिकलाके समान बढ़ी है। समस्त शुभ लक्षण इसके अङ्गोंकी शोभा बढ़ाते हैं। यह अपने पतिके लिये अत्यन्त सुखदायिनी होगी और माता-पिताकी भी कीर्ति बढ़ायेगी। संसारकी समस्त नारियोंमें यह परम साध्वी और स्वजनोंको सदा महान् आनन्द देनेवाली होगी। गिरिराज ! तुम्हारी पुत्रीके हाथमें

सब उत्तम लक्षण ही विद्यमान हैं। केवल एक रेखा विलक्षण है, उसका यथार्थ फल सुनो। इसे ऐसा पति प्राप्त होगा, जो योगी, नंग-धड़ङ्ग रहनेवाला, निर्गुण और निष्काम होगा। उसके न माँ होगी न बाप। उसे मान-सम्मानका भी कोई खयाल नहीं रहेगा और वह सदा अमङ्गल वेष धारण करेगा।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! तुम्हारी इस बातको सुन और सत्य मानकर मेना तथा हिमाचल दोनो पति-पत्नी बहुत दुःखित हुए, परंतु जगदम्बा शिवा तुम्हारे ऐसे वचनको सुनकर और लक्षणोंद्वारा उस भावी पतिको शिव मानकर मन-ही-मन हर्षसे खिल उठीं। 'नारदजीकी बात कभी झूठ नहीं हो सकती' यह सोचकर शिवा भगवान् शिवके युगल-चरणोंमें सम्पूर्ण हृदयसे अत्यन्त स्नेह करने लगीं। नारद! उस समय मन-ही-मन दुःखी हो हिमवान्‌ने तुमसे कहा— 'मुने! उस रेखाका फल सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ है। मैं अपनी पुत्रीको उससे बचानेके लिये क्या उपाय करूँ?'

'मुने! तुम महान् कौतुक करनेवाले और वार्तालाप-विशारद हो।' हिमवान्‌की बात सुनकर अपने मङ्गलकारी वचनोंद्वारा उनका हर्ष बढ़ाते हुए तुमने इस प्रकार कहा।

नारद बोले—गिरिराज! तुम स्नेहपूर्वक सुनो, मेरी बात सच्ची है। वह झूठ नहीं होगी। हाथकी रेखा ब्रह्माजीकी लिपि है। निश्चय ही वह मिथ्या नहीं हो सकती। अतः शैलप्रवर! इस कन्याको वैसा ही पति मिलेगा, इसमें संशय नहीं। परंतु इस रेखाके कुफलसे बचनेके लिये एक उपाय भी है, उसे प्रेमपूर्वक सुनो। उसे करनेसे तुम्हें सुख मिलेगा। मैंने जैसे वरका निरूपण किया है, वैसे ही भगवान् शंकर हैं। वे सर्वसमर्थ हैं और लीलाके लिये अनेक रूप धारण करते रहते हैं। उनमें समस्त कुलक्षण सद्गुणोंके समान हो जायँगे। समर्थ पुरुषमें कोई दोष भी हो तो वह उसे दुःख नहीं देता। असमर्थके लिये ही वह दुःखदायक होता है। इस विषयमें सूर्य, अग्नि और गङ्गाका दृष्टान्त सामने रखना चाहिये। इसलिये तुम विवेकपूर्वक अपनी कन्या शिवाको भगवान् शिवके हाथमें सौंप दो। भगवान् शिव सबके ईश्वर, सेव्य, निर्विकार, सामर्थ्यशाली और अविनाशी हैं। वे जल्दी ही प्रसन्न हो जाते हैं। अतः शिवाको ग्रहण कर लेंगे, इसमें संशय नहीं है। विशेषतः वे तपस्यासे वशमें हो जाते हैं। यदि शिवा तप करे तो सब काम ठीक हो जायगा। सर्वेश्वर शिव सब प्रकारसे समर्थ हैं। वे इन्द्रके वज्रका भी विनाश कर सकते हैं। ब्रह्माजी उनके अधीन हैं तथा वे सबको सुख देनेवाले हैं। पार्वती भगवान् शंकरकी प्यारी पत्नी होगी। वह सदा रुद्रदेवके अनुकूल रहेगी; क्योंकि यह महासाध्वी और उत्तम व्रतका पालन करनेवाली है तथा माता-पिताके सुखको बढ़ानेवाली है। यह तपस्या करके भगवान् शिवके मनको अपने वशमें कर लेगी और वे भगवान् भी इसके सिवा किसी दूसरी स्त्रीसे विवाह नहीं करेंगे। इन दोनोंका प्रेम एक-दूसरेके अनुरूप है। वैसा उच्चकोटिका प्रेम न तो किसीका हुआ है, न इस समय है और न आगे होगा। गिरिश्रेष्ठ! इन्हें देवताओंके कार्य करने हैं। उनके जो-जो काम नष्टप्राय हो गये हैं, उन सबका इनके द्वारा पुनः उज्जीवन या उद्धार होगा। अद्रिराज! आपकी कन्याको पाकर ही

भगवान् हर अर्द्धनारीश्वर होंगे। इन दोनोंका पुनः हर्षपूर्वक मिलन होगा। आपकी यह पुत्री अपनी तपस्याके प्रभावसे सर्वेश्वर महेश्वरको संतुष्ट करके उनके शरीरके आधे भागको अपने अधिकारमें कर लेगी, उनका अर्धाङ्ग बन जायगी। गिरिश्रेष्ठ! तुम्हें अपनी यह कन्या भगवान् शंकरके सिवा दूसरे किसीको नहीं देनी चाहिये। यह देवताओंका गुप्त रहस्य है, इसे कभी प्रकाशित नहीं करना चाहिये।

हिमालयने कहा—ज्ञानी मुने नारद! मैं आपको एक बात बता रहा हूँ, उसे प्रेमपूर्वक सुनिये और आनन्दका अनुभव कीजिये। सुना जाता है, महादेवजी सब प्रकारकी आसक्तियोंका त्याग करके अपने मनको संयममें रखते हुए नित्य तपस्या करते हैं। देवताओंकी भी दृष्टिमें नहीं आते। देवर्षे! ध्यानमार्गमें स्थित हुए वे भगवान् शम्भु परब्रह्ममें लगाये हुए अपने मनको कैसे हटायेंगे? ध्यान छोड़कर विवाह करनेको कैसे उद्यत होंगे? इस विषयमें मुझे महान् संदेह है। दीपककी लौके समान प्रकाशमान, अविनाशी, प्रकृतिसे परे, निर्विकार, निर्गुण, सगुण, निर्विशेष और निरीह जो परब्रह्म है, वही उनका अपना सदाशिव नामक स्वरूप है। अतः वे उसीका सर्वत्र साक्षात्कार करते हैं, किसी बाह्य—अनात्मवस्तुपर दृष्टि नहीं डालते। मुने! यहाँ आये हुए किंनरोंके मुखसे उनके विषयमें नित्य ऐसी ही बात सुनी जाती है। क्या वह बात मिथ्या ही है। विशेषतः यह बात भी सुननेमें आती है कि भगवान् हरने पूर्वकालमें सतीके समक्ष एक प्रतिज्ञा की थी। उन्होंने कहा था—'दक्षकुमारी प्यारी सती! मैं तुम्हारे सिवा दूसरी किसी स्त्रीका अपनी पत्नी बनानेके लिये न वरण करूँगा न ग्रहण। यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ।' इस प्रकार सतीके साथ उन्होंने पहले ही प्रतिज्ञा कर ली है। अब सतीके मर जानेपर वे दूसरी किसी स्त्रीको कैसे ग्रहण करेंगे?

यह सुनकर तुम (नारद) ने कहा—महामते! गिरिराज! इस विषयमें तुम्हें चिन्ता नहीं करनी चाहिये। तुम्हारी यह पुत्री काली ही पूर्वकालमें दक्षकन्या सती हुई थी। उस समय इसीका सदा सर्वमङ्गलदायी सती नाम था। वे सती दक्षकन्या होकर रुद्रकी प्यारी पत्नी हुई थीं। उन्होंने पिताके यज्ञमें अनादर पाकर तथा भगवान् शंकरका भी अपमान हुआ देख क्रोधपूर्वक अपने शरीरको त्याग दिया था। वे ही सती फिर तुम्हारे घरमें उत्पन्न हुई हैं। तुम्हारी पुत्री साक्षात् जगदम्बा शिवा है। यह पार्वती भगवान् हरकी पत्नी होगी, इसमें संशय नहीं है।

नारद! ये सब बातें तुमने हिमवान्को विस्तारपूर्वक बतायीं। पार्वतीका वह पूर्वरूप और चरित्र प्रीतिको बढ़ानेवाला है। कालीके उस सम्पूर्ण पूर्ववृत्तान्तको तुम्हारे मुखसे सुनकर हिमवान् अपनी पत्नी और पुत्रके साथ तत्काल संदेहरहित हो गये। इसी तरह तुम्हारे मुखसे अपनी उस पूर्वकथाको सुनकर कालीने लज्जाके मारे मस्तक झुका लिया और उसके मुखपर मन्द मुस्कानकी प्रभा फैल गयी। गिरिराज हिमालय पार्वतीके उस चरित्रको सुनकर उसके माथेपर हाथ फेरने लगे और मस्तक सूँघकर उसे अपने आसनके पास ही बिठा लिया।

नारद! इसके पश्चात् तुम उसी क्षण

प्रसन्नतापूर्वक स्वर्गलोकको चले गये और गिरिराज हिमवान् भी मन-ही-मन मनोहर आनन्दसे युक्त हो अपने सर्वसम्पत्तिशाली भवनमें प्रविष्ट हो गये। (अध्याय ७-८)

☆

मेना और हिमालयकी बातचीत, पार्वती तथा हिमवान्‌के स्वप्न तथा भगवान् शिवसे 'मंगल' ग्रहकी उत्पत्तिका प्रसंग

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! जब तुम स्वर्गलोकको चले गये, तबसे कुछ काल और व्यतीत हो जानेपर एक दिन मेनाने हिमवान्‌के निकट जाकर उन्हें प्रणाम किया। फिर खड़ी हो वे गिरिकामिनी मेना अपने पतिसे विनयपूर्वक बोलीं।

मेनाने कहा—प्राणनाथ! उस दिन नारद मुनिने जो बात कही थी, उसको स्त्री-स्वभावके कारण मैंने अच्छी तरह नहीं समझा; मेरी तो यह प्रार्थना है कि आप कन्याका विवाह किसी सुन्दर वरके साथ कर दीजिये। वह विवाह सर्वथा अपूर्व सुख देनेवाला होगा। गिरिजाका वर शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न और कुलीन होना चाहिये। मेरी बेटी मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है। वह उत्तम वर पाकर जिस प्रकार भी प्रसन्न और सुखी हो सके, वैसा कीजिये। आपको मेरा नमस्कार है।

ऐसा कहकर मेना अपने पतिके चरणोंपर गिर पड़ीं। उस समय उनके मुखपर आँसुओंकी धारा बह रही थी। प्राज्ञशिरोमणि हिमवान्‌ने उन्हें उठाया और यथावत् समझाना आरम्भ किया।

हिमालय बोले—देवि मेनके! मैं यथार्थ और तत्त्वकी बात बताता हूँ सुनो! भ्रम छोड़ो। मुनिकी बात कभी झूठी नहीं हो सकती। यदि बेटीपर तुम्हें स्नेह है तो उसे सादर शिक्षा दो कि वह भक्तिपूर्वक सुस्थिर चित्तसे भगवान् शंकरके लिये तप करे। मेनके! यदि भगवान् शिव प्रसन्न होकर कालीका पाणिग्रहण कर लेते हैं तो सब शुभ ही होगा। नारदजीका बताया हुआ अमङ्गल या अशुभ नष्ट हो जायगा। शिवके समीप सारे अमङ्गल सदा मङ्गलरूप हो जाते हैं। इसलिये तुम पुत्रीको शिवकी प्राप्तिके लिये तपस्या करनेकी शीघ्र शिक्षा दो।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! हिमवान्‌की यह बात सुनकर मेनाको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे तपस्यामें रुचि उत्पन्न करनेके लिये पुत्रीको उपदेश देनेके निमित्त उसके पास गयीं। परंतु बेटीके सुकुमार अङ्गपर दृष्टिपात करके मेनाके मनमें बड़ी व्यथा हुई। उनके दोनों नेत्रोंमें तुरंत आँसू भर आये। फिर तो

गिरिप्रिया मेनामें अपनी पुत्रीको उपदेश देनेकी शक्ति नहीं रह गयी। अपनी माताकी उस चेष्टाको पार्वतीजी शीघ्र ही ताड़ गयीं। तब वे सर्वज्ञ परमेश्वरी कालिका देवी माताको बारंबार आश्वासन दे तुरंत बोलीं।

पार्वतीने कहा—मा! तुम बड़ी समझदार हो। मेरी यह बात सुनो। आज पिछली रात्रिके समय ब्राह्ममुहूर्तमें मैंने एक स्वप्न देखा है, उसे बताती हूँ। माताजी! स्वप्नमें एक दयालु एवं तपस्वी ब्राह्मणने मुझे शिवकी प्रसन्नताके लिये उत्तम तपस्या करनेका प्रसन्नतापूर्वक उपदेश दिया है।

नारद! यह सुनकर मेनकाने शीघ्र अपने पतिको बुलाया और पुत्रीके देखे हुए स्वप्नको पूर्णतः कह सुनाया। मेनकाके मुखसे पुत्रीके स्वप्नको सुनकर गिरिराज हिमालय बड़े प्रसन्न हुए और अपनी प्रिय पत्नीको समझाते हुए बोले।

गिरिराजने कहा—प्रिये! पिछली रातमें मैंने भी एक स्वप्न देखा है। मैं आदरपूर्वक उसे बताता हूँ। तुम प्रेमपूर्वक उसे सुनो। एक बड़े उत्तम तपस्वी थे। नारदजीने वरके जैसे लक्षण बताये थे, उन्हीं लक्षणोंसे युक्त शरीरको उन्होंने धारण कर रखा था। वे बड़ी प्रसन्नताके साथ मेरे नगरके निकट तपस्या करनेके लिये आये। उन्हें देखकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ और मैं अपनी पुत्रीको साथ लेकर उनके पास गया। उस समय मुझे ज्ञात हुआ कि नारदजीके बताये हुए वर भगवान् शम्भु ये ही हैं। तब मैंने उन तपस्वीकी सेवाके लिये अपनी पुत्रीको उपदेश देकर उनसे भी प्रार्थना की कि ये इसकी सेवा स्वीकार करें। परंतु उस समय उन्होंने मेरी बात नहीं मानी, इतनेमें ही वहाँ सांख्य और वेदान्तके अनुसार बहुत बड़ा विवाद छिड़ गया। तदनन्तर उनकी आज्ञासे मेरी बेटी वहीं रह गयी और अपने हृदयमें उन्हींकी कामना रखकर भक्तिपूर्वक उनकी सेवा करने लगी। सुमुखि! यही मेरा देखा हुआ स्वप्न है, जिसे मैंने तुम्हें बता दिया। अतः प्रिये मेने! कुछ कालतक इस स्वप्नके फलकी परीक्षा या प्रतीक्षा करनी चाहिये, इस समय यही उचित जान पड़ता है। तुम निश्चित समझो, यही मेरा विचार है।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुनीश्वर नारद! ऐसा कहकर गिरिराज हिमवान् और मेनका शुद्ध हृदयसे उस स्वप्नके फलकी परीक्षा एवं प्रतीक्षा करने लगे।

देवर्षे! शिवभक्तशिरोमणे! भगवान् शंकरका यश परम पावन, मङ्गलकारी, भक्तिवर्धक और उत्तम है। तुम इसे आदरपूर्वक सुनो। दक्ष-यज्ञसे अपने निवासस्थान कैलास पर्वतपर आकर भगवान् शम्भु प्रियाविरहसे कातर हो गये और प्राणोंसे भी अधिक प्यारी सती देवीका हृदयसे चिन्तन करने लगे। अपने पार्षदोंको बुलाकर सतीके लिये शोक करते हुए उनके प्रेमवर्द्धक गुणोंका अत्यन्त प्रीतिपूर्वक वर्णन करने लगे। यह सब उन्होंने सांसारिक गतिको दिखानेके लिये किया। फिर, गृहस्थ-आश्रमकी सुन्दर स्थिति तथा नीति-रीतिका परित्याग करके वे दिगम्बर हो गये और सब लोकोंमें उन्मत्तकी भाँति भ्रमण करने लगे। लीलाकुशल होनेके कारण विरहीकी अवस्थाका प्रदर्शन करने लगे। सतीके विरहसे दुःखित हो कहीं भी उनका दर्शन न पाकर भक्तकल्याणकारी भगवान् शंकर पुनः कैलासगिरिपर लौट आये और

मनको यत्नपूर्वक एकाग्र करके उन्होंने समाधि लगा ली, जो समस्त दुःखोंका नाश करनेवाली है। समाधिमें वे अविनाशी स्वरूपका दर्शन करने लगे। इस तरह तीनों गुणोंसे रहित हो वे भगवान् शिव चिरकालतक सुस्थिर भावसे समाधि लगाये बैठे रहे। वे प्रभु स्वयं ही मायाके अधिपति निर्विकार परब्रह्म हैं। तदनन्तर जब असंख्य वर्ष व्यतीत हो गये, तब उन्होंने समाधि छोड़ी। उसके बाद तुरंत ही जो चरित्र हुआ, उसे मैं तुम्हें बताता हूँ। भगवान् शिवके ललाटसे उस समय श्रमजनित पसीनेकी एक बूँद पृथ्वीपर गिरी और तत्काल एक शिशुके रूपमें परिणत हो गयी। मुने! उस बालककी चार भुजाएँ थीं, शरीरकी कान्ति लाल थी और आकार मनोहर था। दिव्य द्युतिसे दीप्तिमान् वह शोभाशाली बालक अत्यन्त दुस्सह तेजसे सम्पन्न था, तथापि उस समय लोकाचार-परायण परमेश्वर शिवके आगे वह साधारण शिशुकी भाँति रोने लगा। यह देख पृथ्वी भगवान् शंकरसे भय मान उत्तम बुद्धिसे विचार करनेके पश्चात् सुन्दरी स्त्रीका रूप धारण करके वहीं प्रकट हो गयीं। उन्होंने उस सुन्दर बालकको तुरंत उठाकर अपनी गोदमें रख लिया और अपने ऊपर प्रकट होनेवाले दूधको ही स्तन्यके रूपमें उसे पिलाने लगीं। उन्होंने स्नेहसे उसका मुँह चूमा और अपना ही बालक मान हँस-हँसकर उसे खेलाने लगीं। परमेश्वर शिवका हितसाधन करनेवाली पृथ्वी देवी सच्चे भावसे स्वयं उसकी माता बन गयीं।

संसारकी सृष्टि करनेवाले, परम कौतुकी एवं विद्वान् अन्तर्यामी शम्भु वह चरित्र देखकर हँस पड़े और पृथ्वीको पहचानकर उनसे बोले—'धरणि! तुम धन्य हो! मेरे इस पुत्रका प्रेमपूर्वक पालन करो। यह श्रेष्ठ शिशु मुझ महातेजस्वी शम्भुके श्रमजल (पसीने) से तुम्हारे ही ऊपर उत्पन्न हुआ है। वसुधे! यह प्रियकारी बालक यद्यपि मेरे श्रमजलसे प्रकट हुआ है, तथापि तुम्हारे नामसे तुम्हारे ही पुत्रके रूपमें इसकी ख्याति होगी। यह सदा त्रिविध तापोंसे रहित होगा। अत्यन्त गुणवान् और भूमि देनेवाला होगा। यह मुझे भी सुख प्रदान करेगा। तुम इसे अपनी रुचिके अनुसार ग्रहण करो।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! ऐसा कहकर भगवान् शिव चुप हो गये। उनके हृदयसे विरहका प्रभाव कुछ कम हो गया। उनमें विरह क्या था, वे लोकाचारका पालन कर रहे थे। वास्तवमें सत्पुरुषोंके प्रिय श्रीरुद्रदेव निर्विकार परमात्मा ही हैं। शिवकी उपर्युक्त आज्ञाको शिरोधार्य करके पुत्रसहित पृथ्वीदेवी शीघ्र ही अपने स्थानको चली गयीं। उन्हें आत्यन्तिक सुख मिला। वह बालक 'भौम' नामसे प्रसिद्ध हो युवा होनेपर तुरंत काशी चला गया और वहाँ उसने दीर्घकालतक भगवान् शंकरकी सेवा की। विश्वनाथजीकी कृपासे ग्रहकी पदवी पाकर वे भूमिकुमार शीघ्र ही श्रेष्ठ एवं दिव्यलोकमें चले गये, जो शुक्रलोकसे परे है। (अध्याय ९-१०)

☆

भगवान् शिवका गङ्गावतरण तीर्थमें तपस्याके लिये आना, हिमवान्‌द्वारा उनका स्वागत, पूजन और स्तवन तथा भगवान् शिवकी आज्ञाके अनुसार उनका उस स्थानपर दूसरोंको न जाने देनेकी व्यवस्था करना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! हिमवान्‌की पुत्री लोकपूजित शक्तिस्वरूपा पार्वती हिमालयके घरमें रहकर बढ़ने लगीं। जब उनकी अवस्था आठ वर्षकी हो गयी, तब सतीके विरहसे कातर हुए शम्भुको उनके जन्मका समाचार मिला। नारद ! उस अद्भुत बालिका पार्वतीको हृदयमें रखकर वे मन-ही-मन बड़े आनन्दका अनुभव करने लगे। इसी बीचमें लौकिक गतिका आश्रय ले शम्भुने अपने मनको एकाग्र करनेके लिये तप करनेका विचार किया। नन्दी आदि कुछ शान्त पार्षदोंको साथ ले वे हिमालयके उत्तम शिखरपर गङ्गावतार[1] नामक तीर्थमें चले आये, जहाँ पूर्वकालमें ब्रह्मधामसे च्युत होकर समस्त पापराशिका विनाश करनेके लिये चली हुई परम पावनी गङ्गा पहले-पहल भूतलपर अवतीर्ण हुई थीं। जितेन्द्रिय हरने वहीं रहकर तपस्या आरम्भ की। वे आलस्यरहित हो चेतन, ज्ञानस्वरूप, नित्य, ज्योतिर्मय, निरामय, जगन्मय, चिदानन्द-स्वरूप, द्वैतहीन तथा आश्रयरहित अपने आत्मभूत परमात्माका एकाग्रभावसे चिन्तन करने लगे। भगवान् हरके ध्यान-परायण होनेपर नन्दी-भृङ्गी आदि कुछ अन्य पार्षदगण भी ध्यानमें तत्पर हो गये। उस समय कुछ ही प्रमथगण परमात्मा शम्भुकी सेवा करते थे। वे सब-के-सब मौन रहते और एक शब्द भी नहीं बोलते थे। कुछ द्वारपाल हो गये थे।

इसी समय गिरिराज हिमवान् उस ओषधि-बहुल शिखरपर भगवान् शंकरका शुभागमन सुनकर उनके प्रति आदरकी भावनासे वहाँ आये। आकर सेवकोंसहित गिरिराजने भगवान् रुद्रको प्रणाम किया, उनकी पूजा की और अत्यन्त प्रसन्न हो हाथ जोड़ उनका सुन्दर स्तवन किया। फिर हिमालयने कहा—

'प्रभो ! मेरे सौभाग्यका उदय हुआ है, जो आप यहाँ पधारे हैं। आपने मुझे सनाथ कर दिया। क्यों न हो, महात्माओंने यह ठीक ही

---

१. गङ्गोत्तरी।

वर्णन किया है कि आप दीनवत्सल हैं। आज मेरा जन्म सफल हो गया। आज मेरा जीवन सफल हुआ और आज मेरा सब कुछ सफल हो गया; क्योंकि आपने यहाँ पदार्पण करनेका कष्ट उठाया है। महेश्वर ! आप मुझे अपना दास समझकर शान्तभावसे मुझे सेवाके लिये आज्ञा दीजिये। मैं बड़ी प्रसन्नतासे अनन्यचित्त होकर आपकी सेवा करूँगा।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! गिरिराजका यह वचन सुनकर महेश्वरने किंचित् आँखें खोलीं और सेवकोंसहित हिमवान्‌को देखा। सेवकोंसहित गिरिराजको उपस्थित देख ध्यानयोगमें स्थित हुए जगदीश्वर वृषभध्वजने मुसकराते हुए-से कहा।

महेश्वर बोले—शैलराज ! मैं तुम्हारे शिखरपर एकान्तमें तपस्या करनेके लिये आया हूँ। तुम ऐसा प्रबन्ध करो, जिससे कोई भी मेरे निकट न आ सके। तुम महात्मा हो, तपस्याके धाम हो तथा मुनियों, देवताओं, राक्षसों और अन्य महात्माओंको भी सदा आश्रय देनेवाले हो। द्विज आदिका तुम्हारे ऊपर सदा ही निवास रहता है। तुम गङ्गासे अभिषिक्त होकर सदाके लिये पवित्र हो गये हो। दूसरोंका उपकार करनेवाले तथा सम्पूर्ण पर्वतोंके सामर्थ्यशाली राजा हो। गिरिराज ! मैं यहाँ गङ्गावतरण-स्थलमें तुम्हारे आश्रित होकर आत्मसंयमपूर्वक बड़ी प्रसन्नताके साथ तपस्या करूँगा। शैलराज ! गिरिश्रेष्ठ ! जिस साधनसे यहाँ मेरी तपस्या बिना किसी विघ्न-बाधाके चालू रह सके, उसे इस समय प्रयत्नपूर्वक करो। पर्वतप्रवर ! मेरी यही सबसे बड़ी सेवा है। तुम अपने घर जाओ और मैंने जो कुछ कहा है, उसका उत्तम प्रीतिसे यत्नपूर्वक प्रबन्ध करो।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ऐसा कहकर सृष्टिकर्ता जगदीश्वर भगवान् शम्भु चुप हो गये। उस समय गिरिराजने शम्भुसे प्रेमपूर्वक यह बात कही—'जगन्नाथ ! परमेश्वर ! आज मैंने अपने प्रदेशमें स्थित हुए आपका स्वागतपूर्वक पूजन किया है, यही मेरे लिये महान् सौभाग्यकी बात है। अब आपसे और क्या प्रार्थना करूँ। महेश्वर ! कितने ही देवता बड़े-बड़े यत्नका आश्रय ले महान् तप करके भी आपको नहीं पाते। वे ही आप यहाँ स्वयं उपस्थित हो गये। मुझसे बढ़कर श्रेष्ठ सौभाग्यशाली और पुण्यात्मा दूसरा कोई नहीं है; क्योंकि आप मेरे पृष्ठभागपर तपस्याके लिये उपस्थित हुए हैं। परमेश्वर ! आज मैं अपनेको देवराज इन्द्रसे भी अधिक भाग्यवान् मानता हूँ; क्योंकि सेवकोंसहित आपने यहाँ आकर मुझे अनुग्रहका भागी बना दिया। देवेश ! आप स्वतन्त्र हैं। यहाँ बिना किसी विघ्न-बाधाके उत्तम तपस्या कीजिये। प्रभो ! मैं आपका दास हूँ। अतः सदा आपकी आज्ञाके अनुसार सेवा करूँगा।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ऐसा कहकर गिरिराज हिमालय तुरंत अपने घरको लौट आये। उन्होंने अपनी प्रिया मेनाको बड़े आदरसे यह सारा वृत्तान्त कह सुनाया। तत्पश्चात् शैलराजने साथ जानेवाले परिजनों तथा समस्त सेवक-गणोंको बुलाकर उन्हें ठीक-ठीक समझाया।

हिमालय बोले—आजसे कोई भी

गङ्गावतरण नामक स्थानमें, जो मेरे पृष्ठभागमें ही है, मेरी आज्ञा मानकर न जाय। यह मैं सच्ची बात कहता हूँ। यदि कोई वहाँ जायगा तो उस महादुष्टको मैं विशेष दण्ड दूँगा। मुने! इस प्रकार अपने समस्त गणोंको शीघ्र ही नियन्त्रित करके हिमवान्‌ने विघ्ननिवारणके लिये जो सुन्दर प्रयत्न किया, वह तुम्हें बताता हूँ, सुनो। (अध्याय ११)

☆

हिमवान्‌का पार्वतीको शिवकी सेवामें रखनेके लिये उनसे आज्ञा माँगना और शिवका कारण बताते हुए इस प्रस्तावको अस्वीकार कर देना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! तदनन्तर शैलराज हिमालय उत्तम फल-फूल लेकर अपनी पुत्रीके साथ हर्षपूर्वक भगवान् हरके समीप गये। वहाँ जाकर उन्होंने ध्यान-परायण त्रिलोकीनाथ शिवको प्रणाम किया और अपनी अद्भुत कन्या कालीको हृदयसे उनकी सेवामें अर्पित कर दिया। फल-फूल आदि सारी सामग्री उनके सामने रखकर पुत्रीको आगे करके शैलराजने शम्भुसे कहा—'भगवन्! मेरी पुत्री आप भगवान् चन्द्रशेखरकी सेवा करनेके लिये उत्सुक है। अतः आपके आराधनकी इच्छासे मैं इसको साथ लाया हूँ। यह अपनी दो सखियोंके साथ सदा आप शंकरकी ही सेवामें रहे। नाथ! यदि आपका मुझपर अनुग्रह है तो इस कन्याको सेवाके लिये आज्ञा दीजिये।'

तब भगवान् शंकरने उस परम मनोहर कामरूपिणी कन्याको देखकर आँखें मूँद लीं और अपने त्रिगुणातीत, अविनाशी, परमतत्त्वमय उत्तम रूपका ध्यान आरम्भ किया। उस समय सर्वेश्वर एवं सर्वव्यापी जटाजूटधारी वेदान्तवेद्य चन्द्रकलाविभूषण शम्भु उत्तम आसनपर बैठकर नेत्र बंद किये तप (ध्यान) में ही लग गये। यह देख हिमाचलने मस्तक झुकाकर पुनः उनके चरणोंपें प्रणाम किया। यद्यपि उनके हृदयमें दीनता नहीं थी, तो भी वे उस समय इस संशयमें पड़ गये कि न जाने भगवान् मेरी प्रार्थना स्वीकार करेंगे या नहीं। वक्ताओंमें श्रेष्ठ गिरिराज हिमवान्‌ने जगत्‌के एकमात्र बन्धु भगवान् शिवसे इस प्रकार कहा।

हिमालय बोले—देवदेव! महादेव! करुणाकर! शंकर! विभो! मैं आपकी शरणमें आया हूँ। आँखें खोलकर मेरी ओर देखिये। शिव! शर्व! महेशान! जगत्‌को आनन्द प्रदान करनेवाले प्रभो! महादेव! आप सम्पूर्ण आपत्तियोंका निवारण करनेवाले हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। स्वामिन्! प्रभो! मैं अपनी इस पुत्रीके साथ प्रतिदिन आपका दर्शन करनेके लिये आऊँगा। इसके लिये आदेश दीजिये।

उनकी यह बात सुनकर देवदेव महेश्वरने आँखें खोलकर ध्यान छोड़ दिया और कुछ सोच-विचारकर कहा।

महेश्वर बोले—गिरिराज! तुम अपनी इस कुमारी कन्याको घरमें रखकर ही नित्य मेरे दर्शनको आ सकते हो, अन्यथा मेरा दर्शन नहीं हो सकता।

महेश्वरकी ऐसी बात सुनकर शिवाके पिता हिमवान् मस्तक झुकाकर उन भगवान् शिवसे बोले—'प्रभो! यह तो बताइये, किस कारणसे मैं इस कन्याके साथ आपके

दर्शनके लिये नहीं आ सकता। क्या यह

आपकी सेवाके योग्य नहीं है? फिर इसे नहीं लानेका क्या कारण है, यह मेरी समझमें नहीं आता।'

यह सुनकर भगवान् वृषभध्वज शम्भु हँसने लगे और विशेषतः दुष्ट योगियोंको लोकाचारका दर्शन कराते हुए वे हिमालयसे बोले— 'शैलराज! यह कुमारी सुन्दर कटिप्रदेशसे सुशोभित, तन्वङ्गी, चन्द्रमुखी और शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न है। इसलिये इसे मेरे समीप तुम्हें नहीं लाना चाहिये। इसके लिये मैं तुम्हें बारंबार रोकता हूँ। वेदके पारंगत विद्वानोंने नारीको मायारूपिणी कहा है। विशेषतः युवती स्त्री तो तपस्वीजनोंके तपमें विघ्न डालनेवाली ही होती है। गिरिश्रेष्ठ! मैं तपस्वी, योगी और सदा मायासे निर्लिप्त रहनेवाला हूँ। मुझे युवती स्त्रीसे क्या प्रयोजन है। तपस्वियोंके श्रेष्ठ आश्रय हिमालय! इसलिये फिर तुम्हें ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये, क्योंकि तुम वेदोक्त धर्ममें प्रवीण, ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ और विद्वान् हो। अचलराज! स्त्रीके सङ्गसे मनमें शीघ्र ही विषयवासना उत्पन्न हो जाती है। उससे वैराग्य नष्ट होता है और वैराग्य न होनेसे पुरुष उत्तम तपस्यासे भ्रष्ट हो जाता है। इसलिये शैल! तपस्वीको स्त्रियोंका संग नहीं करना चाहिये, क्योंकि स्त्री महाविषय-वासनाकी जड़ एवं ज्ञान-वैराग्यका विनाश करनेवाली होती है।' *

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! इस तरहकी बहुत-सी बातें कहकर महायोगिशिरोमणि भगवान् महेश्वर चुप हो गये। देवर्षे! शम्भुका यह निरामय, निःस्पृह और निष्ठुर वचन सुनकर कालीके पिता हिमवान् चकित, कुछ-कुछ व्याकुल और चुप हो गये। तपस्वी शिवकी कही हुई बात सुनकर और गिरिराज हिमवान्‌को चकित हुआ जानकर भवानी पार्वती उस समय भगवान् शिवको प्रणाम करके विशद वचन बोलीं।

(अध्याय १२)

☆

* भवत्यचल तत्सङ्गाद् विषयोत्पत्तिराशु वै। विनश्यति च वैराग्ये ततो भ्रश्यति सत्तपः॥
अतस्तपस्विना शैल न कार्या स्त्रीषु संगतिः। महाविषयमूले सा ज्ञानवैराग्यनाशिनी॥
(शि० पु० रु० सं० पा० खं० १२। ३१-३२)

पार्वती और शिवका दार्शनिक संवाद, शिवका पार्वतीको अपनी सेवाके लिये आज्ञा देना तथा पार्वतीद्वारा भगवान्‌की प्रतिदिन सेवा

भवानीने कहा—योगिन्! आपने तपस्वी होकर गिरिराजसे यह क्या बात कह डाली? प्रभो! आप ज्ञानविशारद हैं, तो भी अपनी बातका उत्तर मुझसे सुनिये। शम्भो! आप तपःशक्तिसे सम्पन्न होकर ही बड़ा भारी तप करते हैं। उस शक्तिके कारण ही आप महात्माको तपस्या करनेका विचार हुआ है। सभी कर्मोंको करनेकी जो वह शक्ति है, *वैसे ही प्रकृति जानना चाहिये।* प्रकृतिसे ही सबकी सृष्टि, पालन और संहार होते हैं। भगवन्! आप कौन हैं? और सूक्ष्म प्रकृति क्या है? इसका विचार कीजिये। प्रकृतिके बिना लिङ्गरूपी महेश्वर कैसे हो सकते हैं? आप सदा प्राणियोंके लिये जो अर्चनीय, वन्दनीय और चिन्तनीय हैं, वह प्रकृतिके ही कारण है। इस बातको हृदयसे विचारकर ही आपको जो कहना हो, वह सब कहिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! पार्वतीजीके इस वचनको सुनकर महती लीला करनेमें लगे हुए प्रसन्नचित्त महेश्वर हँसते हुए बोले।

महेश्वरने कहा—मैं उत्कृष्ट तपस्याद्वारा ही प्रकृतिका नाश करता हूँ और तत्त्वतः प्रकृतिरहित शम्भुके रूपमें स्थित होता हूँ। अतः सत्पुरुषोंको कभी या कहीं प्रकृतिका संग्रह नहीं करना चाहिये। लोकाचारसे दूर एवं निर्विकार रहना चाहिये।

नारद! जब शम्भुने लौकिक व्यवहारके अनुसार यह बात कही, तब काली मन-ही-मन हँसकर मधुर वाणीमें बोलीं।

कालीने कहा—कल्याणकारी प्रभो! योगिन्! आपने जो बात कही है, क्या वह वाणी प्रकृति नहीं है? फिर आप उससे परे क्यों नहीं हो गये? (क्यों प्रकृतिका सहारा लेकर बोलने लगे?) इन सब बातोंको विचार करके तात्त्विक दृष्टिसे जो यथार्थ बात हो, उसीको कहना चाहिये। यह सब कुछ सदा प्रकृतिसे बँधा हुआ है। इसलिये *आपको न तो बोलना चाहिये और न कुछ* करना ही चाहिये; क्योंकि कहना और करना—सब व्यवहार प्राकृत ही है। आप अपनी बुद्धिसे इसको समझिये। आप जो कुछ सुनते, खाते, देखते और करते हैं, वह सब प्रकृतिका ही कार्य है। झूठे वाद-विवाद करना व्यर्थ है। प्रभो! शम्भो! यदि आप प्रकृतिसे परे हैं तो इस समय इस हिमवान् पर्वतपर आप तपस्या किस लिये करते हैं? हर! प्रकृतिने आपको निगल लिया है। *अतः आप अपने स्वरूपको नहीं जानते।* ईश! आप यदि अपने स्वरूपको जानते हैं तो किस लिये तप करते हैं? योगिन्! मुझे आपके साथ वाद-विवाद करनेकी क्या आवश्यकता है? प्रत्यक्ष प्रमाण उपलब्ध होनेपर विद्वान् पुरुष अनुमान प्रमाणको नहीं मानते। जो कुछ प्राणियोंकी इन्द्रियोंका विषय होता है, वह सब ज्ञानी पुरुषोंको बुद्धिसे विचारकर प्राकृत ही मानना चाहिये। योगीश्वर! बहुत कहनेसे क्या *लाभ? मेरी उत्तम बात सुनिये। मैं प्रकृति* हूँ। आप पुरुष हैं। यह सत्य है, सत्य है। इसमें संशय नहीं है। मेरे अनुग्रहसे ही आप

सगुण और साकार माने गये हैं। मेरे बिना तो आप निरीह हैं। कुछ भी नहीं कर सकते हैं। आप जितेन्द्रिय होनेपर भी प्रकृतिके अधीन हो सदा नाना प्रकारके कर्म करते रहते हैं। फिर निर्विकार कैसे हैं? और मुझसे लिप्त कैसे नहीं? शंकर! यदि आप प्रकृतिसे परे हैं और यदि आपका यह कथन सत्य है तो आपको मेरे समीप रहनेपर भी डरना नहीं चाहिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—पार्वतीका यह सांख्य-शास्त्रके अनुसार कहा हुआ वचन सुनकर भगवान् शिव वेदान्तमतमें स्थित हो उनसे यों बोले।

श्रीशिवने कहा—सुन्दर भाषण करनेवाली गिरिजे! यदि तुम सांख्य-मतको धारण करके ऐसी बात कहती हो तो प्रतिदिन मेरी सेवा करो; परंतु वह सेवा शास्त्रनिषिद्ध नहीं होनी चाहिये।

गिरिजासे ऐसा कहकर भक्तोंपर अनुग्रह और उनका मनोरञ्जन करनेवाले भगवान् शिव हिमवान्‌से बोले।

शिवने कहा—गिरिराज! मैं यहीं तुम्हारे अत्यन्त रमणीय श्रेष्ठ शिखरकी भूमिपर उत्तम तपस्या तथा अपने आनन्दमय परमार्थस्वरूपका विचार करता हुआ विचरूँगा। पर्वतराज! आप मुझे यहाँ तपस्या करनेकी अनुमति दें। आपकी अनुज्ञाके बिना कोई तप नहीं किया जा सकता।

देवाधिदेव शूलधारी भगवान् शिवका यह कथन सुनकर हिमवान्‌ने उन्हें प्रणाम करके कहा—'महादेव! देवता, असुर और मनुष्योंसहित सम्पूर्ण जगत् तो आपका ही है। मैं तुच्छ होकर आपसे क्या कहूँ?'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! गिरिराज हिमवान्‌के ऐसा कहनेपर लोककल्याणकारी भगवान् शंकर हँस पड़े और आदरपूर्वक उनसे बोले—'अब तुम जाओ।' शंकरकी आज्ञा पाकर हिमवान् अपने घर लौट गये। वे गिरिजाके साथ प्रतिदिन उनके दर्शनके लिये आते थे। काली अपने पिताके बिना भी दोनों सखियोंके साथ नित्य शंकरजीके पास जातीं और भक्तिपूर्वक उनकी सेवामें लगी रहतीं। नन्दीश्वर आदि कोई भी गण उन्हें रोकता नहीं था। तात! महेश्वरके आदेशसे ही ऐसा होता था। प्रत्येक गण पवित्रतापूर्वक रहकर उनकी आज्ञाका पालन करता था। जो विचार करनेसे परस्पर अभिन्न सिद्ध होते हैं, उन्हीं शिवा और शिवने सांख्य और वेदान्त-मतमें स्थित हो जो कल्याणदायक संवाद किया, वह सर्वदा सुख देनेवाला है। यह संवाद मैंने यहाँ कह सुनाया। इन्द्रियातीत भगवान् शंकरने गिरिराजके कहनेसे उनका गौरव मानकर उनकी पुत्रीको अपने पास रखकर सेवा करनेके लिये स्वीकार कर लिया।

काली अपनी दो सखियोंके साथ चन्द्रशेखर महादेवजीकी सेवाके लिये प्रतिदिन आती-जाती रहती थीं। वे भगवान् शंकरके चरण धोकर उस चरणामृतका पान करती थीं। आगसे तपाकर शुद्ध किये हुए वस्त्रसे (अथवा गरम जलसे धोये हुए वस्त्रके द्वारा) उनके शरीरका मार्जन करतीं, उसे मलती-पोंछती थीं। फिर सोलह उपचारोंसे विधिवत् हरकी पूजा करके बारंबार उनके चरणोंमें प्रणाम करनेके पश्चात् प्रतिदिन पिताके घर लौट जाती रहीं। मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार ध्यानपरायण

शंकरकी सेवामें लगी हुई शिवाका महान् समय व्यतीत हो गया, तो भी वे अपनी इन्द्रियोंको संयममें रखकर पूर्ववत् उनकी सेवा करती रहीं। महादेवजीने जब फिर उन्हें अपनी सेवामें नित्य तत्पर देखा, तब वे दयासे द्रवित हो उठे और इस प्रकार विचार करने लगे—'यह काली जब तपश्चर्याव्रत करेगी और इसमें गर्वका बीज नहीं रह जायगा, तभी मैं इसका पाणिग्रहण करूँगा।'

ऐसा विचार करके महालीला करनेवाले महायोगीश्वर भगवान् भूतनाथ तत्काल ध्यानमें स्थित हो गये। मुने! परमात्मा शिव जब ध्यानमें लग गये, तब उनके हृदयमें दूसरी कोई चिन्ता नहीं रह गयी। काली प्रतिदिन महात्मा शिवके रूपका निरन्तर चिन्तन करती हुई उत्तम भक्तिभावसे उनकी सेवामें लगी रही। ध्यानपरायण भगवान् हर शुद्ध भावसे यहाँ रहती हुई कालीको नित्य देखते थे। फिर भी पूर्व चिन्ताको भुलाकर उन्हें देखते हुए भी नहीं देखते थे।

इसी बीचमें इन्द्र आदि देवताओं तथा मुनियोंने ब्रह्माजीकी आज्ञासे कामदेवको वहाँ आदरपूर्वक भेजा। वे कामकी प्रेरणासे कालीका रुद्रके साथ संयोग कराना चाहते थे। उनके ऐसा करनेमें कारण यह था कि महापराक्रमी तारकासुरसे वे बहुत पीड़ित थे (और शंकरजीसे किसी महान् बलवान् पुत्रकी उत्पत्ति चाहते थे)। कामदेवने वहाँ पहुँचकर अपने सब उपायोंका प्रयोग किया, परंतु महादेवजीके मनमें तनिक भी क्षोभ नहीं हुआ। उलटे उन्होंने कामदेवको जलाकर भस्म कर दिया। मुने! तब सती पार्वतीने भी गर्वरहित हो उनकी आज्ञासे बहुत बड़ी तपस्या करके शिवको पतिरूपमें प्राप्त किया। फिर वे पार्वती और परमेश्वर परस्पर अत्यन्त प्रेमसे और प्रसन्नतापूर्वक रहने लगे। उन दोनोंने परोपकारमें तत्पर रहकर देवताओंका महान् कार्य सिद्ध किया।

(अध्याय १३)

☆

तारकासुरके सताये हुए देवताओंका ब्रह्माजीको अपनी कष्टकथा सुनाना, ब्रह्माजीका उन्हें पार्वतीके साथ शिवके विवाहके लिये उद्योग करनेका आदेश देना, ब्रह्माजीके समझानेसे तारकासुरका स्वर्गको छोड़ना और देवताओंका वहाँ रहकर लक्ष्यसिद्धिके लिये यत्नशील होना

सूतजी कहते हैं—तदनन्तर नारदजीके पूछनेपर पार्वतीके विवाहके विस्तृत प्रसङ्गको उपस्थित करते हुए ब्रह्माजीने तारकासुरकी उत्पत्ति, उसके उग्र तप, मनोवाञ्छित वरप्राप्ति तथा देवता और असुर—सबको जीतकर स्वयं इन्द्रपदपर प्रतिष्ठित हो जानेकी कथा सुनायी।

तत्पश्चात् ब्रह्माजीने कहा—तारकासुर तीनों लोकोंको अपने वशमें करके जब स्वयं इन्द्र हो गया, तब उसके समान दूसरा कोई शासक नहीं रह गया। वह जितेन्द्रिय असुर त्रिभुवनका एकमात्र स्वामी होकर अद्भुत ढंगसे राज्यका संचालन करने लगा। उसने समस्त देवताओंको निकालकर उनकी जगह

दैत्योंको स्थापित कर दिया और विद्याधर आदि देवयोनियोंको स्वयं अपने कर्मोंमें लगाया। मुने! तदनन्तर तारकासुरके सताये हुए इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता अत्यन्त व्याकुल और अनाथ होकर मेरी शरणमें आये। उन सबने मुझ प्रजापतिको प्रणाम करके बड़ी भक्तिसे मेरा स्तवन किया और अपने दारुण दुःखकी बातें बताकर कहा—'प्रभो! आप ही हमारी गति हैं। आप ही हमें कर्तव्यका उपदेश देनेवाले हैं और आप ही हमारे धाता एवं उद्धारक हैं। हम सब देवता तारकासुर नामक अग्निमें जलकर अत्यन्त व्याकुल हो रहे हैं। जैसे संनिपात रोगमें प्रबल औषधें भी निर्बल हो जाती हैं, उसी प्रकार उस असुरने हमारे सभी क्रूर उपायोंको बलहीन बना दिया है। भगवान् विष्णुके सुदर्शन चक्रपर ही हमारी विजयकी आशा अवलम्बित रहती है। परंतु वह भी उसके कण्ठपर कुण्ठित हो गया। उसके गलेमें पड़कर वह ऐसा प्रतीत होने लगा था, मानो उस असुरको फूलकी माला पहनायी गयी हो।

मुने! देवताओंका यह कथन सुनकर मैंने उन सबसे समयोचित बात कही—'देवताओ! मेरे ही वरदानसे दैत्य तारकासुर इतना बढ़ गया है। अतः मेरे हाथों ही उसका वध होना उचित नहीं। जो जिससे पलकर बड़ा हो, उसका उसीके द्वारा वध होना योग्य कार्य नहीं है। विषके वृक्षको भी यदि स्वयं सींचकर बड़ा किया गया हो तो उसे स्वयं काटना अनुचित माना गया है। तुमलोगोंका सारा कार्य करनेके योग्य भगवान् शंकर हैं। किंतु वे तुम्हारे कहनेपर भी स्वयं इस असुरका सामना नहीं कर सकते। तारक दैत्य स्वयं अपने पापसे नष्ट होगा। मैं जैसा उपदेश करता हूँ, तुम वैसा कार्य करो। मेरे वरके प्रभावसे न मैं तारकासुरका वध कर सकता हूँ, न भगवान् विष्णु कर सकते हैं और न भगवान् शंकर ही उसका वध कर सकते हैं। दूसरा कोई वीर पुरुष अथवा सारे देवता मिलकर भी उसे नहीं मार सकते, यह मैं सत्य कहता हूँ। देवताओ! यदि शिवजीके वीर्यसे कोई पुत्र उत्पन्न हो तो वही तारक दैत्यका वध कर सकता है, दूसरा नहीं। सुरश्रेष्ठगण! इसके लिये जो उपाय मैं बताता हूँ, उसे करो। महादेवजीकी कृपासे वह उपाय अवश्य सिद्ध होगा। पूर्वकालमें जिस दक्षकन्या सतीने दक्षके यज्ञमें अपने शरीरको त्याग दिया था, वही इस समय हिमालयपत्नी मेनकाके गर्भसे उत्पन्न हुई है। यह बात तुम्हें भी विदित ही है। महादेवजी उस कन्याका पाणिग्रहण अवश्य करेंगे, तथापि देवताओ! तुम स्वयं भी इसके लिये प्रयत्न करो। तुम अपने बलसे ऐसा उद्योग करो, जिससे मेनकाकुमारी पार्वतीमें भगवान् शंकर अपने वीर्यका आधान कर सकें। भगवान् शंकर ऊर्ध्वरेता हैं (उनका वीर्य ऊपरकी ओर उठा हुआ है) उनके वीर्यको स्खलित करनेमें केवल पार्वती ही समर्थ हैं। दूसरी कोई अबला अपनी शक्तिसे ऐसा नहीं कर सकती। गिरिराजकी पुत्री ये पार्वती इस समय युवावस्थामें प्रवेश कर चुकी हैं और हिमालयपर तपस्यामें लगे हुए महादेवजीकी प्रतिदिन सेवा करती हैं। अपने पिता हिमवान्‌के कहनेसे काली शिवा अपनी दो सखियोंके साथ ध्यानपरायण परमेश्वर शिवकी साग्रह सेवा करती हैं। तीनों लोकोंमें सबसे अधिक सुन्दरी पार्वती

शिवके सामने रहकर प्रतिदिन उनकी पूजा करती है, तथापि वे ध्यानमग्न महेश्वर मनसे भी ध्यानहीन स्थितिमें नहीं आते। अर्थात् ध्यान भङ्ग करके पार्वतीकी ओर देखनेका विचार भी मनमें नहीं लाते। देवताओ! चन्द्रशेखर शिव जिस प्रकार कालीको अपनी भार्या बनानेकी इच्छा करें, वैसी चेष्टा तुमलोग शीघ्र ही प्रयत्नपूर्वक करो। मैं उस दैत्यके स्थानपर जाकर तारकासुरको बुरे हठसे हटानेकी चेष्टा करूँगा। अतः अब तुमलोग अपने स्थानको जाओ।'

नारद! देवताओंसे ऐसा कहकर मैं शीघ्र ही तारकासुरसे मिला और बड़े प्रेमसे बुलाकर मैंने उससे इस प्रकार कहा—

'तारक! यह स्वर्ग हमारे तेजका सारतत्त्व है। परंतु तुम यहाँके राज्यका पालन कर रहे हो। जिसके लिये तुमने उत्तम तपस्या की थी, उससे अधिक चाहने लगे हो। मैंने तुम्हें इससे छोटा ही वर दिया था। स्वर्गका राज्य कदापि नहीं दिया था। इसलिये तुम स्वर्गको छोड़कर पृथ्वीपर राज्य करो। असुरश्रेष्ठ! देवताओंके योग्य जितने भी कार्य हैं, वे सब तुम्हें वहीं सुलभ होंगे। इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।'

ऐसा कहकर उस असुरको समझानेके बाद मैं शिवा और शिवका स्मरण करके वहाँसे अदृश्य हो गया। तारकासुर भी स्वर्गको छोड़कर पृथ्वीपर आ गया और शोणितपुरमें रहकर वह राज्य करने लगा। फिर सब देवता भी मेरी बात सुनकर मुझे प्रणाम करके इन्द्रके साथ प्रसन्नतापूर्वक बड़ी सावधानीके साथ इन्द्रलोकमें गये। वहाँ जाकर परस्पर मिलकर आपसमें सलाह करके वे सब देवता इन्द्रसे प्रेमपूर्वक बोले—'भगवन्! शिवकी शिवायें जैसे भी काममूलक रुचि हो, वैसा ब्रह्माजीका बताया हुआ सारा प्रयत्न आपको करना चाहिये।'

इस प्रकार देवराज इन्द्रसे सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदन करके वे देवता प्रसन्नतापूर्वक सब ओर अपने-अपने स्थानपर चले गये।

(अध्याय १४—१६)

☆

इन्द्रद्वारा कामका स्मरण, उसके साथ उनकी बातचीत तथा उनके कहनेसे कामका शिवको मोहनेके लिये प्रस्थान

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! देवताओंके चले जानेपर दुरात्मा तारक दैत्यसे पीड़ित हुए इन्द्रने कामदेवका स्मरण किया। कामदेव तत्काल वहाँ आ पहुँचा। तब इन्द्रने मित्रताका धर्म बतलाते हुए कामसे कहा—'मित्र! कालवशात् मुझपर असाध्य दुःख आ पड़ा है। उसे तुम्हारे बिना कोई भी दूर नहीं कर सकता। दाताकी परीक्षा दुर्भिक्षमें, शूरवीरकी परीक्षा रणभूमिमें, मित्रकी परीक्षा आपत्तिकालमें तथा स्त्रियोंके कुलकी परीक्षा पतिके असमर्थ हो जानेपर होती है। तात! संकट पड़नेपर विनयकी

परीक्षा होती है और परोक्षमें सत्य एवं उत्तम स्नेहकी, अन्यथा नहीं। यह मैंने सच्ची बात कही है।* मित्रवर! इस समय मुझपर जो विपत्ति आयी है, उसका निवारण दूसरे किसीसे नहीं हो सकता। अतः आज तुम्हारी परीक्षा हो जायगी। यह कार्य केवल मेरा ही है और मुझे ही सुख देनेवाला है, ऐसी बात नहीं। अपितु यह समस्त देवता आदिका कार्य है, इसमें संशय नहीं है।'

इन्द्रकी यह बात सुनकर कामदेव मुसकराया और प्रेमपूर्ण गम्भीर वाणीमें बोला।

कामने कहा—देवराज! आप ऐसी बात क्यों कहते हैं? मैं आपको उत्तर नहीं दे रहा हूँ (*आवश्यक निवेदनमात्र कर रहा हूँ*)।

लोकमें कौन उपकारी मित्र है और कौन बनावटी—यह स्वयं देखनेकी वस्तु है, कहनेकी नहीं। जो संकटके समय बहुत बातें करता है, वह काम क्या करेगा? तथापि महाराज! प्रभो! मैं कुछ कहता हूँ, उसे सुनिये। मित्र! जो आपके इन्द्रपदको छीननेके लिये दारुण तपस्या कर रहा है, आपके उस शत्रुको मैं सर्वथा तपस्यासे भ्रष्ट कर दूँगा। जो काम जिससे पूरा हो सके, बुद्धिमान् पुरुष उसे उसी काममें लगाये। मेरे योग्य जो कार्य हो, वह सब आप मेरे जिम्मे कीजिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—कामदेवका यह कथन सुनकर इन्द्र बड़े प्रसन्न हुए। वे कामिनियोंको सुख देनेवाले कामको प्रणाम करके उससे इस प्रकार बोले।

इन्द्रने कहा—तात! मनोभव! मैंने अपने मनमें जिस कार्यको पूर्ण करनेका उद्देश्य रखा है, उसे सिद्ध करनेमें केवल तुम्हीं समर्थ हो। दूसरे किसीसे उस कार्यका होना सम्भव नहीं है। मित्रवर! मनोभव काम! जिसके लिये आज तुम्हारे सहयोगकी अपेक्षा हुई है, उसे ठीक-ठीक बता रहा हूँ; सुनो। तारक नामसे प्रसिद्ध जो महान् दैत्य है, वह ब्रह्माजीका अद्भुत वर पाकर अजेय हो गया है और सभीको दुःख दे रहा है। वह सारे संसारको पीड़ा दे रहा है। उसके द्वारा बारंबार धर्मका नाश हुआ है। उससे सब देवता और समस्त ऋषि दुःखी हुए हैं। सम्पूर्ण देवताओंने पहले उसके साथ अपनी पूरी शक्ति लगाकर युद्ध किया था;

---

* दातुः परीक्षा दुर्भिक्षे रणे शूरस्य जायते। आपत्काले तु मित्रस्याशक्तौ स्त्रीणां कुलस्य हि॥
विनतेः संकटे प्राप्तेऽवितथस्य परोक्षतः। सुस्नेहस्य तथा तात नान्यथा सत्यमीरितम्॥
(शि० पु० रु० सं० पा० खं० १७। १२-१३)

परंतु उसके ऊपर सबके अस्त्र-शस्त्र निष्फल हो गये। जलके स्वामी वरुणका पाश टूट गया। श्रीहरिका सुदर्शनचक्र भी वहाँ सफल नहीं हुआ। श्रीविष्णुने उसके कण्ठपर चक्र चलाया, किंतु वह वहाँ कुण्ठित हो गया। ब्रह्माजीने महायोगीश्वर भगवान् शम्भुके वीर्यसे उत्पन्न हुए बालकके हाथसे इस दुरात्मा दैत्यकी मृत्यु बतायी है। यह कार्य तुम्हें अच्छी तरह और प्रयत्नपूर्वक करना है। मित्रवर! उसके हो जानेसे हम देवताओंको बड़ा सुख मिलेगा। भगवान् शम्भु गिरिराज हिमालयपर उत्तम तपस्यामें लगे हैं। वे हमारे भी प्रभु हैं, कामनाके वशमें नहीं हैं, स्वतन्त्र परमेश्वर हैं। मैंने सुना है कि गिरिराजनन्दिनी पार्वती पिताकी आज्ञा पाकर अपनी दो सखियोंके साथ उनके समीप रहकर उनकी सेवामें रहती हैं। उनका यह प्रयत्न महादेवजीको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये ही है। परंतु भगवान् शिव अपने मनको संयम-नियमसे वशमें रखते हैं। मार! जिस तरह भी उनकी पार्वतीमें अत्यन्त रुचि हो जाय, तुम्हें वैसा ही प्रयत्न करना चाहिये। यही कार्य करके तुम कृतार्थ हो जाओगे और हमारा सारा दुःख नष्ट हो जायगा। इतना ही नहीं, लोकमें तुम्हारा स्थायी प्रताप फैल जायगा।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! इन्द्रके ऐसा कहनेपर कामदेवका मुखारविन्द प्रसन्नतासे खिल उठा। उसने देवराजसे प्रेमपूर्वक कहा—'मैं इस कार्यको करूँगा। इसमें संशय नहीं है।' ऐसा कहकर शिवकी मायासे मोहित हुए कामने उस कार्यके लिये स्वीकृति दे दी और शीघ्र ही उसका भार ले लिया। वह अपनी पत्नी रति और वसन्तको साथ ले बड़ी प्रसन्नताके साथ उस स्थानपर गया, जहाँ साक्षात् योगीश्वर शिव उत्तम तपस्या कर रहे थे।

(अध्याय १७)

☆

रुद्रकी नेत्राग्निसे कामका भस्म होना, रतिका विलाप, देवताओंकी प्रार्थनासे शिवका कामको द्वापरमें प्रद्युम्नरूपसे नूतन शरीरकी प्राप्तिके लिये वर देना और रतिका शम्बर-नगरमें जाना

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! काम अपने साथी वसन्त आदिको लेकर वहाँ पहुँचा। उसने भगवान् शिवपर अपने बाण चलाये। तब शंकरजीके मनमें पार्वतीके प्रति आकर्षण होने लगा और उनका धैर्य छूटने लगा। अपने धैर्यका ह्रास होता देख महायोगी महेश्वर अत्यन्त विस्मित हो मन-ही-मन इस प्रकार चिन्तन करने लगे।

शिव बोले—मैं तो उत्तम तपस्या कर रहा था, उसमें विघ्न कैसे आ गये? किस कुकर्मीने यहाँ मेरे चित्तमें विकार पैदा कर दिया?

इस तरह विचार करके सत्पुरुषोंके आश्रयदाता महायोगी परमेश्वर शिव शङ्कायुक्त हो सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर देखने लगे। इसी समय वामभागमें बाण खींचे खड़े हुए कामपर उनकी दृष्टि पड़ी। वह मूढचित्त मदन अपनी शक्तिके घमंडमें आकर पुनः अपना बाण छोड़ना ही चाहता था। नारद! इस अवस्थामें कामपर दृष्टि

पड़ते ही परमात्मा गिरीशको तत्काल रोष चढ़ आया। मुने! उधर आकाशमें बाणसहित धनुष लिये खड़े हुए कामने भगवान् शंकरपर अपना अमोघ अस्त्र छोड़ दिया, जिसका निवारण करना बहुत कठिन था। परंतु परमात्मा शिवपर वह अमोघ अस्त्र भी मोघ (व्यर्थ) हो गया, कुपित हुए परमेश्वरके पास जाते ही शान्त हो गया। भगवान् शिवपर अपने अस्त्रके व्यर्थ हो जानेपर मन्मथ (काम) को बड़ा भय हुआ। भगवान् मृत्युञ्जयको सामने देखकर वह काँप उठा और इन्द्र आदि समस्त देवताओंका स्मरण करने लगा। मुनिश्रेष्ठ! अपना प्रयास निष्फल हो जानेपर काम भयसे व्याकुल हो उठा था। मुनीश्वर! कामदेवके स्मरण करनेपर वे इन्द्र आदि सब देवता वहाँ आ पहुँचे और शम्भुको प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे।

देवता स्तुति कर ही रहे थे कि कुपित हुए भगवान् हरके ललाटके मध्यभागमें स्थित तृतीय नेत्रसे बड़ी भारी आग तत्काल प्रकट होकर निकली। उसकी ज्वालाएँ ऊपरकी ओर उठ रही थीं। वह आग धू-धू करके जलने लगी। उसकी प्रभा प्रलयाग्निके समान जान पड़ती थी। वह आग तुरंत ही आकाशमें उछली और पृथ्वीपर गिर पड़ी। फिर अपने चारों ओर चक्कर काटती हुई धराशायिनी हो गयी। साधो! 'भगवन्! क्षमा कीजिये, क्षमा कीजिये' यह बात जबतक देवताओंके मुखसे निकले, तबतक ही उस आगने कामदेवको जलाकर भस्म कर दिया। उस वीर कामदेवके मारे जानेपर देवताओंको बड़ा दुःख हुआ। वे व्याकुल हो 'हाय! यह क्या हुआ?' ऐसा कह-कहकर जोर-जोरसे चीत्कार करते हुए रोने-बिलखने लगे।

उस समय विकृतचित्त हुई पार्वतीका सारा शरीर सफेद पड़ गया—काटो तो खून नहीं। वे सखियोंको साथ ले अपने भवनको चली गयीं। कामदेवके जल जानेपर रति वहाँ एक क्षणतक अचेत पड़ी रही। पतिकी मृत्युके दुःखसे वह इस तरह पड़ी थी, मानो मर गयी हो। थोड़ी देरमें जब होश हुआ, तब अत्यन्त व्याकुल हो रति उस समय तरह-तरहकी बातें कहकर विलाप करने लगी।

रति बोली—हाय! मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? देवताओंने यह क्या किया। मेरे उद्दण्ड स्वामीको बुलाकर नष्ट करा दिया। हाय! हाय! नाथ! स्मर! स्वामिन्! प्राणप्रिय! हा मुझे सुख देनेवाले प्रियतम! हा प्राणनाथ! यह यहाँ क्या हो गया?

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! इस प्रकार रोती, बिलखती और अनेक प्रकारकी बातें कहती हुई रति हाथ-पैर पटकने और अपने सिरके बालोंको नोचने लगी। उस समय उसका विलाप सुनकर वहाँ रहनेवाले समस्त

वनवासी जीव तथा वृक्ष आदि स्थावर प्राणी भी बहुत दुःखी हो गये। इसी बीचमें इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता महादेवजीका स्मरण करते हुए रतिको आश्वासन दे इस प्रकार बोले।

देवताओंने कहा—तुम कामके शरीरका थोड़ा-सा भस्म लेकर उसे यत्नपूर्वक रखो और धैर्य छोड़ो। हम सबके स्वामी महादेवजी कामदेवको पुनः जीवित कर देंगे और तुम फिर अपने प्रियतमको प्राप्त कर लोगी। कोई किसीको न तो सुख देनेवाला है और न कोई दुःख ही देनेवाला है। सब लोग अपनी-अपनी करनीका फल भोगते हैं। तुम देवताओंको दोष देकर व्यर्थ ही शोक करती हो।

इस प्रकार रतिको आश्वासन दे सब देवता भगवान् शिवके पास आये और उन्हें भक्तिभावसे प्रसन्न करके यों बोले।

देवताओंने कहा—भगवन्! शरणागत-वत्सल महेश्वर! आप कृपा करके हमारे इस शुभ वचनको सुनिये। शंकर! आप कामदेवकी करतूतपर भलीभाँति प्रसन्नतापूर्वक विचार कीजिये। महेश्वर! कामने जो यह कार्य किया है, इसमें इसका कोई स्वार्थ नहीं था। दुष्ट तारकासुरसे पीड़ित हुए हम सब देवताओंने मिलकर उससे यह काम कराया है। नाथ! शंकर! इसे आप अन्यथा न समझें। सब कुछ देनेवाले देव! गिरीश! सती-साध्वी रति अकेली अति दुःखी होकर विलाप कर रही है। आप उसे सान्त्वना प्रदान करें। शंकर! यदि इस क्रोधके द्वारा आपने कामदेवको मार डाला तो हम यही समझेंगे कि आप देवताओंसहित समस्त प्राणियोंका अभी संहार कर डालना चाहते हैं। रतिका दुःख देखकर देवता मृतप्राय हो रहे हैं; इसलिये आपको रतिका शोक दूर कर देना चाहिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! सम्पूर्ण देवताओंका यह वचन सुनकर भगवान् शिव प्रसन्न हो उनसे इस प्रकार बोले।

शिवने कहा—देवताओ और ऋषियो! तुम सब आदरपूर्वक मेरी बात सुनो। मेरे क्रोधसे जो कुछ हो गया है, वह तो अन्यथा नहीं हो सकता, तथापि रतिका शक्तिशाली पति कामदेव तभीतक अनङ्ग (शरीररहित) रहेगा, जबतक रुक्मिणीपति श्रीकृष्णका धरतीपर अवतार नहीं हो जाता। जब श्रीकृष्ण द्वारकामें रहकर पुत्रोंको उत्पन्न करेंगे; तब वे रुक्मिणीके गर्भसे कामको भी जन्म देंगे। उस कामका ही नाम उस समय 'प्रद्युम्न' होगा—इसमें संशय नहीं है। उस पुत्रके जन्म लेते ही शम्बरासुर उसे हर लेगा। हरणके पश्चात् दानवशिरोमणि शम्बर उस शिशुको समुद्रमें डाल देगा। फिर वह मूढ़ उसे मरा हुआ समझकर अपने नगरको लौट जायगा। रते! उस समयतक तुम्हें शम्बरासुरके नगरमें सुखपूर्वक निवास करना चाहिये। वहीं तुम्हें अपने पति प्रद्युम्नकी प्राप्ति होगी। वहाँ तुमसे मिलकर काम युद्धमें शम्बरासुरका वध करेगा और सुखी होगा। देवताओ! प्रद्युम्न-नामधारी काम अपनी कामिनी रतिको तथा शम्बरासुरके धनको लेकर उसके साथ पुनः नगरमें जायगा। मेरा यह कथन सर्वथा सत्य होगा।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! भगवान् शिवकी यह बात सुनकर देवताओंके चित्तमें

कुछ उल्लास हुआ और वे उन्हें प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़ विनीतभावसे बोले।

देवताओंने कहा—देवदेव! महादेव! करुणासागर! प्रभो! आप कामदेवको शीघ्र जीवन-दान दें तथा रतिके प्राणोंकी रक्षा करें।

देवताओंकी यह बात सुनकर सबके स्वामी करुणासागर परमेश्वर शिव पुनः प्रसन्न होकर बोले—'देवताओ! मैं बहुत प्रसन्न हूँ। मैं कामको सबके हृदयमें जीवित कर दूँगा। वह सदा मेरा गण होकर विहार करेगा। अब अपने स्थानको जाओ। मैं तुम्हारे दुःखका सर्वथा नाश करूँगा।'

ऐसा कहकर रुद्रदेव उस समय स्तुति करनेवाले देवताओंके देखते-देखते अन्तर्धान हो गये। देवताओंका विस्मय दूर हो गया और वे सब-के-सब प्रसन्न हो गये। मुने! तदनन्तर रुद्रकी बातपर भरोसा करके स्थिर रहनेवाले देवता रतिको उनका कथन सुनाकर आश्वासन दे अपने-अपने स्थानको चले गये। मुनीश्वर! कामपत्नी रति शिवके बताये हुए शम्बरनगरको चली गयी तथा रुद्रदेवने जो समय बताया था, उसकी प्रतीक्षा करने लगी। (अध्याय १८-१९)

☆

ब्रह्माजीका शिवकी क्रोधाग्निको वडवानलकी संज्ञा दे समुद्रमें स्थापित करके संसारके भयको दूर करना, शिवके विरहसे पार्वतीका शोक तथा नारदजीके द्वारा उन्हें तपस्याके लिये उपदेशपूर्वक पञ्चाक्षर-मन्त्रकी प्राप्ति

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! जब भगवान् रुद्रके तीसरे नेत्रसे प्रकट हुई अग्निने कामदेवको शीघ्र जलाकर भस्म कर दिया, तब वह बिना किसी प्रयोजनके ही प्रज्वलित हो सब ओर फैलने लगी। इससे चराचर प्राणियोंसहित तीनों लोकोंमें महान् हाहाकार मच गया। तात! सम्पूर्ण देवता और ऋषि तुरंत मेरी शरणमें आये। उन सबने अत्यन्त व्याकुल होकर मस्तक झुका दोनों हाथ जोड़ मुझे प्रणाम किया और मेरी स्तुति करके वह दुःख निवेदन किया। यह सुनकर मैं भगवान् शिवका स्मरण करके उसके हेतुका भलीभाँति विचारकर तीनों लोकोंकी रक्षाके लिये विनीतभावसे वहाँ पहुँचा! वह अग्नि ज्वालामालाओंसे अत्यन्त उद्दीप्त हो जगत्को जला देनेके लिये उद्यत थी। परंतु भगवान् शिवकी कृपासे प्राप्त हुए उत्तम तेजके द्वारा मैंने उसे तत्काल स्तम्भित कर दिया। मुने! त्रिलोकीको दग्ध करनेकी इच्छा रखनेवाली उस क्रोधमय अग्निको मैंने एक ऐसे घोड़ेके रूपमें परिणत कर दिया, जिसके मुखसे सौम्य ज्वाला प्रकट हो रही थी। भगवान् शिवकी इच्छासे उस वाडव शरीर (घोड़े) वाली अग्निको लेकर मैं लोकहितके लिये समुद्रतटपर गया। मुने! मुझे आया देख समुद्र एक दिव्य पुरुषका रूप धारण करके हाथ जोड़े हुए मेरे पास आया। मुझ सम्पूर्ण लोकोंके पितामहकी भलीभाँति विधिवत् स्तुति-वन्दना करके सिन्धुने मुझसे प्रसन्नतापूर्वक कहा।

सागर बोला—सर्वेश्वर ब्रह्मन्! आप यहाँ किस लिये पधारे हैं? मुझे अपना सेवक समझ इस बातको प्रीतिपूर्वक कहिये।

सागरकी बात सुनकर भगवान् शंकरका स्मरण करके लोकहितका ध्यान

रखते हुए मैंने उससे प्रसन्नतापूर्वक कहा—'तात समुद्र! तुम बड़े बुद्धिमान् और सम्पूर्ण लोकोंके हितकारी हो। मैं शिवकी इच्छासे प्रेरित हो हार्दिक प्रीतिपूर्वक तुमसे कह रहा हूँ। यह भगवान् महेश्वरका क्रोध है, जो महान् शक्तिशाली अश्वके रूपमें यहाँ उपस्थित है। यह कामदेवको दग्ध करके तुरंत ही सम्पूर्ण जगत्को भस्म करनेके लिये उद्यत हो गया था। यह देख पीड़ित हुए देवताओंकी प्रार्थनासे मैं शंकरेच्छावश यहाँ गया और इस अग्निको स्तम्भित किया। फिर इसने घोड़ेका रूप धारण किया और इसे लेकर मैं यहाँ आया। जलाधार! मैं जगत्पर दया करके तुम्हें यह आदेश दे रहा हूँ—इस महेश्वरके क्रोधको, जो वाडवका रूप धारण करके मुखसे ज्वाला प्रकट करता हुआ खड़ा है, तुम प्रलयकालपर्यन्त धारण किये रहो। सरित्पते! जब मैं यहाँ आकर वास करूँगा, तब तुम भगवान् शंकरके इस अद्भुत क्रोधको छोड़ देना। तुम्हारा जल ही प्रतिदिन इसका भोजन होगा। तुम यत्नपूर्वक इसे ऊपर ही धारण किये रहना, जिससे यह तुम्हारी अनन्त जलराशिके भीतर न चला जाय।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! मेरे ऐसा कहनेपर समुद्रने रुद्रकी क्रोधाग्निरूप वडवानलको धारण करना स्वीकार कर लिया, जो दूसरेके लिये असम्भव था। तदनन्तर वह वडवाग्नि समुद्रमें प्रविष्ट हुई और ज्वालामालाओंसे प्रदीप्त हो सागरकी जलराशिका दहन करने लगी। मुने! इससे संतुष्टचित्त होकर मैं अपने लोकको चला आया और वह दिव्यरूपधारी समुद्र मुझे प्रणाम करके अदृश्य हो गया। महामुने! रुद्रकी उस क्रोधाग्निके भयसे छूटकर सम्पूर्ण जगत् स्वस्थताका अनुभव करने लगा और देवता तथा मुनि सुखी हो गये।

नारदजी बोले—दयानिधे! मदन-दहनके पश्चात् गिरिराजनन्दिनी पार्वती देवीने क्या किया? वे अपनी दोनों सखियोंके साथ कहाँ गयीं? यह सब मुझे बताइये।

ब्रह्माजीने कहा—भगवान् शंकरके नेत्रसे उत्पन्न हुई आगने जब कामदेवको दग्ध किया, तब वहाँ महान् अद्भुत शब्द प्रकट हुआ, जिससे सारा आकाश गूँज उठा। उस महान् शब्दके साथ ही कामदेवको दग्ध

हुआ देख भयभीत और व्याकुल हुई पार्वती दोनों सखियोंके साथ अपने घर चली गयीं। उस शब्दसे परिवारसहित हिमवान् भी बड़े विस्मयमें पड़ गये और वहाँ गयी हुई अपनी पुत्रीका स्मरण करके उन्हें बड़ा क्लेश हुआ। इतनेमें ही पार्वती दूरसे आती हुई दिखायी दीं। वे शम्भुके विरहसे रो रही थीं। अपनी पुत्रीको अत्यन्त विह्वल हुई देख शैलराज हिमवान्‌को बड़ा शोक हुआ और वे शीघ्र ही उसके पास जा पहुँचे। वे फिर हाथसे उसकी दोनों आँखें पोंछकर बोले—'शिवे! डरो मत, रोओ मत।' ऐसा कहकर अचलेश्वर हिमवान्‌ने अत्यन्त विह्वल हुई पार्वतीको शीघ्र ही गोदमें उठा लिया और उसे सान्त्वना देते हुए वे अपने घर ले आये।

कामदेवका दाह करके महादेवजी अदृश्य हो गये थे। अतः उनके विरहसे पार्वती अत्यन्त व्याकुल हो उठी थीं। उन्हें कहीं भी सुख या शान्ति नहीं मिलती थी। पिताके घर जाकर जब वे अपनी मातासे मिलीं, उस समय पार्वती शिवाने अपना नया जन्म हुआ माना। वे अपने रूपकी निन्दा करने लगीं और बोलीं—'हाय! मैं मारी गयी।' सखियोंके समझानेपर भी वे गिरिराजकुमारी कुछ समझ नहीं पाती थीं। वे सोते-जागते, खाते-पीते, नहाते-धोते, चलते-फिरते और सखियोंके बीचमें खड़े होते समय भी कभी किंचिन्मात्र भी सुखका अनुभव नहीं करती थीं। 'मेरे स्वरूपको तथा जन्म-कर्मको भी धिक्कार है' ऐसा कहती हुई वे सदा महादेवजीकी प्रत्येक चेष्टाका चिन्तन करती थीं। इस प्रकार पार्वती भगवान् शिवके विरहसे मन-ही-मन अत्यन्त क्लेशका अनुभव करती और किंचिन्मात्र भी सुख नहीं पाती थीं। वे सदा 'शिव, शिव' का जप किया करती थीं। शरीरसे पिताके घरमें रहकर भी वे चित्तसे पिनाकपाणि भगवान् शंकरके पास पहुँची रहती थीं। तात! शिवा शोकमग्न हो बारंबार मूर्च्छित हो जाती थीं। शैलराज हिमवान्, उनकी पत्नी मेनका तथा उनके मैनाक आदि सभी पुत्र, जो बड़े उदारचेता थे, उन्हें सदा सान्त्वना देते रहते थे। तथापि वे भगवान् शंकरको भूल न सकीं।

बुद्धिमान् देवर्षे! तदनन्तर एक दिन इन्द्रकी प्रेरणासे इच्छानुसार घूमते हुए तुम हिमालय पर्वतपर आये। उस समय महात्मा हिमवान्‌ने तुम्हारा स्वागत-सत्कार किया और कुशल-मङ्गल पूछा। फिर तुम उनके दिये हुए उत्तम आसनपर बैठे। तदनन्तर शैलराजने अपनी कन्याके चरित्रका आरम्भसे ही वर्णन किया। किस तरह उसने महादेवजीकी सेवा आरम्भ की और किस तरह उनके द्वारा कामदेवका दहन हुआ—यह सब कुछ बताया। मुने! यह सब सुनकर तुमने गिरिराजसे कहा—'शैलेश्वर! भगवान् शिवका भजन करो।' फिर उनसे विदा लेकर तुम उठे और मन-ही-मन शिवका स्मरण करके शैलराजको छोड़ शीघ्र ही एकान्तमें कालीके पास आ गये। मुने! तुम लोकोपकारी, ज्ञानी तथा शिवके प्रिय भक्त हो; समस्त ज्ञानवानोंके शिरोमणि हो, अतः कालीके पास आ उसे सम्बोधित करके उसीके हितमें स्थित हो उससे सादर यह सत्य वचन बोले।

नारदजीने (तुमने) कहा—कालिके! तुम मेरी बात सुनो। मैं दयावश सच्ची बात कह रहा हूँ। मेरा वचन तुम्हारे लिये सर्वथा

हितकर, निर्दोष तथा उत्तम काम्य वस्तुओंको देनेवाला होगा। तुमने यहाँ महादेवजीकी सेवा अवश्य की थी, परंतु वह बिना तपस्याके गर्वयुक्त होकर की थी। दीनोंपर अनुग्रह करनेवाले शिवने तुम्हारे उसी गर्वको नष्ट किया है। शिवे! तुम्हारे स्वामी महेश्वर विरक्त और महायोगी हैं। उन्होंने केवल कामदेवको जलाकर जो तुम्हें सकुशल छोड़ दिया है, उसमें यही कारण है कि वे भगवान् भक्तवत्सल हैं। अतः तुम उत्तम तपस्यामें संलग्न हो चिरकालतक महेश्वरकी आराधना करो। तपस्यासे तुम्हारा संस्कार हो जानेपर रुद्रदेव तुम्हें अपनी सहधर्मिणी बनायेंगे और तुम भी कभी उन कल्याणकारी शम्भुका परित्याग नहीं करोगी। देवि! तुम हठपूर्वक शिवको अपनानेका यत्न करो। शिवके सिवा दूसरे किसीको अपना पति स्वीकार न करना।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! तुम्हारी यह बात सुनकर गिरिराजकुमारी काली कुछ उल्लसित हो तुमसे हाथ जोड़ प्रसन्नतापूर्वक बोलीं।

शिवाने कहा—प्रभो! आप सर्वज्ञ तथा जगत्का उपकार करनेवाले हैं। मुने! मुझे रुद्रदेवकी आराधनाके लिये कोई मन्त्र दीजिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! पार्वतीका यह वचन सुनकर तुमने पञ्चाक्षर शिवमन्त्र (नमः शिवाय) का उन्हें विधिपूर्वक उपदेश किया। साथ ही उस मन्त्रराजमें श्रद्धा उत्पन्न करनेके लिये तुमने उसका सबसे अधिक प्रभाव बताया।

नारद (तुम) बोले—देवि! इस मन्त्रका परम अद्भुत प्रभाव सुनो। इसके श्रवणमात्रसे भगवान् शंकर प्रसन्न हो जाते हैं। यह मन्त्र सब मन्त्रोंका राजा और मनोवाञ्छित फलको देनेवाला है। भगवान् शंकरको बहुत ही प्रिय है तथा साधकको भोग और मोक्ष देनेमें समर्थ है। सौभाग्य-शालिनि! इस मन्त्रका विधिपूर्वक जप करनेसे तुम्हारे द्वारा आराधित हुए भगवान् शिव अवश्य और शीघ्र तुम्हारी आँखोंके सामने प्रकट हो जायँगे। शिवे! शौच-संतोषादि नियमोंमें तत्पर रहकर भगवान् शिवके स्वरूपका चिन्तन करती हुई तुम पञ्चाक्षर-मन्त्रका जप करो। इससे आराध्यदेव शिव शीघ्र ही संतुष्ट होंगे। साध्वी! इस तरह तपस्या करो। तपस्यासे महेश्वर वशमें हो सकते हैं। तपस्यासे ही सबको मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है, अन्यथा नहीं।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! तुम भगवान् शिवके प्रिय भक्त और इच्छानुसार विचरनेवाले हो। तुमने कालीसे उपर्युक्त बात कहकर देवताओंके हितमें तत्पर हो स्वर्गलोकको प्रस्थान किया। तुम्हारी बात सुनकर उस समय पार्वती बहुत प्रसन्न हुईं। उन्हें परम उत्तम पञ्चाक्षर-मन्त्र प्राप्त हो गया था।

(अध्याय २०-२१)

श्रीशिवकी आराधनाके लिये पार्वतीजीकी दुष्कर तपस्या

ब्रह्माजी कहते हैं—देवर्षे ! तुम्हारे चले जानेपर प्रफुल्लचित्त हुई पार्वतीने महादेवजीको तपस्यासे ही साध्य माना और तपस्याके लिये ही मनमें निश्चय किया। तब उन्होंने अपनी सखी जया और विजयाके द्वारा पिता हिमाचल और माता मेनासे आज्ञा माँगी। पिताने तो स्वीकार कर लिया; परंतु माता मेनाने स्नेहवश अनेक प्रकारसे समझाया और घरसे दूर वनमें जाकर तप करनेसे पुत्रीको रोका। मेनाने तपस्याके लिये वनमें जानेसे रोकते हुए 'उ', 'मा' (बाहर न जाओ) ऐसा कहा; इसलिये उस समय शिवाका नाम उमा हो गया। मुने ! शैलराजकी प्यारी पत्नी मेनाने रोकनेसे शिवाको दुःखी हुई जान अपना विचार बदल दिया और पार्वतीको तपस्याके लिये जानेकी आज्ञा दे दी। मुनिश्रेष्ठ ! माताकी यह आज्ञा पाकर उत्तम व्रतका पालन करनेवाली पार्वतीने भगवान् शंकरका स्मरण करके अपने मनमें बड़े सुखका अनुभव किया। माता-पिताको प्रसन्नता-पूर्वक प्रणाम करके शिवके स्मरणपूर्वक दोनों सखियोंके साथ वे तपस्या करनेके लिये चली गयीं। अनेक प्रकारके प्रिय वस्त्रोंका परित्याग करके पार्वतीने कटि-प्रदेशमें सुन्दर मूँजकी मेखला बाँध शीघ्र ही वल्कल धारण कर लिये। हारका परिहार करके उत्तम मृगचर्मको हृदयसे लगाया। तत्पश्चात् वे तपस्याके लिये गङ्गावतरण (गङ्गोत्तरी) तीर्थकी ओर चलीं।

जहाँ ध्यान लगाते हुए भगवान् शंकरने कामदेवको दग्ध किया था, हिमालयका वह शिखर गङ्गावतरणके नामसे प्रसिद्ध है। वहीं परम उत्तम शृङ्गितीर्थमें पार्वतीने तपस्या प्रारम्भ की। गौरीके तप करनेसे ही उसका 'गौरी-शिखर' नाम हो गया। मुने ! शिवाने अपने तपकी परीक्षाके लिये वहाँ बहुत-से सुन्दर एवं पवित्र वृक्ष लगाये, जो फल देनेवाले थे। सुन्दरी पार्वतीने पहले भूमि-शुद्ध करके वहाँ एक वेदीका निर्माण किया। तदनन्तर ऐसी तपस्या आरम्भ की, जो मुनियोंके लिये भी दुष्कर थी। वे मनसहित सम्पूर्ण इन्द्रियोंको शीघ्र ही काबूमें करके उस वेदीपर उच्चकोटिकी तपस्या करने लगीं। ग्रीष्म ऋतुमें अपने चारों ओर दिन-रात आग जलाये रखकर वे बीचमें बैठतीं और निरन्तर पञ्चाक्षर-मन्त्रका जप करती रहती थीं। वर्षा ऋतुमें वेदीपर सुस्थिर आसनसे बैठकर अथवा किसी पत्थरकी चट्टानपर ही आसन लगाकर वे निरन्तर वर्षाकी जलधारासे भीगती रहती थीं। शीतकालमें निराहार रहकर भगवान् शंकरके भजनमें तत्पर हो वे सदा शीतल जलके भीतर खड़ी रहती तथा रातभर बरफकी चट्टानोंपर बैठा करती थीं। इस प्रकार तप करती हुई पञ्चाक्षर-मन्त्रके जपमें संलग्न हो शिवा सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंके दाता शिवका ध्यान करती थीं। प्रतिदिन अवकाश मिलनेपर वे सखियोंके साथ अपने लगाये हुए वृक्षोंको प्रसन्नतापूर्वक सींचतीं और वहाँ पधारे हुए अतिथिका आतिथ्य-सत्कार भी करती थीं।

शुद्ध चित्तवाली पार्वतीने प्रचण्ड आँधी, कड़ाकेकी सर्दी, अनेक प्रकारकी वर्षा तथा दुस्सह धूपका भी सहन किया। उनके ऊपर वहाँ नाना प्रकारके दुःख आये, परंतु उन्होंने उन सबको कुछ नहीं गिना। मुने! वे केवल शिवमें मन लगाकर वहाँ सुस्थिरभावसे खड़ी या बैठी रहती थीं। उनका पहला वर्ष फलाहारमें बीता और दूसरा वर्ष उन्होंने केवल पत्ते चबाकर बिताया! इस तरह तपस्या करती हुई देवी पार्वतीने क्रमशः असंख्य वर्ष व्यतीत कर दिये। तदनन्तर हिमवान्‌की पुत्री शिवादेवी पत्ते खाना भी छोड़कर सर्वथा निराहार रहने लगीं, तो भी तपश्चर्यामें उनका अनुराग बढ़ता ही गया। हिमाचलपुत्री शिवाने भोजनके लिये पर्णका भी परित्याग कर दिया। इसलिये देवताओंने उनका नाम 'अपर्णा' रख दिया। इसके बाद पार्वती भगवान् शिवके स्मरणपूर्वक एक पैरसे खड़ी हो पञ्चाक्षर-मन्त्रका जप करती हुई बड़ी भारी तपस्या करने लगीं। उनके अङ्ग चीर और वल्कलसे ढके थे। वे मस्तकपर जटाओंका समूह धारण किये रहती थीं। इस प्रकार शिवके चिन्तनमें लगी हुई पार्वतीने अपनी तपस्याके द्वारा मुनियोंको जीत लिया। उस तपोवनमें महेश्वरके चिन्तनपूर्वक तपस्या करती हुई कालीके तीन हजार वर्ष बीत गये।

तदनन्तर जहाँ महादेवजीने साठ हजार वर्षोंतक तप किया था, उस स्थानपर क्षणभर ठहरकर शिवादेवी इस प्रकार चिन्ता करने लगीं—'क्या महादेवजी इस समय यह नहीं जानते कि मैं उनके लिये नियमोंके पालनमें तत्पर हो तपस्या कर रही हूँ? फिर क्या कारण है कि सुदीर्घकालसे तपस्यामें लगी हुई मुझ सेविकाके पास वे नहीं आये? लोकमें, वेदमें और मुनियोंद्वारा सदा गिरीशकी महिमाका गान किया जाता है। सब यही कहते हैं कि भगवान् शंकर सर्वज्ञ, सर्वात्मा, सर्वदर्शी, समस्त ऐश्वर्योंके दाता, दिव्य शक्तिसम्पन्न, सबके मनोभावोंको समझ लेनेवाले, भक्तोंको उनकी अभीष्ट वस्तु देनेवाले और सदा समस्त क्लेशोंका निवारण करनेवाले हैं। यदि मैं समस्त कामनाओंका परित्याग करके भगवान् वृषभध्वजमें अनुरक्त हुई हूँ तो वे कल्याणकारी भगवान् शिव यहाँ मुझपर प्रसन्न हों। यदि मैंने नारदतन्त्रोक्त शिवपञ्चाक्षर-मन्त्रका सदा उत्तम भक्तिभावसे विधिपूर्वक जप किया हो तो भगवान् शंकर मुझपर प्रसन्न हों। यदि मैं सर्वेश्वर शिवकी भक्तिसे युक्त एवं निर्विकार

होऊँ तो भगवान् शंकर मुझपर अत्यन्त प्रसन्न हों।'

इस तरह नित्य चिन्तन करती हुई जटा-वल्कलधारिणी निर्विकारा पार्वती मुँह नीचे किये सुदीर्घकालतक तपस्यामें लगी रहीं। उन्होंने ऐसी तपस्या की, जो मुनियोंके लिये भी दुष्कर थी। वहाँ उस तपस्याका स्मरण करके पुरुषोंको बड़ा विस्मय हुआ। महर्षे! पार्वतीकी तपस्याका जो दूसरा प्रभाव पड़ा था, उसे भी इस समय सुनो। जगदम्बा पार्वतीका वह महान् तप परम आश्चर्यजनक था। जो स्वभावतः एक-दूसरेके विरोधी थे, ऐसे प्राणी भी उस आश्रमके पास जाकर उनकी तपस्याके प्रभावसे विरोधरहित हो जाते थे। सिंह और गौ आदि सदा रागादि दोषोंसे संयुक्त रहनेवाले पशु भी पार्वतीके तपकी महिमासे वहाँ परस्पर बाधा नहीं पहुँचाते थे। मुनिश्रेष्ठ! इनके अतिरिक्त जो स्वभावतः एक-दूसरेके वैरी हैं, वे चूहे-बिल्ली आदि दूसरे-दूसरे जीव भी उस आश्रमपर कभी रोष आदि विकारोंसे युक्त नहीं होते थे। वहाँके सभी वृक्षोंमें सदा फल लगे रहते थे। भाँति-भाँतिके तृण और विचित्र पुष्प उस वनकी शोभा बढ़ाते थे। वहाँका सारा वनप्रान्त कैलासके समान हो गया। पार्वतीके तपकी सिद्धिका साकार रूप बन गया।

(अध्याय २२)

☆

पार्वतीकी तपस्याविषयक दृढ़ता, उनका पहलेसे भी उग्र तप, उससे त्रिलोकीका संतप्त होना तथा समस्त देवताओंके साथ ब्रह्मा और विष्णुका भगवान् शिवके स्थानपर जाना

ब्रह्माजी कहते हैं—मुनीश्वर! शिवकी प्राप्तिके लिये इस प्रकार तपस्या करती हुई पार्वतीके बहुत वर्ष बीत गये, तो भी भगवान् शंकर प्रकट नहीं हुए। तब हिमाचल, मेना, मेरु और मन्दराचल आदिने आकर पार्वतीको समझाया और शिवकी प्राप्तिको अत्यन्त दुष्कर बताकर उनसे यह अनुरोध किया कि तुम तपस्या छोड़कर घरको लौट चलो।

तब उन सबकी बात सुनकर पार्वतीने कहा—पिताजी! माताजी! तथा मेरे सभी बान्धव! मैंने पहले जो बात कही थी, उसे क्या आपलोगोंने भुला दिया है? अस्तु, इस समय भी मेरी जो प्रतिज्ञा है, उसे आपलोग सुन लें। जिन्होंने रोषसे कामदेवको जलाकर भस्म कर दिया है वे महादेवजी यद्यपि विरक्त हैं, तो भी मैं अपनी तपस्यासे उन भक्तवत्सल भगवान् शंकरको अवश्य संतुष्ट करूँगी। आप सब लोग प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने घरको जायँ; महादेवजी संतुष्ट होंगे ही, इसमें अन्यथा विचारकी आवश्यकता नहीं है। जिन्होंने कामदेवको जलाया है, जिन्होंने इस पर्वतके वनको भी जलाकर भस्म कर दिया है, उन भगवान् शंकरको मैं केवल तपस्यासे यहीं बुलाऊँगी। महाभागगण! आप यह जान लें कि महान् तपोबलसे ही भगवान् सदाशिवकी सेवा सुलभ हो सकती है। यह मैं आपलोगोंसे सत्य, सत्य कहती हूँ।

सुमधुर भाषण करनेवाली पर्वतराज-कुमारी शिवा माता मेनका, भाई मैनाक,

पिता हिमालय और मन्दराचल आदिसे उपर्युक्त बात कहकर शीघ्र ही चुप हो गयीं। शिवाके ऐसा कहनेपर वे चतुर-चालाक पर्वत, गिरिराज सुमेरु आदि गिरिजाकी बारंबार प्रशंसा करते हुए अत्यन्त विस्मित हो जैसे आये थे, वैसे ही लौट गये। उन सबके चले जानेपर सखियोंसे घिरी हुई पार्वती मनमें यथार्थ निश्चय करके पहलेसे भी अधिक उग्र तपस्या करने लगीं। मुनिश्रेष्ठ! देवताओं, असुरों, मनुष्यों और चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिलोकी उस महती तपस्यासे संतप्त हो उठी। उस समय समस्त देवता, असुर, यक्ष, किंनर, चारण, सिद्ध, साध्य, मुनि, विद्याधर, बड़े-बड़े नाग, प्रजापति, गुह्यक तथा अन्य लोग महान्-से-महान् कष्टमें पड़ गये। परंतु इसका कोई कारण उनकी समझमें नहीं आया। तब इन्द्र आदि सब देवता मिलकर गुरु बृहस्पतिसे सलाह ले बड़ी विह्वलताके साथ सुमेरु पर्वतपर मुझ विधाताकी शरणमें आये। उस समय उनके सारे अङ्ग संतप्त हो रहे थे। वहाँ आ मुझे प्रणामकर उन सभी व्याकुल और कान्तिहीन देवताओंने मेरी स्तुति करके एक साथ ही मुझसे पूछा—'प्रभो! जगत्के संतप्त होनेका क्या कारण है?'

उनका यह प्रश्न सुनकर मन-ही-मन शिवका स्मरण करके विचारपूर्वक मैंने सब कुछ जान लिया। इस समय विश्वमें जो दाह उत्पन्न हो गया है, यह गिरिजाकी तपस्याका फल है—यह जानकर मैं उन सबके साथ शीघ्र ही क्षीरसागरको गया। वहाँ जानेका उद्देश्य भगवान् विष्णुसे सब कुछ बताना था। वहाँ पहुँचकर देखा, भगवान् श्रीहरि सुखद आसनपर विराजमान हैं। देवताओंके साथ मैंने हाथ जोड़कर प्रणामपूर्वक उनकी स्तुति की और कहा—'महाविष्णो! तपस्यामें लगी हुई पार्वतीके परम उग्र तपसे संतप्त हो हम सब लोग आपकी शरणमें आये हैं। आप हमें बचाइये, बचाइये।' हम सब देवताओंकी यह बात सुनकर शेषशय्यापर बैठे हुए भगवान् लक्ष्मीपति हमसे बोले।

श्रीविष्णुने कहा—देवताओ! मैंने आज पार्वतीजीकी तपस्याका सारा कारण जान लिया है। अतः तुमलोगोंके साथ अब परमेश्वर शिवके समीप चलता हूँ। हम सब लोग मिलकर यह प्रार्थना करेंगे कि वे गिरिजाको ब्याहकर अपने यहाँ ले आवें। अमरो! इस समय समस्त संसारके कल्याणके लिये भगवान्से शिवाके पाणिग्रहणके लिये अनुरोध करना है। देवाधिदेव पिनाकधारी भगवान् शिव शिवाको वर देनेके लिये जैसे भी वहीं उनके आश्रमपर जायँ, इस समय हम वैसा ही प्रयत्न करेंगे। अतः परम मङ्गलमय महाप्रभु रुद्र जहाँ उग्र तपस्यामें लगे हुए हैं, वहीं हम सब लोग चलें।

भगवान् विष्णुकी यह बात सुनकर समस्त देवता आदि हठी, क्रोधी और जलानेके लिये उद्यत रहनेवाले प्रलयंकर रुद्रसे अत्यन्त भयभीत हो बोले।

देवताओंने कहा—भगवन्! जो महाभयंकर, कालाग्निके समान दीप्तिमान् और भयानक नेत्रोंसे युक्त हैं, उन रोषभरे महाप्रभु रुद्रके पास हमलोग नहीं जा सकेंगे; क्योंकि जैसे पहले उन्होंने कुपित हो दुर्जय कामको भी जला दिया था, उसी प्रकार वे हमें भी दग्ध कर डालेंगे—इसमें संशय नहीं है।

मुने ! इन्द्रादि देवताओंकी बात सुनकर लक्ष्मीपति श्रीहरिने उन सबको सान्त्वना देते हुए कहा।

श्रीहरि बोले—हे देवताओ ! तुम सब लोग प्रेम और आदरके साथ मेरी बात सुनो। भगवान् शिव देवताओंके स्वामी तथा उनके भयका नाश करनेवाले हैं। वे तुम्हें नहीं दग्ध करेंगे। तुम सब लोग बड़े चतुर हो। अतः तुम्हें शम्भुको कल्याणकारी मानकर हमारे साथ सबके उत्तम प्रभु उन महादेवजीकी शरणमें चलना चाहिये। भगवान् शिव पुराणपुरुष, सर्वेश्वर, वरणीय, परात्पर, तपस्वी और परमात्मस्वरूप हैं; अतः हमें उनकी शरणमें अवश्य चलना चाहिये।

प्रभावशाली विष्णुके ऐसा कहनेपर सब देवता उनके साथ पिनाकपाणि शिवका दर्शन करनेके लिये गये। मार्गमें पार्वतीका आश्रम पहले पड़ता था। अतः उन गिरिराजनन्दिनीकी तपस्या देखनेके लिये विष्णु आदि सब देवता कौतूहलपूर्वक उनके आश्रमपर गये। पार्वतीके श्रेष्ठ तपको देखकर सब देवता उनके उत्तम तेजसे व्याप्त हो गये। उन्होंने तपस्यामें लगी हुई उन तेजोमयी जगदम्बाको नमस्कार किया और साक्षात् सिद्धिस्वरूपा शिवादेवीके तपकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए वे सब देवता उस स्थानपर गये, जहाँ भगवान् वृषभध्वज विराजमान थे। मुने ! वहाँ पहुँचकर सब देवताओंने पहले तुम्हें उनके पास भेजा और स्वयं वे मदनदहनकारी भगवान् हरसे दूर ही खड़े रहे। वे वहींसे यह देखते रहे कि भगवान् शिव कुपित हैं या प्रसन्न। नारद ! तुम तो सदा निर्भय रहनेवाले और विशेषतः शिवके भक्त हो। अतः तुमने भगवान् शिवके स्थानपर जाकर उन्हें सर्वथा प्रसन्न देखा। फिर वहाँसे लौटकर तुम श्रीविष्णु आदि सब देवताओंको भगवान् शिवके स्थानपर ले गये। वहाँ पहुँचकर विष्णु आदि सब देवताओंने देखा, भक्तवत्सल भगवान् शिव सुखपूर्वक प्रसन्न मुद्रामें बैठे हैं। अपने गणोंसे घिरे हुए शम्भु तपस्वीका रूप धारण किये योगपट्टपर आसीन थे। उन परमेश्वररूपी शंकरका दर्शन करके मेरे सहित श्रीविष्णु तथा अन्य देवताओं, सिद्धों और मुनीश्वरोंने उन्हें प्रणाम करके वेदों और उपनिषदोंके सूत्रोंद्वारा उनका स्तवन किया।

(अध्याय २३)

☆

देवताओंका भगवान् शिवसे पार्वतीके साथ विवाह करनेका अनुरोध, भगवान्‌का विवाहके दोष बताकर अस्वीकार करना तथा उनके पुनः प्रार्थना करनेपर स्वीकार कर लेना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! देवताओंने वहाँ पहुँचकर भगवान् रुद्रको प्रणाम करके उनकी स्तुति की। तब चन्द्रिकेश्वरने भगवान् शिवसे उनकी दीनबन्धुता एवं भक्त-वत्सलताकी प्रशंसा करते हुए कहा—'प्रभो ! देवता और मुनि संकटमें पड़कर आपकी शरणमें आये हैं। सर्वेश्वर ! आप उनका उद्धार करें।'

दयालु नन्दीके इस प्रकार सूचित करनेपर भगवान् शम्भु धीरे-धीरे आँखें

खोलकर ध्यानसे उपरत हुए। समाधिसे विरत हो परमज्ञानी परमात्मा एवं ईश्वर शम्भुने समस्त देवताओंसे इस प्रकार कहा।

शम्भु बोले—श्रीविष्णु और ब्रह्मा आदि देवेश्वरो! तुम सब लोग मेरे समीप कैसे आये? तुम अपने आनेका जो भी कारण हो, वह शीघ्र बताओ।

भगवान् शंकरका यह वचन सुनकर सब देवता प्रसन्न हो कारण बतानेके लिये भगवान् विष्णुके मुँहकी ओर देखने लगे। तब शिवके महान् भक्त और देवताओंके हितकारी श्रीविष्णु मेरे बताये हुए देवताओंके महत्तर कार्यको सूचित करने लगे। उन्होंने कहा—'शम्भो! तारकासुरने देवताओंको अत्यन्त अद्भुत एवं महान् कष्ट प्रदान किया है। यही बतानेके लिये सब देवता यहाँ आये हैं। भगवन्! आपके औरस पुत्रसे ही तारक दैत्य मारा जा सकेगा और किसी प्रकारसे नहीं। मेरा यह कथन सर्वथा सत्य है। महादेव! इस प्रकार विचार करके आप कृपा करें। आपको नमस्कार है। स्वामिन्! तारकासुरके द्वारा उपस्थित किये गये इस कष्टसे आप देवताओंका उद्धार कीजिये। देव! शम्भो! आप दाहिने हाथसे गिरिजाका पाणिग्रहण करें। गिरिराज हिमवान्के द्वारा दी हुई महानुभावा पार्वतीको पाणिग्रहणके द्वारा ही अनुगृहीत कीजिये।'

श्रीविष्णुका यह वचन सुनकर योगपरायण भगवान् शिवने उन सबको उत्तम गतिका दर्शन कराते हुए इस प्रकार कहा—'देवताओ! ज्यों ही मैंने सर्वाङ्ग-सुन्दरी गिरिजा देवीको स्वीकार किया, त्यों ही समस्त सुरेश्वर तथा ऋषि-मुनि सकाम हो जायँगे। फिर तो वे परमार्थपथपर चलनेमें समर्थ न हो सकेंगे। दुर्गा अपने पाणिग्रहण-मात्रसे ही कामदेवको जीवित कर देंगी। विष्णो! मैंने कामदेवको जलाकर देवताओंका बहुत बड़ा कार्य सिद्ध किया है। आजसे सब लोग मेरे साथ सुनिश्चितरूपसे निष्काम होकर रहें। देवताओ! जैसे मैं हूँ, उसी तरह तुम सब लोग पृथक्-पृथक् रहकर कोई विशेष प्रयत्न किये बिना ही अत्यन्त दुष्कर एवं उत्तम तपस्या कर सकोगे। अब उस मदनके न होनेसे तुम सब देवता समाधिके द्वारा परमानन्दका अनुभव करते हुए निर्विकार हो जाओ; क्योंकि काम नरककी ही प्राप्ति करानेवाला है। कामसे क्रोध होता है, क्रोधसे मोह होता है और मोहसे तपस्या नष्ट होती है। अतः तुम सभी श्रेष्ठ देवताओंको काम और क्रोधका परित्याग कर देना चाहिये, मेरे इस कथनको कभी अन्यथा नहीं मानना चाहिये।*

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! वृषभके चिह्नसे युक्त ध्वजा धारण करनेवाले भगवान् महादेवने इस प्रकारकी बातें सुनाकर ब्रह्मा, विष्णु, देवताओं तथा मुनियोंको निष्काम धर्मका उपदेश दिया। तदनन्तर भगवान् शम्भु पुनः ध्यान लगाकर चुप हो गये और पहलेकी ही भाँति पार्षदोंसे

---

* कामो हि नरकायैव तस्मात् क्रोधोऽभिजायते। क्रोधाद्भवति सम्मोहो मोहाच्च भ्रश्यते तपः॥
कामक्रोधौ परित्याज्यौ भवद्भिः सुरसत्तमैः। सर्वैरेव च मन्तव्यं मद्वाक्यं नान्यथा क्वचित्॥
(शि॰ पु॰ रु॰ सं॰ पा॰ खं॰ २४।२७-२८)

घिरे हुए सुस्थिरभावसे बैठ गये। वे अपने मनमें ही स्वयं आत्मस्वरूप, निरञ्जन, निराभास, निर्विकार, निरामय, परात्पर, नित्य ममतारहित, निरवग्रह, शब्दातीत, निर्गुण, ज्ञानगम्य एवं प्रकृतिसे पर परमात्माका चिन्तन करने लगे। इस प्रकार परम स्वरूपका चिन्तन करते हुए वे ध्यानमें स्थित हो गये। बहुत-से प्राणियोंकी सृष्टि करनेवाले भगवान् शिव ध्यान करते-करते ही परमानन्दमें निमग्न हो गये। श्रीहरि एवं इन्द्र आदि देवताओंने जब परमेश्वर शिवको ध्यानमग्न देखा, तब उन्होंने नन्दीकी सम्मति ली। नन्दीने पुनः दीनभावसे स्तुति करनेके लिये कहा। उनकी इस सत्सम्मतिके अनुसार देवता स्तुति करने लगे। वे बोले—'देवदेव! महादेव! करुणासागर प्रभो! हम आपकी शरणमें आये हैं। आप महान् क्लेशसे हमारा उद्धार कीजिये।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! इस प्रकार बहुत दीनतापूर्ण उक्तिसे देवताओंने भगवान् शंकरकी स्तुति की। इसके बाद वे सब देवता प्रेमसे व्याकुलचित्त हो उच्च स्वरसे फूट-फूटकर रोने लगे। मेरे साथ भगवान् श्रीहरि उत्तम भक्तिभावसे युक्त हो मन-ही-मन भगवान् शम्भुका स्मरण करते हुए अत्यन्त दीनतापूर्ण वाणीद्वारा उनसे अपना अभिप्राय निवेदन करने लगे।

देवताओंके, मेरे तथा श्रीहरिके इस प्रकार बहुत स्तुति करनेपर भगवान् महेश्वर अपनी भक्तवत्सलताके कारण ध्यानसे विरत हो गये। उनका मन अत्यन्त प्रसन्न था। वे भक्तवत्सल शंकर श्रीहरि आदिको करुणादृष्टिसे देखकर उनका हर्ष बढ़ाते हुए बोले—'विष्णो! ब्रह्मन्! तथा इन्द्र आदि देवताओ! तुम सब लोग एक साथ यहाँ किस अभिप्रायसे आये हो? मेरे सामने सच-सच बताओ।'

श्रीहरिने कहा—महेश्वर! आप सर्वज्ञ हैं, सबके अन्तर्यामी ईश्वर हैं। क्या आप हमारे मनकी बात नहीं जानते? अवश्य जानते हैं, तथापि आपकी आज्ञासे मैं स्वयं भी कहता हूँ। सुखदायक शंकर! हम सब देवताओंको तारकासुरसे अनेक प्रकारका दुःख प्राप्त हुआ है। इसीलिये देवताओंने आपको प्रसन्न किया है। आपके लिये ही उन्होंने गिरिराज हिमालयसे शिवाकी उत्पत्ति करायी है। शिवाके गर्भसे आपके द्वारा जो पुत्र उत्पन्न होगा, उसीसे तारकासुरकी मृत्यु होगी, दूसरे किसी उपायसे नहीं। ब्रह्माजीने उस दैत्यको यही वर दिया है। इस कारण दूसरेसे उसकी मृत्यु नहीं हो पा रही है। अतएव वह निडर होकर सारे संसारको कष्ट दे रहा है। इधर नारदजीकी आज्ञासे पार्वती कठोर तपस्या कर रही हैं। उनके तेजसे समस्त चराचर प्राणियोंसहित त्रिलोकी आच्छादित हो गयी है। इसलिये परमेश्वर! आप शिवाको वर देनेके लिये जाइये। स्वामिन्! देवताओंका दुःख मिटाइये और हमें सुख दीजिये। शंकर! मेरे तथा देवताओंके हृदयमें आपके विवाहका उत्सव देखनेके लिये बड़ा भारी उत्साह है। अतः आप यथोचित रीतिसे विवाह कीजिये। परात्पर परमेश्वर! आपने रतिको जो वर दिया था, उसकी पूर्तिका अवसर आ गया है। अतः अपनी प्रतिज्ञाको शीघ्र सफल कीजिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! ऐसा कह उन्हें प्रणाम करके श्रीविष्णु आदि देवताओं

और महर्षियोंने नाना प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा पुनः उनकी स्तुति की। फिर वे सब-के-सब उनके सामने खड़े हो गये। भक्तोंके अधीन रहनेवाले भगवान् शंकर भी, जो वेदमर्यादाके रक्षक हैं, देवताओंकी बात सुन हँसकर बोले—'हे हरे! हे विधे! और हे देवताओ! तुम सब लोग आदरपूर्वक सुनो। मैं यथोचित, विशेषतः विवेकपूर्ण बात कह रहा हूँ। विवाह करना मनुष्योंके लिये उचित कार्य नहीं है; क्योंकि विवाह दृढ़तापूर्वक बाँध रखनेवाली एक बहुत बड़ी बेड़ी है। जगत्‌में बहुत-से कुसङ्ग हैं; परंतु स्त्रीका सङ्ग उनमें सबसे बढ़कर है। मनुष्य सारे बन्धनोंसे छुटकारा पा सकता है, परंतु स्त्रीसङ्गरूपी बन्धनसे वह मुक्त नहीं हो पाता। लोहे और काठकी बनी हुई बेड़ियोंमें दृढ़तापूर्वक बँधा हुआ पुरुष भी एक दिन उस कैदसे छुटकारा पा जाता है, परंतु स्त्री-पुत्र आदिके बन्धनमें बँधा हुआ मनुष्य कभी छूट नहीं पाता। महान् बन्धनमें डालनेवाले विषय सदा बढ़ते रहते हैं। जिसका मन विषयोंके वशीभूत हो गया है, उसके लिये मोक्ष स्वप्नमें भी दुर्लभ है। विद्वान् पुरुष यदि सुख चाहता है तो वह विषयोंको विधिपूर्वक त्याग दे। विषयोंको विषके समान बताया गया है, जिनके द्वारा मनुष्य मारा जाता है। विषयीके साथ वार्ता करनेमात्रसे मनुष्य क्षणभरमें पतित हो जाता है। आचार्योंने विषयको मिश्री मिलायी हुई वारुणी (मदिरा) कहा है *। यद्यपि मैं इस बातको जानता हूँ और यद्यपि विषयोंके इन सारे दोषोंका मुझे विशेष ज्ञान है, तथापि मैं तुम्हारी प्रार्थनाको सफल करूँगा; क्योंकि मैं भक्तोंके अधीन रहता हूँ और भक्त-वत्सलतावश उचित-अनुचित सारे कार्य करता हूँ। इसलिये तीनों लोकोंमें 'अयथोचितकर्ता' के रूपमें मेरी प्रसिद्धि है। भक्तोंके लिये मैंने अनेक बार बहुत-से प्रयत्न करके कष्ट सहन किये हैं, गृहपति होकर विश्वानर मुनिका दुःख दूर किया है। हरे! विधे! अब अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता। मेरी जो प्रतिज्ञा है, उसे तुम सब लोग अच्छी तरह जानते हो। मैं यह सत्य कहता हूँ कि जब-जब भक्तोंपर कहीं विपत्ति आती है, तब-तब मैं तत्काल उनके सारे कष्ट हर लेता हूँ। तारकासुरसे तुम सब लोगोंको जो दुःख प्राप्त हुआ है, उसे मैं जानता हूँ और उसका हरण करूँगा, यह भी सत्य-सत्य बता रहा हूँ। यद्यपि मेरे मनमें विवाह करनेकी कोई रुचि नहीं है तथापि मैं

---

* कुसङ्गा बहवो लोके स्त्रीसङ्गस्तत्र चाधिकः। उद्धरेत्सकलैर्बन्धैर्न स्त्रीसङ्गात् प्रमुच्यते॥
लोहदारुमयैः पाशैर्दृढं बद्धोऽपि मुच्यते। स्त्र्यादिपाशसुसम्बद्धो मुच्यते न कदाचन॥
वर्द्धन्ते विषयाः शश्वन्महाबन्धनकारिणः। विषयाक्रान्तमनसः स्वप्ने मोक्षोऽपि दुर्लभः॥
सुखमिच्छति चेत् प्राज्ञो विधिवद् विषयांस्त्यजेत्। विषवद् विषयानाहुर्विषयैर्येन हन्यते॥
जनो विषयिणा साकं वार्तातः पतति क्षणात्। विषयं प्राहुराचार्याः सितालिप्तेन्द्रवारुणीम्॥
(शि॰ पु॰ रु॰ सं॰ पा॰ खं॰ २४।५९—६५)

पुत्रोत्पादनके लिये गिरिजाके साथ विवाह करूँगा। तुम सब देवता अब निर्भय होकर अपने-अपने घर जाओ। मैं तुम्हारा कार्य सिद्ध करूँगा। इस विषयमें अब कोई विचार नहीं करना चाहिये।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! ऐसा कहकर भगवान् शंकर मौन हो समाधिमें स्थित हो गये और विष्णु आदि सभी देवता अपने-अपने धामको चले गये।

(अध्याय २४)

☆

भगवान् शिवकी आज्ञासे सप्तर्षियोंका पार्वतीके आश्रमपर जा उनके शिवविषयक अनुरागकी परीक्षा करना और भगवान्‌को सब वृत्तान्त बताकर स्वर्गको जाना

ब्रह्माजी कहते हैं—देवताओंके अपने आश्रममें चले जानेपर पार्वतीके तपकी परीक्षाके लिये भगवान् शंकर समाधिस्थ हो गये। वे स्वयं अपने-आपमें, अपने ही परात्पर, स्वस्थ, मायारहित तथा उपद्रवशून्य स्वरूपका चिन्तन करने लगे। उस ध्येय वस्तुके रूपमें साक्षात् भगवान् महेश्वर ही विराजमान हैं। उनकी गतिका किसीको ज्ञान नहीं होता। वे भगवान् वृषभध्वज ही सबके स्रष्टा—परमेश्वर हैं।

तात! उन दिनों पार्वतीदेवी बड़ी भारी तपस्या कर रही थीं। उस तपस्यासे रुद्रदेव भी बड़े विस्मयमें पड़ गये। भक्ताधीन होनेके कारण ही वे समाधिसे विचलित हो गये और किसी कारणसे नहीं। तदनन्तर सृष्टिकर्ता हरने वसिष्ठ आदि सप्तर्षियोंका स्मरण किया। उनके स्मरण करते ही वे सातों ऋषि शीघ्र ही वहाँ आ पहुँचे। उनके मुखपर प्रसन्नता छा रही थी तथा वे सब-के-सब अपने सौभाग्यकी अधिक सराहना करते थे। उन्हें आया देख भगवान् शिवके नेत्र प्रसन्नतासे प्रफुल्ल कमलके समान खिल उठे और वे हँसते हुए बोले—'तात सप्तर्षियो! तुम सब लोग मेरे हितकारी तथा सम्पूर्ण वस्तुओंके ज्ञानमें निपुण हो। अतः शीघ्र मेरी बात सुनो। गिरिराजकुमारी देवेश्वरी पार्वती इस समय सुस्थिरचित्त हो गौरी-शिखर नामक पर्वतपर तपस्या कर रही हैं। मुझे पतिरूपमें प्राप्त करना ही उनकी तपस्याका उद्देश्य है। द्विजो! इस समय केवल सखियाँ उनकी सेवामें हैं। मेरे सिवा दूसरी समस्त कामनाओंका परित्याग करके वे एक उत्तम निश्चयपर पहुँच चुकी हैं। मुनिवरो! तुम सब लोग मेरी आज्ञासे वहाँ जाओ और प्रेमपूर्ण हृदयसे उनकी दृढ़ताकी परीक्षा करो। वहाँ तुम्हें सर्वथा छलयुक्त बातें कहनी चाहिये। उत्तम व्रतधारी महर्षियो! मेरी आज्ञासे ऐसा करना है। इसलिये तुम्हें संशय नहीं करना चाहिये।'

भगवान् शंकरकी यह आज्ञा पाकर वे सातों ऋषि तुरंत ही उस स्थानपर जा पहुँचे, जहाँ दीप्तिमती जगन्माता पार्वती विराजमान थीं। सप्तर्षियोंने वहाँ शिवाकी तपस्याकी मूर्तिमती दूसरी सिद्धिके समान देखा। उनका तेज महान् था। वे अपने उत्तम तेजसे प्रकाशित हो रही थीं। उन उत्तम व्रतधारी सप्तर्षियोंने उन्हें मन-ही-मन प्रणाम किया

और उनके द्वारा विशेषतः पूजित हो वे मस्तक झुकाये इस प्रकार बोले—

ऋषियोंने कहा—देवि ! गिरिराज-नन्दिनि ! हमारी यह बात सुनो। हम जानना चाहते हैं कि तुम किसलिये तपस्या करती हो ? तथा इसके द्वारा किस देवताको और किस फलको पाना चाहती हो ?

उन द्विजोंके इस प्रकार पूछनेपर गिरिराजकुमारी देवी शिवाने उनके सामने अत्यन्त गोपनीय होनेपर भी सच्ची बात बतायी।

पार्वती बोलीं—मुनीश्वरो ! आपलोग प्रसन्नतापूर्ण हृदयसे मेरी बात सुनें। मैंने अपनी बुद्धिसे जिसका चिन्तन किया है, अपना वह विचार मैं आपके सामने रखती हूँ। आपलोग मेरी असम्भव बातें सुनकर मेरा उपहास करेंगे, इसलिये उन्हें कहनेमें संकोच ही होता है, तथापि कहती हूँ। क्या करूँ ? मेरा यह मन अत्यन्त दृढ़तापूर्वक एक उत्कृष्ट कर्मके अनुष्ठानमें लगा है और ऐसा करनेके लिये विवश हो गया। यह पानीके ऊपर बहुत बड़ी और ऊँची दीवार खड़ी करना चाहता है। देवर्षिका उपदेश पाकर मैं 'भगवान् रुद्र मेरे पति हों' इस मनोरथको मनमें लिये अत्यन्त कठोर तप कर रही हूँ। मेरा मनरूपी पक्षी बिना पाँखके ही हठपूर्वक आकाशमें उड़ रहा है। मेरे स्वामी करुणानिधान भगवान् शंकर ही उसके इस आशाकी पूर्ति कर सकते हैं।

पार्वतीका यह वचन सुनकर वे मुनि हँस पड़े और गिरिजाका सम्मान करते हुए प्रसन्नतापूर्वक छलयुक्त मिथ्या वचन बोले।

ऋषियोंने कहा—गिरिराजनन्दिनि ! देवर्षि नारद व्यर्थ ही अपनेको पण्डित मानते हैं। उनके मनमें क्रूरता भरी रहती है। आप समझदार होकर भी क्या उनके चरित्रको नहीं जानतीं। नारद छल-कपटकी बातें करते हैं और दूसरोंके चित्तको मोहमें डालकर मथ डालते हैं। उनकी बातें सुननेसे सर्वथा हानि ही होती है। ब्रह्मपुत्र दक्षके पुत्रोंको नारदने जो छलपूर्ण उपदेश दिया, उसका फल यह हुआ कि वे सब-के-सब अपने पिताके घर लौटकर न आ सके। यही छल उन्होंने दक्षके दूसरे पुत्रोंका भी किया। वे भी उनके चक्करमें आकर भिखारी बन गये। विद्याधर चित्रकेतुको इन्होंने ऐसा उपदेश दिया कि उसका घर ही उजड़ गया। प्रह्लादको अपना चेला बनाकर इन्होंने हिरण्यकशिपुसे बड़े-बड़े दुःख दिलवाये। ये सदा दूसरोंकी बुद्धिमें भेद पैदा किया करते हैं। नारदमुनि कानोंको पसंद आनेवाली अपनी विद्या जिस-जिसको सुना देते हैं, वही अपना घर छोड़कर तत्काल भीख माँगने लगता है। उनका मन मलिन है। केवल शरीर ही सदा उज्ज्वल दिखायी देता है। हम उन्हें विशेष रूपसे जानते हैं; क्योंकि उनके साथ रहते हैं। उनका उपदेश पाकर बड़े-बड़े विद्वानोंद्वारा सम्मानित होनेवाली तुम भी व्यर्थ ही भुलावेमें आ गयी और मूर्ख बनकर दुष्कर तपस्या करने लगी।

बाले ! तुम जिनके लिये यह भारी तपस्या करती हो, वे रुद्र सदा उदासीन, निर्विकार तथा कामके शत्रु हैं—इसमें संशय नहीं है। वे अमाङ्गलिक वस्तुओंसे युक्त शरीर धारण करते हैं, लज्जाको तिलाञ्जलि दे चुके हैं, उनका न कहीं घर है न द्वार। वे किस कुलमें उत्पन्न हुए हैं, इसका भी किसीको पता नहीं है। कुत्सित वेष

धारण किये भूतों तथा प्रेत आदिके साथ रहते हैं और नंग-धड़ंग हो शूल धारण किये घूमते हैं। धूर्त नारदने अपनी मायासे तुम्हारे सारे विज्ञानको नष्ट कर दिया, युक्तिसे तुम्हें पोह लिया और तुमसे तप करवाया। देवेश्वरि ! गिरिराजनन्दिनि ! तुम्हीं विचार करो कि ऐसे वरको पाकर तुम्हें क्या सुख मिलेगा। पहले रुद्रने बुद्धिसे खूब सोच-विचारकर साध्वी सतीसे विवाह किया। परंतु वे ऐसे मूढ़ हैं कि कुछ दिन भी उनके साथ निबाह न सके। उस बेचारीको वैसे ही दोष देकर उन्होंने त्याग दिया और स्वयं स्वतन्त्र हो अपने निष्कल और शोकरहित स्वरूपका ध्यान करते हुए उसीमें सुखपूर्वक रम गये। देवि ! जो सदा अकेले रहनेवाले, शान्त, सङ्गरहित और अद्वितीय हैं, उनके साथ किसी स्त्रीका निर्वाह कैसे होगा ? आज भी कुछ नहीं बिगड़ा है। तुम हमारी आज्ञा मानकर घर लौट चलो और इस दुर्बुद्धिको त्याग दो। महाभागे ! इससे तुम्हारा भला होगा। तुम्हारे योग्य वर हैं भगवान् विष्णु, जो समस्त सद्गुणोंसे युक्त हैं। वे वैकुण्ठमें रहते हैं, लक्ष्मीके स्वामी हैं और नाना प्रकारकी क्रीडाएँ करनेमें कुशल हैं। उनके साथ हम तुम्हारा विवाह करा देंगे और वह विवाह तुम्हारे लिये समस्त सुखोंको देनेवाला होगा। पार्वती ! तुम्हारा जो रुद्रके साथ विवाह करनेका हठ है, ऐसे हठको छोड़ दो और सुखी हो जाओ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! उनकी ऐसी बात सुनकर जगदम्बिका पार्वती हँस पड़ीं और पुनः उन ज्ञानविशारद मुनियोंसे बोलीं।

पार्वतीने कहा—मुनीश्वरो ! आपने अपनी समझसे ठीक ही कहा है। परंतु द्विजो ! मेरा हठ भी छूटनेवाला नहीं है। मेरा शरीर पर्वतसे उत्पन्न होनेके कारण मुझमें

स्वाभाविक कठोरता विद्यमान है। अपनी बुद्धिसे ऐसा विचारकर आपलोग मुझे तपस्यासे रोकनेका कष्ट न करें। देवर्षिका उपदेश-वाक्य मेरे लिये परम हितकारक है। इसलिये मैं उसे कभी नहीं छोड़ूँगी। वेदवेत्ता भी यह मानते हैं कि गुरुजनोंका वचन हितकारक होता है। 'गुरुओंका वचन सत्य होता है', ऐसा जिनका दृढ़ विचार है, उन्हें इहलोक और परलोकमें परम सुखकी प्राप्ति होती है और दुःख कभी नहीं होता। 'गुरुओंका वचन सत्य होता है' यह विचार जिनके हृदयमें नहीं है, उन्हें इहलोक और परलोकमें भी दुःख ही प्राप्त होता है, सुख कभी नहीं मिलता। अतः द्विजो ! गुरुओंके वचनका कभी किसी तरह भी त्याग नहीं करना चाहिये। मेरा घर बसे या उजड़ जाय, मुझे तो यह हठ ही सदा सुख देनेवाला है।

मुनिवरो ! आपने जो बातें कही हैं, मैं उनका आपके कहे हुए तात्पर्यसे भिन्न अर्थ समझती हूँ और उनका यहाँ संक्षेपसे विवेचन प्रस्तुत करती हूँ। आपने यह ठीक कहा कि भगवान् विष्णु सद्गुणोंके धाम तथा लीलाविहारी हैं। साथ ही आपने सदाशिवको निर्गुण कहा है। इसमें जो कारण है, वह बताया जाता है। भगवान् शिव साक्षात् परब्रह्म हैं, अतएव निर्विकार हैं। वे केवल भक्तोंके लिये शरीर धारण करते हैं, फिर भी लौकिकी प्रभुताको दिखाना नहीं चाहते। अतः परमहंसोंकी जो प्रिय गति है, उसीको वे धारण करते हैं; क्योंकि वे भगवान् शम्भु परमानन्दमय हैं, इसलिये अवधूतरूपसे रहते हैं। मायालिप्त जीवोंको ही भूषण आदिकी रुचि होती है, ब्रह्मको नहीं। वे प्रभु गुणातीत, अजन्मा, मायारहित, अलक्ष्यगति और विराट् हैं। द्विजो ! भगवान् शम्भु किसी विशेष धर्म या जाति आदिके कारण किसीपर अनुग्रह नहीं करते। मैं गुरुकी कृपासे ही शिवको यथार्थरूपसे जानती हूँ। ब्रह्मर्षियो ! यदि शिव मेरे साथ विवाह नहीं करेंगे तो मैं सदा कुमारी ही रह जाऊँगी, परंतु दूसरेके साथ विवाह नहीं करूँगी। यह मैं सत्य-सत्य कहती हूँ। यदि सूर्य पश्चिम दिशामें उगने लगें, मेरुपर्वत अपने स्थानसे विचलित हो जाय, अग्नि शीतलताको अपना ले तथा कमल पर्वतशिखरकी शिलाके ऊपर खिलने लगे, तो भी मेरा हठ छूट नहीं सकता। यह मैं सच्ची बात कहती हूँ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ऐसा कह उन मुनियोंको प्रणाम करके गिरिराजकुमारी पार्वती निर्विकार चित्तसे शिवका स्मरण करती हुई चुप हो गयीं। इस प्रकार गिरिजाके उस उत्तम निश्चयको जानकर वे सप्तर्षि भी उनकी जय-जयकार करने लगे और उन्होंने पार्वतीको उत्तम आशीर्वाद दिया। मुने ! गिरिजादेवीकी परीक्षा करनेवाले वे सातों ऋषि उनको प्रणाम करके प्रसन्नचित्त हो शीघ्र ही भगवान् शिवके स्थानको चले गये। वहाँ पहुँचकर शिवको मस्तक नवा, उनसे सारा वृत्तान्त निवेदन करके, उनकी आज्ञा ले वे पुनः सादर स्वर्गलोकको चले गये।

(अध्याय २५)

☆

भगवान् शंकरका जटिल तपस्वी ब्राह्मणके रूपमें पार्वतीके आश्रमपर जाना, उनसे सत्कृत हो उनकी तपस्याका कारण पूछना तथा पार्वतीजीका अपनी सखी विजयासे सब कुछ कहलाना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! उन सप्तर्षियोंके अपने लोकमें चले जानेपर सुन्दर लीला करनेवाले साक्षात् भगवान् शंकरने देवीके तपकी परीक्षा लेनेका विचार किया। वे मन-ही-मन पार्वतीसे बहुत संतुष्ट थे। परीक्षाके ही बहाने पार्वतीजीको देखनेके लिये जटाधारी तपस्वीका रूप धारण करके भगवान् शम्भु उनके वनमें गये। अपने तेजसे प्रकाशमान अत्यन्त बूढ़े ब्राह्मणका रूप धारण करके प्रसन्नचित्त हो वे दण्ड और छत्र लिये वहाँसे प्रस्थित हुए। आश्रममें पहुँचकर उन्होंने देखा

देवी शिवा सखियोंसे घिरी हुई वेदीपर बैठी हैं और चन्द्रमाकी विशुद्ध कला-सी प्रतीत होती हैं। ब्रह्मचारीका स्वरूप धारण किये भक्तवत्सल शम्भु पार्वतीदेवीको देखकर प्रीतिपूर्वक उनके पास गये। उन अद्भुत तेजस्वी ब्राह्मणदेवताको आया देख उस समय देवी शिवाने समस्त पूजन-सामग्रियों-द्वारा उनकी पूजा की। जब उनका भलीभाँति सत्कार हो गया, सामग्रियोंद्वारा उनकी पूजा सम्पन्न कर ली गयी, तब पार्वतीने बड़ी प्रसन्नता और प्रेमके साथ उन ब्राह्मणदेवसे आदरपूर्वक कुशल-समाचार पूछा।

पार्वती बोलीं—ब्रह्मचारीका स्वरूप धारण करके आये हुए आप कौन हैं और कहाँसे पधारे हैं? वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ विप्रवर! आप अपने तेजसे इस वनको प्रकाशित कर रहे हैं। मैंने जो कुछ पूछा है, उसे बतलाइये।

ब्राह्मणने कहा—मैं इच्छानुसार विचरनेवाला वृद्ध ब्राह्मण हूँ। पवित्रबुद्धि, तपस्वी, दूसरोंको सुख देनेवाला और परोपकारी हूँ—इसमें संशय नहीं है। तुम कौन हो? किसकी पुत्री हो और इस निर्जन वनमें किसलिये ऐसी तपस्या कर रही हो, जो पंजेके बलपर खड़े हो तप करनेवाले मुनियोंके लिये भी दुर्लभ है। तुम न बालिका हो, न वृद्धा ही हो, सुन्दरी तरुणी जान पड़ती हो। फिर किसलिये पतिके बिना इस वनमें आकर कठोर तपस्या करती हो? भद्रे! क्या तुम किसी तपस्वीकी सहचारिणी तपस्विनी हो? देवि! क्या वह तपस्वी तुम्हारा पालन-पोषण नहीं करता, जो तुम्हें छोड़कर अन्यत्र चला गया है? बोलो, तुम किसके कुलमें उत्पन्न हुई हो? तुम्हारे पिता कौन हैं और तुम्हारा नाम क्या है? तुम महासौभाग्यरूपा जान पड़ती हो। तुम्हारा तपस्यामें अनुराग व्यर्थ है। क्या तुम वेदमाता गायत्री हो, लक्ष्मी हो अथवा क्या सुन्दर रूपवाली सरस्वती हो? इन तीनोंमें तुम कौन हो—यह मैं अनुमानसे निश्चय नहीं कर पाता।

पार्वती बोलीं—विप्रवर! न तो मैं वेदमाता गायत्री हूँ, न लक्ष्मी हूँ और न सरस्वती ही हूँ। इस समय मैं हिमाचलकी पुत्री हूँ और मेरा नाम पार्वती है। पूर्वकालमें इससे पहलेके जन्ममें मैं प्रजापति दक्षकी पुत्री थी। उस समय मेरा नाम सती था। एक दिन पिताने मेरे पतिकी निन्दा की थी, जिससे कुपित हो मैंने योगके द्वारा शरीरको त्याग दिया था। इस जन्ममें भी भगवान् शिव मुझे मिल गये थे, परंतु भाग्यवश कामको भस्म करके वे मुझे भी छोड़कर चले गये। ब्रह्मन्! शंकरजीके चले जानेपर मैं विरहतापसे उद्विग्न हो उठी और तपस्याके लिये दृढ़ निश्चय करके पिताके घरसे यहाँ गङ्गाजीके तटपर चली आयी। यहाँ दीर्घ-कालतक कठोर तपस्या करके भी मैं अपने प्राणवल्लभको न पा सकी। इसलिये अग्निमें प्रवेश कर जाना चाहती थी। इतनेमें ही आपको आया देख मैं क्षणभरके लिये ठहर गयी। अब आप जाइये। मैं अग्निमें प्रवेश करूँगी; क्योंकि भगवान् शिवने मुझे स्वीकार नहीं किया। किंतु जहाँ-जहाँ मैं जन्म लूँगी, वहाँ-वहाँ शिवका ही पतिरूपमें वरण करूँगी।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! ऐसा कहकर पार्वती उन ब्राह्मण-देवताके सामने

ही अग्निमें समा गयीं, यद्यपि ब्राह्मणदेव सामनेसे उन्हें बारंबार ऐसा करनेसे रोक रहे थे। अग्निमें प्रवेश करती हुई पर्वतराजकुमारी पार्वतीकी तपस्याके प्रभावसे वह आग उसी क्षण चन्दन-पङ्कके समान शीतल हो गयी। क्षणभर उस आगके भीतर रहकर जब पार्वती आकाशमें ऊपरकी ओर उठने लगीं, तब ब्राह्मण-रूपधारी शिवने सहसा हँसते हुए उनसे पुनः पूछा—'अहो भद्रे! तुम्हारा तप कैसा है, यह कुछ भी मेरी समझमें नहीं आया। इधर अग्निसे तुम्हारा शरीर नहीं जला, यह तो तपस्याकी सफलताका सूचक है; परंतु अबतक तुम्हें अपना मनोरथ प्राप्त नहीं हुआ,

इससे उसकी विफलता प्रकट होती है। अतः देवि! सबको आनन्द देनेवाले मुझ श्रेष्ठ ब्राह्मणके सामने तुम अपने अभीष्ट मनोरथको सच-सच बताओ।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! ब्राह्मणके इस प्रकार पूछनेपर उत्तम व्रतका पालन करनेवाली अम्बिकाने अपनी सखीको उत्तर देनेके लिये प्रेरित किया। पार्वतीसे प्रेरित हो उनकी विजयानामक प्राणप्यारी सखीने, जो उत्तम व्रतको जाननेवाली थी, जटाधारी तपस्वीसे कहा।

सखी बोली—साधो! तुमसे पार्वतीके उत्तम चरित्रका और इनकी तपस्याके समस्त कारणोंका वर्णन करती हूँ। आप सुनना चाहते हों तो सुनिये। मेरी सखी गिरिराज हिमाचलकी पुत्री हैं। ये पार्वती और काली नामसे विख्यात हैं तथा माता मेनकाकी कन्या हैं। अबतक किसीने इनके साथ विवाह नहीं किया है। ये भगवान् शिवके सिवा दूसरे किसीको चाहती भी नहीं। उन्हींके लिये तीन हजार वर्षोंसे तपस्या कर रही हैं। भगवान् शिवकी प्राप्तिके लिये ही मेरी इन सखीने ऐसा तप प्रारम्भ किया है। विप्रवर! इसमें जो कारण है, उसे बताती हूँ; सुनिये। ये पर्वतराज-कुमारी ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्र आदि देवताओंको भी छोड़कर केवल पिनाकपाणि भगवान् शंकरको ही पतिरूपमें प्राप्त करना चाहती हैं और नारदजीके आदेशसे यह कठोर तपस्या कर रही हैं। द्विजश्रेष्ठ! आपने जो कुछ पूछा था, उसके अनुसार मैंने प्रसन्नतापूर्वक अपनी सखीका मनोरथ बता दिया। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! विजयाका यह यथार्थ वचन सुनकर जटाधारी तपस्वी रुद्र हँसते हुए बोले—'सखीने यह जो कुछ

कहा है, उसमें मुझे परिहासका अनुमान होता है। यदि यह सब ठीक हो तो पार्वतीदेवी अपने मुँहसे कहें।'

जटिल ब्राह्मणके इस प्रकार कहनेपर पार्वतीदेवी अपने मुँहसे ही यों कहने लगीं।

(अध्याय २६)

☆

पार्वतीकी बात सुनकर जटाधारी ब्राह्मणका शिवकी निन्दा करते हुए पार्वतीको उनकी ओरसे मनको हटा लेनेका आदेश देना

पार्वती बोलीं—जटाधारी विप्रवर! मेरा सारा वृत्तान्त सुनिये। मेरी सखीने जो कुछ कहा है, वह ज्यों-का-त्यों सत्य है; उसमें असत्य कुछ भी नहीं है। मैं मन, वाणी और क्रियाद्वारा सत्य ही कहती हूँ, असत्य नहीं। मैंने साक्षात् पतिभावसे भगवान् शंकरका ही वरण किया है। यद्यपि जानती हूँ, वह दुर्लभ वस्तु भला मुझे कैसे प्राप्त हो सकती है; तथापि मनकी उत्कण्ठासे विवश हो मैं तपस्या कर रही हूँ।

ब्राह्मणसे ऐसी बात कहकर पार्वतीदेवी उस समय चुप हो रहीं। तब उनकी वह बात सुनकर ब्राह्मणने कहा।

ब्राह्मण बोले—इस समयतक मेरे मनमें यह जाननेकी प्रबल इच्छा थी कि ये देवी किस दुर्लभ वस्तुको चाहती हैं? जिसके लिये ऐसा महान् तप कर रही हैं। किंतु देवि! तुम्हारे मुखारविन्दसे सब कुछ सुनकर उस अभीष्ट वस्तुको जान लेनेके बाद अब मैं यहाँसे जा रहा हूँ। तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा करो। यदि तुम मुझसे न कहती तो मित्रता निष्फल होती। अब जैसा तुम्हारा कार्य है, वैसा ही उसका परिणाम होगा। जब तुम्हें इसीमें सुख है, तब मुझे कुछ नहीं कहना है।

यहाँ ऐसी बात कहकर ब्राह्मणने ज्यों ही जानेका विचार किया, त्यों ही पार्वती देवीने प्रणाम करके उनसे इस प्रकार कहा।

पार्वती बोलीं—विप्रवर! आप क्यों जायँगे? ठहरिये और मेरे हितकी बात बताइये।

पार्वतीके ऐसा कहनेपर दण्डधारी ब्राह्मण-देवता रुक गये और इस प्रकार बोले—'देवि! यदि मेरी बात सुननेका मन है और मुझे भक्तिभावसे ठहरा रही हो तो मैं वह सब तत्त्व बता रहा हूँ, जिससे तुम्हें हिताहितका ज्ञान हो जायगा। महादेवजीके प्रति मेरे मनमें गौरव-बुद्धि है, अतः मैं उनको सब प्रकारसे जानता हूँ; तो भी यथार्थ बात कहता हूँ, तुम सावधान होकर सुनो। वृषभके चिह्नसे अङ्कित ध्वजा धारण करनेवाले महादेवजी सारे शरीरमें भस्म रमाये रहते हैं, सिरपर जटा धारण करते हैं, धोतीकी जगह बाघका चाम पहनते और चादरकी जगह हाथीकी खाल ओढ़ते हैं। हाथमें भीख माँगनेके लिये एक खोपड़ी लिये रहते हैं। झुंड-के-झुंड साँप उनके सारे अङ्गोंमें लिपटे देखे जाते हैं। वे विष खाकर ही पुष्ट होते हैं, अभक्ष्यभक्षी हैं, उनके नेत्र बड़े भद्दे हैं और देखनेमें डरावने लगते हैं। उनका जन्म कब, कहाँ और किससे हुआ, यह आजतक प्रकट नहीं हुआ। घर-गृहस्थीके भोगसे वे सदा दूर ही रहते हैं, नंग-धड़ंग घूमते हैं और भूत-प्रेतोंको सदा

साथ रखते हैं। उनके एक-दो नहीं, दस भुजाएँ हैं। देवि ! मैं समझ नहीं पाता कि किस कारणसे तुम उन्हें अपना पति बनाना चाहती हो। तुम्हारा ज्ञान कहाँ चला गया, इस बातको आज सोच-विचारकर मुझे बताओ। दक्षने अपने यज्ञमें अपनी ही पुत्री सतीको केवल यही सोचकर नहीं बुलाया कि वह कपालधारी भिक्षुककी भार्या है। इतना ही नहीं, उन्होंने यज्ञमें भाग देनेके लिये सब देवताओंको बुलाया, किंतु शम्भुको छोड़ दिया। सती उसी अपमानके कारण अत्यन्त क्रोधसे व्याकुल हो उठीं। उसने अपने प्यारे प्राणोंको तो छोड़ ही; शंकरजीको भी त्याग दिया।

'तुम तो स्त्रियोंमें रत्न हो, तुम्हारे पिता समस्त पर्वतोंके राजा हैं, फिर तुम क्यों इस उग्र तपस्याके द्वारा वैसे पतिको पानेकी अभिलाषा करती हो? सोनेकी मुद्रा (अशर्फी) देकर बदलेमें उतना ही बड़ा काँच लेना चाहती हो? उज्ज्वल चन्दन छोड़कर अपने अङ्गोंमें कीचड़ लपेटना चाहती हो? सूर्यके तेजका परित्याग करके जुगनूकी चमक पाना चाहती हो? महीन वस्त्र त्यागकर अपने शरीरको चमड़ेसे ढकनेकी इच्छा करती हो? घरमें रहना छोड़कर वनमें धूनी रमाना चाहती हो? तथा देवेश्वरि ! यदि तुम इन्द्र आदि लोकपालोंको त्यागकर शिवके प्रति अनुरक्त हो तो अवश्य ही रत्नोंके उत्तम भंडारको त्यागकर लोहा पानेकी इच्छा करती हो। लोकमें इस बातको अच्छा नहीं कहा गया है। शिवके साथ तुम्हारा सम्बन्ध मुझे इस समय परस्परविरुद्ध दिखायी देता है। कहाँ तुम, जिसके नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान शोभा पाते हैं और कहाँ वे रुद्र, जो तीन भरी आँखें धारण करते हैं। तुम तो चन्द्रमुखी * हो और शिव पञ्चमुख कहे गये हैं। तुम्हारे सिरपर दिव्य वेणी सर्पिणी-सी शोभा पा रही है; परंतु शिवके मस्तकपर जो जटाजूट बताया जाता है, वह प्रसिद्ध ही है। तुम्हारे अङ्गमें चन्दनका अङ्गराग होगा और शिवके शरीरमें चिताका भस्म ! कहाँ तुम्हारी सुन्दर मृदुल साड़ी और कहाँ शंकरजीके उपयोगमें आनेवाली हाथीकी खाल? कहाँ तुम्हारे अङ्गोंमें दिव्य आभूषण और कहाँ शंकरके सर्वाङ्गमें लिपटे हुए सर्प? कहाँ तुम्हारी सेवाके लिये उद्यत रहनेवाले सम्पूर्ण देवता और कहाँ भूतोंकी दी हुई बलिको पसंद करनेवाले शिव? कहाँ तो मृदङ्गकी मधुर ध्वनि और कहाँ डमरूकी डिमडिम? कहाँ भेरियोंके समूहकी गड़गड़ाहट और कहाँ अशुभ शृङ्गीनाद? कहाँ डंकाका शब्द और कहाँ अशुभ गलनाद? तुम्हारा यह उत्तम रूप शिवके योग्य कदापि नहीं है। यदि उनके पास धन होता तो वे दिगम्बर (नंगे) क्यों रहते? सवारीके नामपर उनके पास एक बूढ़ा बैल है और दूसरी कोई भी सामग्री उनके पास नहीं है। कन्याके लिये ढूँढे

---

* अङ्कोंकी संज्ञाओंमें चन्द्रमाको एक संख्याका बोधक माना गया है। एक मुखवाले पुरुष और स्त्रियाँ ही सुन्दर मानी जाती हैं, एकसे अधिक मुखवाले नहीं। इस प्रकार एकमुख और पञ्चमुखकी भी तुलना की गयी है। 'चन्द्रमुखी' पदका दूसरा भाव है—तुम्हारा मुख चन्द्रमाके समान मनोहर है और वे पञ्चानन सिंहके समान भयंकर हैं।

जानेवाले वरोंमें जो नारियोंको सुख देनेवाले गुण बताये गये हैं, उनमेंसे एक भी गुण भही आँखवाले रुद्रमें नहीं है। तुम्हारे परम प्रिय कामको भी उन हर देवताने दग्ध कर दिया और तुम्हारे प्रति उनका अनादर तो तभी देख लिया गया, जब वे तुम्हें छोड़कर अन्यत्र चले गये। उनकी कोई जाति नहीं देखी जाती। उनमें विद्या तथा ज्ञानका भी पता नहीं चलता। पिशाच ही उनके सहायक हैं और विष तो उनके कण्ठमें ही दिखायी देता है। वे सदा अकेले रहनेवाले और विशेषरूपसे विरक्त हैं। इसलिये तुम्हें हरके साथ अपने मनको नहीं जोड़ना चाहिये। कहाँ तुम्हारे कण्ठमें सुन्दर हार और कहाँ उनके गलेमें नरमुण्डोंकी माला? देवि! तुम्हारे और हरके रूप आदि सब एक-दूसरेके विरुद्ध हैं। अतः मुझे तो यह सम्बन्ध नहीं रुचता। फिर तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा करो। संसारमें जो कुछ भी असद्वस्तु है, वह सब तुम स्वयं चाहने लगी हो। अतः मैं कहता हूँ कि तुम उस असत्‌की ओरसे अपने मनको हटा लो। अन्यथा जो चाहो, वह करो; मुझे कुछ नहीं कहना है।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! यह बात सुनकर पार्वती शिवकी निन्दा करनेवाले ब्राह्मणपर मन-ही-मन कुपित हो उठीं और उससे इस प्रकार बोलीं।

(अध्याय २७)

☆

पार्वतीजीका परमेश्वर शिवकी महत्ताका प्रतिपादन करना, रोषपूर्वक जटिल ब्राह्मणको फटकारना, सखीद्वारा उन्हें फिर बोलनेसे रोकना तथा भगवान् शिवका उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दे अपने साथ चलनेके लिये कहना

पार्वती बोलीं—बाबाजी! अबतक तो मैंने यह समझा था कि कोई दूसरे ज्ञानी महात्मा आ गये हैं। परंतु अब सब ज्ञात हो गया—आपकी कलई खुल गयी। आपसे क्या कहूँ—विशेषतः उस दशामें, जब आप अवध्य ब्राह्मण हैं? ब्राह्मण-देवता! आपने जो कुछ कहा है, वह सब मुझे ज्ञात है। परंतु वह सब झूठा ही है, सत्य कुछ नहीं है। आपने कहा था कि मैं शिवको जानता हूँ। यदि आपकी यह बात ठीक होती तो आप ऐसी युक्ति एवं बुद्धिके विरुद्ध बात नहीं बोलते। यह ठीक है कि कभी-कभी महेश्वर अपनी लीलाशक्तिसे प्रेरित हो तथाकथित अद्भुत वेष धारण कर लिया करते हैं। परंतु वास्तवमें वे साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हैं। उन्होंने स्वेच्छासे ही शरीर धारण किया है। आप ब्रह्मचारीका स्वरूप धारण कर मुझे ठगनेके लिये उद्यत हो यहाँ आये हैं और अनुचित एवं असंगत युक्तियोंका सहारा ले छल-कपटसे युक्त बातें बोल रहे हैं! मैं भगवान् शंकरके स्वरूपको भलीभाँति जानती हूँ। इसलिये यथायोग्य विचार करके उनके तत्त्वका वर्णन करती हूँ। वास्तवमें शिव निर्गुण ब्रह्म हैं, कारणवश सगुण हो गये हैं। जो निर्गुण हैं, समस्त गुण जिनके स्वरूपभूत हैं, उनकी जाति कैसे हो सकती है? वे भगवान् सदाशिव समस्त विद्याओंके आधार हैं। फिर उन पूर्ण परमात्माको किसी विद्यासे क्या काम? पूर्वकालमें कल्पके आरम्भमें भगवान् शम्भुने श्रीविष्णुको

उच्छ्वासरूपसे सम्पूर्ण वेद प्रदान किये थे। अतः उनके समान उत्तम प्रभु दूसरा कौन है? जो सबके आदि कारण हैं, उनकी अवस्था अथवा आयुका माप-तौल कैसे हो सकता है? प्रकृति उन्हींसे उत्पन्न हुई है। फिर उनकी शक्तिका दूसरा क्या कारण हो सकता है? जो लोग सदा प्रेमपूर्वक शक्तिके स्वामी भगवान् शंकरका भजन करते हैं, उन्हें भगवान् शम्भु प्रभुशक्ति, उत्साहशक्ति और मन्त्रशक्ति—ये तीनों अक्षय शक्तियाँ प्रदान करते हैं। भगवान् शिवके भजनसे ही जीव मृत्युको जीत लेता और निर्भय हो जाता है। इसलिये तीनों लोकोंमें उनका 'मृत्युञ्जय' नाम प्रसिद्ध है। उन्हींके अनुग्रहसे विष्णु विष्णुत्वको, ब्रह्मा ब्रह्मत्वको और देवता देवत्वको प्राप्त हुए हैं। शिवजीका पक्ष लेकर बहुत बोलनेसे क्या लाभ? वे भगवान् स्वयं ही महाप्रभु हैं। कल्याणरूपी शिवकी सेवासे यहाँ कौन-सा मनोरथ सिद्ध नहीं हो सकता? उन महादेवजीके पास किस बातकी कमी है, जो वे भगवान् सदाशिव स्वयं मुझे पानेकी इच्छा करें? यदि शंकरकी सेवा न करे तो मनुष्य सात जन्मोंतक दरिद्र होता है और उन्हींकी सेवासे सेवकको लोकमें कभी नष्ट न होनेवाली लक्ष्मी प्राप्त होती है। जिनके सामने आठों सिद्धियाँ नित्य आकर सिर नीचा किये इस इच्छासे नृत्य करती हैं कि वे भगवान् हमपर संतुष्ट हो जायँ, उनके लिये कोई भी हितकर वस्तु दुर्लभ कैसे हो सकती है? यद्यपि यहाँ माङ्गलिक कही जानेवाली वस्तुएँ शंकरका सेवन नहीं करतीं, तथापि उनके स्मरण-मात्रसे ही सबका मङ्गल होता है। जिनकी पूजाके प्रभावसे उपासककी सम्पूर्ण कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं, सदा निर्विकार रहनेवाले उन परमात्मा शिवमें विकार कहाँसे आ सकता है? जिस पुरुषके मुखमें निरन्तर 'शिव' यह मङ्गलमय नाम निवास करता है, उसके दर्शनमात्रसे ही अन्य सब सदा पवित्र होते हैं। जैसा कि आपने कहा है, वे चिताका भस्म लगाते हैं। परंतु यदि उनका लगाया हुआ भस्म अपवित्र होता तो उनके शरीरसे झड़कर गिरे हुए उस भस्मको देवतालोग सदा अपने सिरपर कैसे धारण करते? (अतः शिवके अङ्गोंके स्पर्शसे अपवित्र वस्तु भी पवित्र हो जाती है।) जो महादेव सगुण होकर तीनों लोकोंके कर्ता-भर्ता और हर्ता होते हैं तथा निर्गुणरूपमें शिव कहलाते हैं, वे बुद्धिके द्वारा पूर्णरूपसे कैसे जाने जा सकते हैं? परब्रह्म परमात्मा शिवका जो निर्गुण रूप है, उसे आप-जैसे बहिर्मुख लोग कैसे जान सकते हैं? जो दुराचारी और पापी हैं, वे देवताओंसे बहिष्कृत हो जाते हैं। ऐसे लोग निर्गुण शिवके तत्त्वको नहीं जानते। जो पुरुष तत्त्वको न जाननेके कारण यहाँ शिवकी निन्दा करता है, उसके जन्मभरका सारा संचित पुण्य भस्म हो जाता है। आपने जो यहाँ अमित तेजस्वी महादेवजीकी निन्दा की है और मैंने जो आपकी पूजा की है, उससे मुझे पापकी भागिनी होना पड़ा है। शिवद्रोहीको देखकर वस्त्रसहित स्नान करना चाहिये, शिवद्रोहीका दर्शन हो जानेपर प्रायश्चित्त करना चाहिये।

इतना कहकर पार्वतीजी उस ब्राह्मणपर अधिक रुष्ट होकर बोलीं—अरे रे दुष्ट! तूने कहा था कि मैं शंकरको जानता हूँ, परंतु निश्चय ही तूने उन सनातन शिवको नहीं

जाना है। भगवान् रुद्रको तू जैसा कहता है, वे वैसे ही क्यों न हों, उनके-जैसे भी बहुसंख्यक रूप क्यों न हों, सत्पुरुषोंके प्रियतम नित्य-निर्विकार वे भगवान् शिव ही मेरे अभीष्टतम देव हैं। ब्रह्मा और विष्णु भी कभी उन महात्मा हरके समान नहीं हो सकते। फिर दूसरे देवताओंकी तो बात ही क्या है? क्योंकि वे सदैव कालके अधीन हैं। इस प्रकार अपनी शुद्धबुद्धिसे तत्त्वतः विचारकर मैं शिवके लिये वनमें आकर बड़ी भारी तपस्या कर रही हूँ। वे भक्तवत्सल सर्वेश्वर शिव ही हम सबके परमेश्वर हैं। तीनोंपर अनुग्रह करनेवाले उन महादेवको ही प्राप्त करनेकी मेरी इच्छा है।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! ऐसा कहकर गिरिराजनन्दिनी गिरिजा चुप हो गयीं और निर्विकार चित्तसे भगवान् शिवका ध्यान करने लगीं। देवीकी बात सुनकर वह ब्रह्मचारी ब्राह्मण ज्यों ही कुछ फिर कहनेके लिये उद्यत हुआ, त्यों ही शिवमें आसक्तचित्त होनेके कारण उनकी निन्दा सुननेसे विमुख हुई पार्वती अपनी सखी विजयासे शीघ्र बोलीं।

पार्वतीने कहा—सखी! इस अधम ब्राह्मणको यत्नपूर्वक रोको, यह फिर कुछ कहना चाहता है। यह केवल शिवकी निन्दा ही करेगा, जो शिवकी निन्दा करता है, केवल उसीको पाप नहीं लगता, जो उस निन्दाको सुनता है, वह भी यहाँ पापका भागी होता है।* भगवान् शिवके उपासकोंको चाहिये कि वे शिवकी निन्दा करनेवालेका सर्वथा वध करें। यदि वह ब्राह्मण हो तो उसे अवश्य ही त्याग दें और स्वयं उस निन्दाके स्थानसे शीघ्र दूर चले जायँ। यह दुष्ट ब्राह्मण फिर शिवकी निन्दा करेगा। ब्राह्मण होनेके कारण यह वध्य तो है नहीं, अतः त्याग देने योग्य है। किसी तरह भी इसका मुँह नहीं देखना चाहिये। इस स्थानको छोड़कर हमलोग आज ही किसी दूसरे स्थानमें शीघ्र चली चलें, जिससे फिर इस अज्ञानीके साथ बात करनेका अवसर न मिले।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! ऐसा कहकर उमाने ज्यों ही अन्यत्र जानेके लिये पैर उठाया, त्यों ही भगवान् शिवने अपने साक्षात् स्वरूपसे प्रकट हो प्रिया पार्वतीका हाथ पकड़ लिया। शिवा जैसे स्वरूपका ध्यान करती थीं, वैसा ही सुन्दर रूप धारण करके शिवने उन्हें दर्शन दिया। पार्वतीने लज्जावश अपना मुँह नीचेकी ओर कर लिया।

तब भगवान् शिव उनसे बोले—प्रिये! मुझे छोड़कर कहाँ जाओगी? अब मैं फिर कभी तुम्हारा त्याग नहीं करूँगा। मैं प्रसन्न हूँ। वर माँगो। मुझे तुम्हारे लिये कुछ भी अदेय नहीं है। देवि! आजसे मैं तपस्याके मोल खरीदा हुआ तुम्हारा दास हूँ। तुम्हारे सौन्दर्यने भी मुझे मोह लिया है। अब तुम्हारे बिना मुझे एक क्षण भी युगके समान जान पड़ता है। लज्जा छोड़ो। तुम तो मेरी सनातन पत्नी हो। गिरिराजनन्दिनि! महेश्वरि! मैंने जो कुछ कहा है, उसपर श्रेष्ठ बुद्धिसे विचार

---

* न केवलं भवेत् पापं निन्दाकर्तुः शिवस्य हि। यो वै शृणोति तन्निन्दां पापभाक् स भवेदिह॥
(शि० पु० रु० सं० पा० खं० २८। ३७)

करो। सुस्थिर चित्तवाली पार्वती ! मैंने नाना प्रकारसे तुम्हारी बारंबार परीक्षा ली है। लोकलीलाका अनुसरण करनेवाले मुझ स्वजनके अपराधको क्षमा कर दो। शिवे ! तीनों लोकोंमें तुम्हारी-जैसी अनुरागिणी मुझे दूसरी कोई नहीं दिखायी देती। मैं सर्वथा तुम्हारे अधीन हूँ। तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो। प्रिये ! मेरे पास आओ। तुम मेरी पत्नी हो और मैं तुम्हारा वर हूँ। तुम्हारे साथ मैं शीघ्र ही अपने निवासस्थान उत्तम पर्वत कैलासको चलूँगा।

ब्रह्माजी कहते हैं—देवाधिदेव महादेवजीके ऐसा कहनेपर पार्वती देवी आनन्द-मग्न हो उठीं। उनका तपस्याजनित पहलेका सारा कष्ट मिट गया। मुनिश्रेष्ठ ! सती-साध्वी पार्वतीकी सारी थकावट दूर हो गयी; क्योंकि परिश्रम-फल प्राप्त हो जानेपर प्राणीका पहलेवाला सारा श्रम नष्ट हो जाता है।

(अध्याय २८)

☆

शिव और पार्वतीकी बातचीत, शिवका पार्वतीके अनुरोधको स्वीकार करना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! परमात्मा हरकी यह बात सुनकर और उनके आनन्द-दायी रूपका दर्शन पाकर पार्वतीको बड़ा हर्ष हुआ। उनका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। वे बहुत सुखका अनुभव करने लगीं। फिर उन महासाध्वी शिवाने अपने पास ही खड़े हुए भगवान् शिवसे कहा।

पार्वती बोलीं—देवेश्वर ! आप मेरे स्वामी हैं। प्रभो ! पूर्वकालमें आपने जिसके लिये हर्षपूर्वक दक्षके यज्ञका विनाश किया था, उसे क्यों भुला दिया था ! वे ही आप हैं और वही मैं हूँ। देवदेवेश्वर ! इस समय मैं तारकासुरसे दुःख पानेवाले देवताओंके कार्यकी सिद्धिके लिये रानी मेनाके गर्भसे उत्पन्न हुई हूँ। देवेश ! यदि आप प्रसन्न हैं और यदि मुझपर कृपा करते हैं तो मेरे पति हो जाइये। ईशान ! प्रभो ! मेरी यह बात मान लीजिये, आपकी आज्ञा लेकर मैं पिताके घर जाती हूँ। अब आप अपने विवाहरूप परम उत्तम विशुद्ध यशको सर्वत्र विख्यात कीजिये। नाथ ! प्रभो ! आप तो लीला करनेमें कुशल हैं। अतः मेरे पिता हिमवान्‌के पास चलिये और याचक बनकर उनसे मेरी याचना कीजिये। लोकमें मेरे पिताके यशको फैलाते हुए आपको ऐसा ही करना चाहिये। इस तरह आप मेरे सम्पूर्ण गृहस्थाश्रमको सफल बनाइये। जब आप प्रसन्नतापूर्वक ऋषियोंसे मेरे पिताको सब बातोंकी जानकारी करायेंगे, तब मेरे पिता अपने भाई-बन्धुओंके साथ आपकी आज्ञाका पालन करेंगे—इसमें संदेह नहीं है। जब मैं पहले प्रजापति दक्षकी कन्या थी और मेरे पिताने आपके हाथमें मेरा हाथ दिया, उस समय आपने शास्त्रोक्त विधिसे विवाहका कार्य पूरा नहीं किया। मेरे पिता दक्षने ग्रहोंकी पूजा नहीं की। अतः उस विवाहमें ग्रहपूजनविषयक बड़ी भारी त्रुटि रह गयी। इसलिये प्रभो ! महादेव ! अबकी बार देवताओंके कार्यकी सिद्धिके लिये आप शास्त्रोक्त विधिसे विवाहकार्यका सम्पादन करें। विवाहकी जैसी रीति है, उसका पालन आपको अवश्य करना

चाहिये। मेरे पिता हिमवान्‌को यह अच्छी तरह ज्ञात हो जाना चाहिये कि मेरी पुत्रीने शुभकारक तपस्या की है।

पार्वतीकी ऐसी बात सुनकर भगवान् सदाशिव बड़े प्रसन्न हुए और उनसे हँसते हुए-से प्रेमपूर्वक बोले।

शिवने कहा—देवि! महेश्वरि! मेरी यह उत्तम बात सुनो, यह उचित, मङ्गलकारक और निर्दोष है। इसे सुनकर वैसा ही करो। वरानने! ब्रह्मा आदि जितने भी प्राणी हैं, वे सब अनित्य हैं। भामिनि! यह सब जो कुछ दिखायी देता है, इसे नश्वर समझो। मैं निर्गुण परमात्मा ही गुणोंसे युक्त हो एकसे अनेक हो गया हूँ। जो अपने प्रकाशसे प्रकाशित होता है, वही परमात्मा मैं दूसरेके प्रकाशसे प्रकाशित होनेवाला हो गया। देवि! मैं स्वतन्त्र हूँ, परंतु तुमने मुझे परतन्त्र बना दिया। समस्त कर्मोंको करनेवाली प्रकृति एवं महामाया तुम्हीं हो। यह सम्पूर्ण जगत् मायामय ही रचा गया है। मुझ सर्वात्मा परमात्माने अपनी उत्तम बुद्धिके द्वारा इसे धारणमात्र कर रखा है। सर्वत्र परमात्मभाव रखनेवाले सर्वात्मा पुण्यवानोंने इसे अपने भीतर सींचा है तथा यह तीनों गुणोंसे आवेष्टित है। देवि! वरवर्णिनि! कौन मुख्य ग्रह हैं? कौन-से ऋतु-समूह हैं? अथवा कौन दूसरे-दूसरे उपग्रह हैं? इस समय तुमने शिवके लिये क्या कहा है—किस कर्तव्यका विधान किया है? गुण और कार्यके भेदसे हम दोनोंने इस जगत्‌में भक्तवत्सलताके कारण भक्तोंको सुख देनेके हेतु अवतार ग्रहण किया है। तुम्हीं रजःसत्त्व-तमोमयी (त्रिगुणात्मिका) सूक्ष्म प्रकृति हो, सदा व्यापारकुशल सगुणा और निर्गुणा भी हो। सुमध्यमे! मैं यहाँ सम्पूर्ण भूतोंका आत्मा, निर्विकार एवं निरीह हूँ। भक्तकी इच्छासे मैंने शरीर धारण किया है। शैलजे! मैं तुम्हारे पिता हिमालयके पास नहीं जा सकता तथा भिक्षुक होकर किसी तरह तुम्हारी उनसे याचना भी नहीं कर सकता। गिरिराज-नन्दिनि! महान् गुणोंसे अत्यन्त गौरवशाली महात्मा पुरुष भी अपने मुँहसे 'देहि' (दो) यह बात निकालनेपर तत्काल लघुताको प्राप्त हो जाता है। कल्याणि! ऐसा जानकर हमारे लिये क्या कहती हो? भद्रे! तुम्हारी आज्ञासे मुझे सब कुछ करना है। अतः जैसी तुम्हारी इच्छा हो, वैसा करो।

महादेवजीके ऐसा कहनेपर भी सती-साध्वी कमललोचना महादेवी शिवाने उन भगवान् शंकरको बारंबार भक्ति-भावसे प्रणाम करके कहा।

पार्वती बोलीं—नाथ! आप आत्मा हैं और मैं प्रकृति। इस विषयमें विचार करनेकी कोई बात नहीं है। हम दोनों स्वतन्त्र और निर्गुण होते हुए भी भक्तोंके अधीन होनेके कारण सगुण हो जाते हैं। शम्भो! प्रभो! आपको प्रयत्नपूर्वक मेरी प्रार्थनाके अनुसार कार्य करना चाहिये। शंकर! आप मेरे लिये याचना करें और हिमवान्‌को दाता बननेका सौभाग्य प्रदान करें। महेश्वर! मैं सदा आपकी भक्ता हूँ, अतः मुझपर कृपा कीजिये। नाथ! सदा जन्म-जन्ममें मैं ही आपकी पत्नी होती रही हूँ। आप परब्रह्म परमात्मा हैं, निर्गुण हैं, प्रकृतिसे परे हैं, निर्विकार, निरीह एवं स्वतन्त्र परमेश्वर हैं; तथापि भक्तोंके उद्धारमें संलग्न होकर यहाँ सगुण भी हो जाते हैं, स्वात्माराम होकर भी

लीलाविहारी बन जाते हैं; क्योंकि आप नाना प्रकारकी लीलाएँ करनेमें कुशल हैं। महादेव ! महेश्वर ! मैं सब प्रकारसे आपको जानती हूँ। सर्वज्ञ ! अब बहुत कहनेसे क्या लाभ ? मुझपर दया कीजिये। नाथ ! महान् अद्भुत लीला करके लोकमें अपने सुयशका विस्तार कीजिये, जिसे गा-गाकर लोग अनायास ही भवसागरसे पार हो जायँ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ऐसा कहकर गिरिजाने महेश्वरको बारंबार प्रणाम किया और मस्तक झुकाकर हाथ जोड़ वे चुप हो गयीं। उनके ऐसा कहनेपर महात्मा महेश्वरने लोकलीलाका अनुसरण करनेके लिये वैसा करना स्वीकार कर लिया। पार्वतीने जो कुछ कहा था, उसीको प्रसन्नतापूर्वक करनेके लिये उद्यत होकर वे हँसने लगे। तदनन्तर हर्षसे भरे हुए शम्भु अन्तर्धान हो कैलासको चले गये। उस समय कालीके विरहसे उनका चित्त उन्हींकी ओर खिंच गया था। कैलासपर जाकर परमानन्दमें निमग्न हुए महेश्वरने अपने नन्दी आदि गणोंसे वह सारा वृत्तान्त कह सुनाया। वे भैरव आदि सभी गण भी वह सब समाचार सुनकर अत्यन्त सुखी हो गये और महान् उत्सव करने लगे। नारद ! उस समय वहाँ महान् मङ्गल होने लगा। सबके दुःख नष्ट हो गये तथा रुद्रदेवको भी पूर्ण आनन्द प्राप्त हुआ। (अध्याय २९)

☆

पार्वतीका पिताके घरमें सत्कार, महादेवजीकी नटलीलाका चमत्कार, उनका मेना आदिसे पार्वतीको माँगना और माता-पिताके इनकार करनेपर अन्तर्धान हो जाना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! भगवान् शंकरके अपने स्थानको चले जानेपर सखियोंसहित पार्वती भी अपने रूपको सफल करके महादेवजीका नाम लेती हुई पिताजीके घर चली गयीं। पार्वतीका आगमन सुनकर मेना और हिमवान् दिव्य रथपर आरूढ़ हो हर्षसे विह्वल होकर उनकी अगवानीके लिये चले। पुरोहित, पुरवासी, अनेकानेक सखियाँ तथा अन्य सब सम्बन्धी भी आ पहुँचे। पार्वतीके सारे भाई मैनाक आदि बड़े हर्षके साथ जय-जयकार करते हुए उन्हें घर ले आनेके लिये गये।

इसी बीचमें पार्वती अपने नगरके निकट आ गयीं। नगरमें प्रवेश करते समय शिवा देवीने माता-पिताको देखा, जो अत्यन्त प्रसन्न और हर्षसे विह्वलचित्त होकर दौड़े चले आ रहे थे। उन्हें देखकर हर्षसे भरी हुई कालीने सखियोंसहित प्रणाम किया। माता-पिताने पूर्णरूपसे आशीर्वाद दे पुत्रीको छातीसे लगा लिया और 'ओ, मेरी बच्ची !' ऐसा कहकर प्रेमसे विह्वल हो रोने लगे। तत्पश्चात् अपने घरकी दूसरी-दूसरी स्त्रियों तथा भाभियोंने भी बड़ी प्रसन्नताके साथ प्रेमपूर्वक उन्हें भुजाओंमें भरकर भेंटा। 'देवि ! तुमने अपने कुलका उद्धार करनेवाले उत्तम कार्यको अच्छी तरह सिद्ध किया है। तुम्हारे सदाचरणसे हम सब लोग पवित्र हो गये' ऐसा कहकर सब लोग हर्षके साथ पार्वतीकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए उन्हें प्रणाम करने लगे। लोगोंने चन्दन और

सुन्दर फूलोंसे शिवादेवीका सानन्द पूजन किया। उस अवसरपर विमानपर बैठे हुए देवताओंने पार्वतीको नमस्कार करके उनपर फूलोंकी वर्षा करते हुए स्तुति की। नारद! उस समय तुम्हें भी एक सुन्दर रथपर बिठाकर ब्राह्मण आदि सब लोग नगरमें ले गये। फिर ब्राह्मणों, सखियों तथा दूसरी स्त्रियोंने बड़े आदरके साथ शिवाका घरके भीतर प्रवेश कराया। स्त्रियोंने उनके ऊपर बहुत-सी वस्तुएँ निछावर कीं। ब्राह्मणोंने आशीर्वाद दिये। मुनीश्वर! पिता हिमवान् और माता मेनकाको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने अपने गृहस्थ-आश्रमको सफल माना और यह अनुभव किया कि कुपुत्रकी अपेक्षा सुपुत्री ही श्रेष्ठ है। गिरिराजने ब्राह्मणों और बन्दीजनोंको धन दिया और ब्राह्मणोंसे मङ्गलपाठ करवाया। मुने! इस प्रकार पार्वतीके साथ हर्षभरे माता-पिता, भाई तथा भौजाइयाँ भी घरके आँगनमें प्रसन्नतापूर्वक बैठीं।

तदनन्तर हिमवान् प्रसन्नचित्तसे सबका आदर-सत्कार करके गङ्गा-स्नानके लिये गये। इसी बीचमें सुन्दर लीला करनेवाले भक्तवत्सल भगवान् शम्भु एक अच्छा नाचनेवाला नट बनकर मेनकाके पास गये। उन्होंने बायें हाथमें सींग और दाहिने हाथमें डमरू ले रखा था। पीठपर कथरी रख छोड़ी थी। लाल वस्त्र पहने वे भगवान् रुद्र नाच और गानमें अपनी निपुणताका परिचय दे रहे थे। सुन्दर नटका रूप धारण किये हुए भगवान् शिवने मेनकाके पास बैठी हुई स्त्रियोंकी टोलीके समीप सुन्दर नृत्य किया और अत्यन्त मनोहर नाना प्रकारके गीत गाये। उन्होंने वहाँ सुन्दर ध्वनि करनेवाले शृङ्ग और डमरूको भी बजाया तथा नाना

प्रकारकी बड़ी मनोहारिणी लीला की। नटराजकी उस लीलाको देखनेके लिये नगरके सभी स्त्री-पुरुष एवं बालक और वृद्ध भी सहसा वहाँ आ पहुँचे। मुने! उस सुमधुर गीतको सुनकर और उस मनोहर उत्तम नृत्यको देखकर वहाँ आये हुए सब लोग तत्काल मोहित हो गये। मेना भी मोही गयीं। उधर पार्वतीने अपने हृदयमें भगवान् शंकरका साक्षात् दर्शन किया। वे त्रिशूल आदि चिह्न धारण किये अत्यन्त सुन्दर दिखायी देते थे। उनका सारा अङ्ग विभूतिसे विभूषित था। वे हड्डियोंकी मालासे अलंकृत थे। उनका मुख सूर्य, चन्द्र एवं अग्निरूप तीन नेत्रोंसे उद्भासित था। उन्होंने नागका यज्ञोपवीत धारण किया था। उनके उस सुरम्य रूपको देखकर दुर्गा प्रेमावेशसे मूर्च्छित हो गयीं। गौरवर्णविभूषित दीनबन्धु दयासिन्धु और सर्वथा मनोहर महेश्वर

पार्वतीसे कह रहे थे कि 'वर माँगो।' अपने हृदयमें विराजमान महादेवजीको इस रूपमें देखकर पार्वती देवीने उन्हें प्रणाम किया और मन-ही-मन यह वर माँगा कि 'आप मेरे पति हो जाइये।' प्रीतियुक्त हृदयसे शिवाको वैसा कल्याणकारी वर देकर वे पुनः अन्तर्धान हो गये और वहाँ पूर्ववत् भिक्षा माँगनेवाला नट बनकर उत्तम नृत्य करने लगे।

उस समय मेना सोनेकी थालीमें रखे हुए बहुत-से सुन्दर रत्न ले उन्हें प्रसन्नतापूर्वक देनेके लिये गयीं। उनका वह ऐश्वर्य देखकर भगवान् शंकर मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए। परंतु उन्होंने उन रत्नोंको स्वीकार नहीं किया। वे भिक्षामें उनकी पुत्री शिवाको ही माँगने लगे और पुनः कौतुकवश सुन्दर नृत्य एवं गान करनेको उद्यत हुए। मेना उस भिक्षुक नटकी बात सुनकर अत्यन्त कुपित हो उठीं और उसे डाँटने-फटकारने लगीं। उनके मनमें उसे बाहर निकाल देनेकी इच्छा हुई। इसी बीचमें गिरिराज हिमवान् गङ्गाजीसे नहाकर लौट आये। उन्होंने अपने सामने उस नराकार भिक्षुकको आँगनमें खड़ा देखा। मेनाके मुखसे सारी बातें सुनकर उनको भी बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने अपने सेवकोंको आज्ञा दी कि इस नटको बाहर निकाल दो। मुनिश्रेष्ठ! वे नटराज विशालकाय अग्निकी भाँति अपने उत्तम तेजसे प्रज्वलित हो रहे थे। उन्हें छूना भी कठिन था। इसलिये कोई भी उन्हें बाहर न निकाल सका। तात! फिर तो नाना प्रकारकी लीलाओंमें विशारद उन भिक्षुशिरोमणिने शैलराजको अपना अनन्त प्रभाव दिखाना आरम्भ किया। हिमवान्‌ने देखा, भिक्षुने वहाँ तत्काल ही भगवान् विष्णुका रूप धारण कर लिया है। उनके मस्तकपर किरीट, कानोंमें कुण्डल और शरीरपर पीतवस्त्र शोभा पाते हैं। उनके चार भुजाएँ हैं। हिमवान्‌ने पूजाके समय गदाधारी श्रीहरिको जो-जो पुष्प आदि चढ़ाये थे, वे सब उन्होंने भिक्षुके शरीर और मस्तकपर देखे। तत्पश्चात् गिरिराजने उन भिक्षुशिरोमणिको जगत्स्रष्टा चतुर्मुख ब्रह्माके रूपमें देखा। उनके शरीरका वर्ण लाल था और वे वैदिक सूक्तका पाठ कर रहे थे। तदनन्तर शैलराजने उन कौतुककारी नटराजको एक क्षणमें जगत्‌के नेत्ररूप सूर्यके आकारमें देखा। तात! इसके बाद वे महान् अद्भुत रुद्रके रूपमें दिखायी दिये। उनके साथ देवी पार्वती भी थीं। वे उत्तम तेजसे सम्पन्न रमणीय रूप धीरे-धीरे हँस रहे थे। फिर वे केवल तेजोमय रूपमें दृष्टिगोचर हुए। उनका वह स्वरूप निराकार, निरञ्जन, उपाधिशून्य, निरीह एवं अत्यन्त अद्भुत था। इस प्रकार हिमवान्‌ने उनके बहुत-से रूप देखे। इससे उन्हें बड़ा विस्मय हुआ और वे तुरंत ही परमानन्दमें निमग्न हो गये। तदनन्तर सुन्दर लीला करनेवाले उन भिक्षुशिरोमणिने हिमवान् और मेनासे दुर्गाको ही भिक्षाके रूपमें माँगा। दूसरी कोई वस्तु ग्रहण नहीं की। परंतु शिवकी मायासे मोहित होनेके कारण शैलराजने उनकी उस प्रार्थनाको स्वीकार नहीं किया। फिर भिक्षुने कोई वस्तु नहीं ली और वे वहाँसे अन्तर्धान हो गये। तब मेना और शैलराजको उत्तम ज्ञान हुआ और वे सोचने लगे—'भगवान् शिव हमें

अपनी मायासे छलकर अपने स्थानको चले गये।' यह विचारकर उन दोनोंकी भगवान् शिवमें पराभक्ति हुई, जो महान् मोक्षकी प्राप्ति करानेवाली, दिव्य तथा सम्पूर्ण आनन्द प्रदान करनेवाली है।

(अध्याय ३०)

☆

देवताओंके अनुरोधसे वैष्णव ब्राह्मणके वेषमें शिवजीका हिमवान्‌के घर जाना और शिवकी निन्दा करके पार्वतीका विवाह उनके साथ न करनेको कहना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! मेना और हिमवान्‌की भगवान् शिवके प्रति उच्चकोटिकी अनन्य भक्ति देख इन्द्र आदि सब देवता परस्पर विचार करने लगे। तदनन्तर गुरु बृहस्पति और ब्रह्माजीकी सम्मतिके अनुसार सभी मुख्य देवताओंने शिवजीके पास जाकर उनको प्रणाम किया और वे हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे।

देवता बोले—देवदेव! महादेव! करुणाकर! शंकर! हम आपकी शरणमें आये हैं, कृपा कीजिये। आपको नमस्कार है। स्वामिन्! आप भक्तवत्सल होनेके कारण सदा भक्तोंके कार्य सिद्ध करते हैं। दीनोंका उद्धार करनेवाले और दयाके सिन्धु हैं तथा भक्तोंको विपत्तियोंसे छुड़ानेवाले हैं।

इस प्रकार महेश्वरकी स्तुति करके इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंने मेना और हिमवान्‌की अनन्य शिवभक्तिके विषयमें सारी बातें आदरपूर्वक बतायीं। देवताओंकी वह बात सुनकर महेश्वरने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और हँसते हुए उन्हें आश्वासन देकर विदा किया। तब सब देवता अपना कार्य सिद्ध हुआ मानकर भगवान् सदाशिवकी प्रशंसा करते हुए शीघ्र अपने घरको लौटकर प्रसन्नताका अनुभव करने लगे। तदनन्तर भक्तवत्सल महेश्वर भगवान् शम्भु, जो मायाके स्वामी हैं, निर्विकार चित्तसे शैलराजके यहाँ गये। उस समय गिरिराज हिमवान् सभाभवनमें बन्धुवर्गसे घिरे हुए पार्वतीसहित प्रसन्नतापूर्वक बैठे थे। इसी अवसरपर वहाँ सदाशिवने पदार्पण किया। वे हाथमें दण्ड, छत्र, शरीरपर दिव्य वस्त्र, ललाटमें उज्ज्वल तिलक, एक हाथमें स्फटिककी माला और गलेमें शालग्राम धारण किये भक्तिपूर्वक हरिनामका जप कर रहे थे और देखनेमें साधुवेषधारी ब्राह्मण जान पड़ते थे। उन्हें आया देख सपरिवार हिमवान् उठकर खड़े हो गये। उन्होंने उन अपूर्व अतिथिदेवताको भूतलपर दण्डके समान पड़कर भक्तिभावसे साष्टाङ्ग प्रणाम किया। देवी पार्वती ब्राह्मणरूपधारी प्राणेश्वर शिवको पहचान गयी थीं। अतः उन्होंने भी उनको मस्तक झुकाया और मन-ही-मन बड़ी प्रसन्नताके साथ उनकी स्तुति की। ब्राह्मणरूपधारी शिवने उन सबको प्रेमपूर्वक आशीर्वाद दिया। किंतु शिवाको सबसे अधिक मनोवाञ्छित शुभाशीर्वाद प्रदान किया। शैलाधिराज हिमवान्‌ने बड़े आदरसे उन्हें मधुपर्क आदि पूजन-सामग्री भेंट की और ब्राह्मणने बड़ी प्रसन्नताके साथ वह सब ग्रहण किया।

तत्पश्चात् गिरिश्रेष्ठ हिमाचलने उनका कुशल-समाचार पूछा। मुने ! अत्यन्त प्रीतिपूर्वक उन द्विजराजकी विधिवत् पूजा करके शैलराजने

पूछा—'आप कौन हैं ?' तब उन ब्राह्मण-शिरोमणिने गिरिराजसे शीघ्र ही आदरपूर्वक कहा।

वे श्रेष्ठ ब्राह्मण बोले—गिरिश्रेष्ठ ! मैं उत्तम विद्वान् वैष्णव ब्राह्मण हूँ और ज्योतिषीकी वृत्तिका आश्रय लेकर भूतलपर भ्रमण करता रहता हूँ। मनके समान मेरी गति है। मैं सर्वत्र जानेमें समर्थ और गुरुकी दी हुई शक्तिसे सर्वज्ञ, परोपकारी, शुद्धात्मा, दया-सिन्धु और विकारनाशक हूँ। मुझे ज्ञात हुआ है कि तुम अपनी इस लक्ष्मी-सरीखी सुन्दर रूपवाली दिव्य सुलक्षणा अपनी पुत्रीको एक आश्रयरहित, असङ्ग, कुरूप और गुणहीन वर—महादेवजीके हाथमें देना चाहते हो। वे रुद्र देवता मरघटमें वास करते, शरीरमें साँप लपेटे रहते और योग साधते फिरते हैं। उनके पास पहननेके लिये एक वस्त्र भी नहीं है। वैसे ही नंग-धड़ंग घूमते हैं। आभूषणकी जगह सर्प धारण करते हैं। उनके कुलका नाम आजतक किसीको ज्ञात नहीं हुआ। वे कुपात्र और कुशील हैं। स्वभावतः विहारसे दूर रहते हैं। सारे शरीरमें भस्म रमाते हैं। क्रोधी और अविवेकी हैं। उनकी अवस्था कितनी है, यह किसीको ज्ञात नहीं। वे अत्यन्त कुत्सित जटाका बोझ सदा सिरपर धारण किये रहते हैं। वे भले-बुरे सबको आश्रय देनेवाले, भ्रमणशील, नागहारधारी, भिक्षुक, कुमार्ग-परायण तथा हठपूर्वक वैदिकमार्गका त्याग करनेवाले हैं। ऐसे अयोग्य वरको आप अपनी बेटी ब्याहना चाहते हैं ? अचलराज ! अवश्य ही आपका यह विचार मङ्गलदायक नहीं है। नारायणकुलमें उत्पन्न ! ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ गिरिराज ! मेरे कथनका मर्म समझो। तुमने जिस पात्रको ढूँढ़ रखा है, यह इस योग्य नहीं है कि उसके हाथमें पार्वतीका हाथ दिया जाय। शैलराज ! तुम्हीं देखो, उनके एक भी भाई-बन्धु नहीं हैं। तुम तो बड़े-बड़े रत्नोंकी खान हो। किंतु उनके घरमें भूजी भाँग भी नहीं है—वे सर्वथा निर्धन हैं। गिरिराज ! तुम शीघ्र ही अपने भाई-बन्धुओंसे, मेनादेवीसे, सभी बेटोंसे और पण्डितोंसे भी प्रयत्नपूर्वक पूछ लो। किंतु पार्वतीसे न पूछना; क्योंकि उन्हें शिवके गुण-दोषकी परख नहीं है।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ऐसा कहकर वे ब्राह्मण देवता, जो नाना प्रकारकी लीला करनेवाले शान्तस्वरूप शिव ही थे, शीघ्र खा-पीकर आनन्दपूर्वक वहाँसे अपने घरको चल दिये।

(अध्याय ३१)

☆

मेनाका कोपभवनमें प्रवेश, भगवान् शिवका हिमवान्‌के पास सप्तर्षियोंको भेजना तथा हिमवान्‌द्वारा उनका सत्कार, सप्तर्षियों तथा अरुन्धतीका और महर्षि वसिष्ठका मेना और हिमवान्‌को समझाकर पार्वतीका विवाह भगवान् शिवके साथ करनेके लिये कहना

ब्रह्माजी कहते हैं—ब्राह्मणरूपधारी शिवजीके वचनोंका मेनाके ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ा और उन्होंने दुःखी होकर पतिसे कहा— 'गिरिराज ! इन वैष्णव ब्राह्मणने शिवजीकी जो निन्दा की है, उसे सुनकर मेरा मन उनकी ओरसे बहुत खिन्न एवं विरक्त हो गया है। शैलेश्वर ! रुद्रके रूप, शील और नाम सभी कुत्सित हैं। मैं उन्हें अपनी सुलक्षणा पुत्री कदापि नहीं दूँगी। यदि आप मेरी बात नहीं मानेंगे तो मैं निस्संदेह मर जाऊँगी, अभी इस घरको छोड़ दूँगी अथवा विष खा लूँगी, पार्वतीके गलेमें फाँसी लगाकर गहन वनमें चली जाऊँगी अथवा उसे महासागरमें डुबो दूँगी; परंतु अपनी बेटीको रुद्रके गले नहीं मढ़ूँगी।' ऐसा कहकर मेना तुरंत कोपभवनमें चली गयीं और अपने हारको फेंककर रोती हुई धरतीपर लोट गयीं।

इधर भगवान् शिवको इस बातका पता लगा, तब उन्होंने अरुन्धतीसहित सप्तर्षियोंको बुलाया तथा मेनाके पास जाकर उन्हें समझानेकी आज्ञा दी।

शिवजीका आदेश प्राप्तकर भगवान् शिवको नमस्कार करके वे दिव्य ऋषि आकाशमार्गसे उस स्थानको चल दिये, जहाँ हिमवान्‌की नगरी थी। उस दिव्य पुरीको देखकर उन सप्तर्षियोंको बड़ा विस्मय हुआ। वे हिमाचलपुरीकी परस्पर प्रशंसा करते हुए सब ऐश्वर्योंसे भरे-पूरे हिमवान्‌के घर जा पहुँचे। उन सूर्यतुल्य तेजस्वी सातों ऋषियोंको दूरसे आकाशके रास्ते आते देख हिमवान्‌को बड़ा विस्मय हुआ। वे बोले— 'ये सात सूर्यतुल्य तेजस्वी मुनि मेरे पास आ रहे हैं। मुझे प्रयत्नपूर्वक इस समय इनकी पूजा करनी चाहिये। सबको सुख देनेवाले हम गृहस्थ लोग धन्य हैं, जिनके घरपर ऐसे महात्मा पदार्पण किया करते हैं।'

ब्रह्माजी कहते हैं—इसी समय वे मुनि आकाशसे उतरकर पृथ्वीपर खड़े हो गये। उन्हें सामने देख हिमवान् बड़े आदरके साथ आगे बढ़े और हाथ जोड़ मस्तक झुकाकर उन सप्तर्षियोंको प्रणाम करनेके पश्चात् उन्होंने बड़े सम्मानके साथ उन सबकी पूजा की तथा उन्हें आगे करके कहा—'मेरा गृहाश्रम आज धन्य हो गया।' यों कहकर उन्हें बैठनेके लिये भक्तिपूर्वक आसन लाकर दिया। जब वे आसनोंपर बैठ गये, तब उनकी आज्ञा लेकर हिमवान् भी बैठे और वहाँ उन ज्योतिर्मय महर्षियोंसे इस प्रकार बोले।

हिमवान्‌ने कहा—आज मैं धन्य हूँ, कृतकृत्य हूँ। मेरा जीवन सफल हो गया। मैं लोकमें बहुत-से तीर्थोंकी भाँति दर्शनीय बन गया; क्योंकि आप-जैसे विष्णुरूपी महात्मा

मेरे घर पधारे हैं। आपलोग पूर्णकाम हैं। हम दीनोंके घरोंमें आपका क्या काम हो सकता है। तथापि मुझ सेवकके योग्य यदि कोई कार्य है तो कृपापूर्वक उसे अवश्य कहें। उसे पूर्ण करनेसे मेरा जीवन सफल हो जायगा।

ऋषि बोले—शैलराज! भगवान् शिवको जगत्का पिता कहा गया है और शिवा जगन्माता मानी गयी हैं। अतः तुम्हें महात्मा शंकरको अपनी कन्या देनी चाहिये। हिमालय! ऐसा करके तुम्हारा जन्म सफल हो जायगा तथा तुम जगद्गुरुके भी गुरु हो जाओगे, इसमें संशय नहीं है।

मुनीश्वर! सप्तर्षियोंका यह वचन सुनकर हिमवान्ने दोनों हाथ जोड़ उन्हें प्रणाम करके इस प्रकार कहा।

हिमालय बोले—महाभाग सप्तर्षियो! आपलोगोंने जो बात कही है, उसे शिवकी इच्छासे मैंने पहलेसे ही मान रखा था; किंतु प्रभो! इन दिनों एक वैष्णवधर्मी ब्राह्मणने आकर भगवान् शिवके प्रति प्रसन्नतापूर्वक बहुत-सी उलटी बातें बतायी हैं। उनसे शिवाकी माताका ज्ञान भ्रष्ट हो गया है। वे अपनी बेटीका विवाह इस योगी रुद्रके साथ नहीं करना चाहतीं। ब्राह्मणो! वे बड़ा भारी हठ करके मैले कपड़े पहन कोपभवनमें चली गयी हैं और समझानेपर भी समझ नहीं रही हैं। मैं भी उस वैष्णव ब्राह्मणकी बात सुनकर ज्ञानभ्रष्ट हो गया हूँ। आपसे सच कहता हूँ, भिक्षुकरूपधारी महेश्वरको बेटी देनेकी मेरी भी अब इच्छा नहीं है।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! मुनियोंके बीचमें बैठे हुए शैलराज शिवकी मायासे मोहित हो उपर्युक्त बात कहकर चुप हो रहे। तब उन सभी सप्तर्षियोंने शिवकी मायाकी प्रशंसा करके मेनकाके पास अरुन्धतीको भेजा। पतिकी आज्ञा पाकर ज्ञानदायिनी अरुन्धती देवी तुरंत उस घरमें गयीं, जहाँ मेना और पार्वती थीं। जाकर उन्होंने देखा, मेना शोकसे आकुल होकर पृथ्वीपर पड़ी हैं। तब उन साध्वी देवीने बड़ी सावधानीके साथ मधुर एवं हितकर बात कही।

अरुन्धती बोलीं—साध्वी रानी मेनके! उठो, मैं अरुन्धती तुम्हारे घरमें आयी हूँ तथा दयालु सप्तर्षि भी पधारे हैं। अरुन्धतीका स्वर सुनकर मेनका शीघ्र उठ गयीं और लक्ष्मी-जैसी तेजस्विनी उन पतिव्रता देवीके चरणोंमें मस्तक रखकर बोलीं।

मेनाने कहा—अहो! हम पुण्यजन्मा जीवोंको आज यह किस पुण्यका फल प्राप्त हुआ है कि हमारे इस घरमें जगत्पूज्य ब्रह्माजीकी पुत्रवधू और महर्षि वसिष्ठकी पत्नी पधारी हैं। देवि! आप किसलिये आयी हैं? यह मुझे बताइये। मैं और मेरी पुत्री आपकी दासीके समान हैं। आप हमपर कृपा कीजिये।

मेनकाके ऐसा कहनेपर साध्वी अरुन्धतीने उनको बहुत अच्छी तरह समझाया-बुझाया और उन्हें साथ ले वे प्रसन्नतापूर्वक उस स्थानपर आयीं, जहाँ वे सप्तर्षि विद्यमान थे। सप्तर्षिगण बात-चीतमें बड़े निपुण थे। उन सबने भगवान् शिवके युगल चरणारविन्दोंका स्मरण करके शैलराजको समझाना आरम्भ किया।

ऋषि बोले—शैलेन्द्र! हमारा शुभकारक वचन सुनो। तुम पार्वतीका विवाह शिवके साथ कर दो और संहारकर्ता रुद्रके श्वशुर हो जाओ। शम्भु सर्वेश्वर हैं। वे किसीसे याचना नहीं करते। स्वयं ब्रह्माजीने

तारकासुरके विनाशके लिये एक वीरपुत्र उत्पन्न करनेके उद्देश्यको लेकर भगवान् शिवसे यह प्रार्थना की है कि वे विवाह कर लें। *भगवान् शंकर तो योगियोंके शिरोमणि* हैं। वे विवाहके लिये उत्सुक नहीं हैं। केवल ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे ही वे महादेव तुम्हारी कन्याका पाणिग्रहण करेंगे। तुम्हारी पुत्रीने जब तपस्या की थी, उस समय उसके सामने उन्होंने उससे विवाहकी प्रतिज्ञा कर ली थी। इन्हीं दो कारणोंसे वे योगिराज शिव विवाह करेंगे।

ऋषियोंकी यह बात सुनकर हिमालय *हँस पड़े और कुछ भयभीत हो* विनयपूर्वक बोले।

हिमालयने कहा—मैं शिवके पास कोई राजोचित सामग्री नहीं देखता हूँ। उनका न कोई घर है, न ऐश्वर्य है और न कोई स्वजन या बन्धु-बान्धव ही है। मैं अत्यन्त निर्लिप्त योगीको अपनी बेटी देना नहीं चाहता। आपलोग वेदविधाता ब्रह्माजीके पुत्र हैं; अतः अपना निश्चित विचार कहिये। जो *पिता कामसे, मोहसे, भयसे अथवा लोभसे* किसी अयोग्य वरके हाथमें अपनी कन्या दे देता है, वह मरनेके बाद नरकमें जाता है*। अतः मैं स्वेच्छासे भगवान् शूलपाणिको अपनी कन्या नहीं दूँगा। इसलिये महर्षियो! जो उचित विधान हो, उसे आपलोग कीजिये।

मुनीश्वर नारद! हिमाचलके इस वचनको सुनकर बात-चीत करनेमें निपुण महर्षि वसिष्ठने उनसे यों कहा।

वसिष्ठ बोले—शैलेश्वर! मेरी बात सुनो। यह सर्वथा तुम्हारे लिये हितकारक, धर्मके अनुकूल, सत्य तथा इहलोक और *परलोकमें सुखदायक है। शैलराज! लोक* तथा वेदमें तीन प्रकारके वचन उपलब्ध होते हैं। शास्त्रज्ञ पुरुष अपनी निर्मल ज्ञानदृष्टिसे उन सब प्रकारके वचनोंको जानता है। एक तो वह वचन है, जो तत्काल सुननेमें बड़ा सुन्दर (प्रिय) लगता है, परंतु पीछे वह असत्य एवं अहितकारक सिद्ध होता है। ऐसा वचन बुद्धिमान् शत्रु ही कहता है, उससे कभी हित नहीं होता। दूसरा वह है, जो *आरम्भमें अच्छा नहीं लगता;* उसे सुनकर अप्रसन्नता ही होती है। परंतु परिणाममें वह सुख देनेवाला होता है। इस तरहका वचन कहकर दयालु धर्मशील बान्धवजन ही कर्तव्यका बोध कराता है। तीसरी श्रेणीका वचन वह है जो सुनते ही अमृतके समान मीठा लगता है और सब कालमें सुख देनेवाला होता है। सत्य ही उसका सार होता है। इसलिये वह हितकारक हुआ करता है। ऐसा वचन सबसे श्रेष्ठ और सबके लिये अभीष्ट है। शैलराज! इस तरह नीति-शास्त्रमें तीन प्रकारके वचन कहे गये हैं। इन तीनोंमेंसे तुम्हें कौन-सा वचन अभीष्ट है? बताओ, मैं तुम्हारे लिये वैसा ही वचन कहूँगा। भगवान् शंकर सम्पूर्ण देवताओंके स्वामी हैं। उनके पास बाह्य सम्पत्ति नहीं है, इसका कारण यह है कि उनका चित्त एकमात्र ज्ञानके महासागरमें मग्न रहता है। जो ज्ञानानन्दस्वरूप और सबके ईश्वर हैं, उन्हें

---

* वरायाननुरूपाय पिता कन्यां ददाति चेत्। कामान्मोहाद्भयाल्लोभात् स नष्टो नरके व्रजेत्॥

(शि० पु० रु० सं० पा० खं० ३३।२५)

लौकिक—बाह्य वस्तुओंकी क्या इच्छा होगी ? गृहस्थ पुरुष राज्य और सम्पत्तिसे सुशोभित होनेवाले वरको अपनी पुत्री देता है; क्योंकि किसी दीन-दुःखीको कन्या देनेसे पिता कन्याघाती होता है—उसे कन्याके वधका पाप लगता है *। कौन जानता है कि भगवान् शंकर दुःखी हैं ? कुबेर जिनके किंकर हैं, जो अपनी भ्रूभङ्गकी लीलामात्रसे संसारकी सृष्टि और संहार करनेमें समर्थ हैं, जिन्हें गुणातीत, परमात्मा और प्रकृतिसे परे परमेश्वर कहा गया है, सृष्टि, पालन और संहार करनेवाली जिनकी त्रिविध मूर्ति ही ब्रह्मा, विष्णु और हर नाम धारण करती है, उन्हें कौन निर्धन अथवा दुःखी कह सकता है ? ब्रह्मलोकमें निवास करनेवाले ब्रह्मा, क्षीरसागरमें रहनेवाले विष्णु तथा कैलासवासी हर—ये सब शिवकी ही विभूतियाँ हैं। शिवसे प्रकट हुई प्रकृति भी अपने अंशसे तीन प्रकारकी मूर्तियोंको धारण करती है। जगत्‌में लीलाशक्तिसे प्रेरित हो वह अपनी कलासे बहुत-सा रूप धारण करती है। समस्त वाङ्मयकी अधिष्ठात्री देवी वाणी उनके मुखसे प्रकट हुई है और सर्वसम्पत्स्वरूपिणी लक्ष्मी वक्षःस्थलसे आविर्भूत हुई है तथा शिवाने देवताओंके एकत्र हुए तेजसे अपनेको प्रकट किया था और सम्पूर्ण दानवोंका वध करके देवताओंको स्वर्गकी लक्ष्मी प्रदान की थी।

देवी शिवा कल्पान्तरमें दक्षपत्नीके उदरसे जन्म ले सती नामसे प्रसिद्ध हुई और हरको उन्होंने पतिके रूपमें प्राप्त किया। दक्षने स्वयं ही भगवान् शिवको अपनी पुत्री दी थी। सतीने पतिकी निन्दा सुनकर योगबलसे अपने शरीरको त्याग दिया था। वे ही कल्याणमयी सती अब तुम्हारे वीर्य और मेनाके गर्भसे प्रकट हुई हैं। शैलराज ! ये शिवा जन्म-जन्ममें शिवकी ही पत्नी होती हैं। प्रत्येक कल्पमें बुद्धिरूपा दुर्गा ज्ञानियोंकी श्रेष्ठ माता होती हैं। ये सदा सिद्ध, सिद्धिदायिनी और सिद्धिरूपिणी हैं। भगवान् हर चिताभस्मके रूपमें सतीके अस्थिचूर्णको ही स्वयं प्रेमपूर्वक अपने अङ्गोंमें धारण करते हैं। अतः गिरिराज ! तुम स्वेच्छासे ही अपनी मङ्गलमयी कन्याको भगवान् हरके हाथमें दे दो। तुम यदि नहीं दोगे तो वह स्वयं प्रियतमके स्थानमें चली जायगी। देवेश्वर शिव तुम्हारी पुत्रीका अनन्त क्लेश देखकर ब्राह्मणके रूपमें इसकी तपस्याके स्थानपर आये थे और इसके साथ विवाहकी प्रतिज्ञा करके इसे आश्वासन एवं वर देकर अपने आवास-स्थानको लौट गये थे। गिरे ! पार्वतीकी प्रार्थनासे ही शम्भुने तुम्हारे पास आकर इसके लिये याचना की और तुम दोनोंने शिवभक्तिमें मन लगाकर उनको उस याचनाको स्वीकार कर लिया था। गिरीश्वर ! बताओ, फिर किस कारणसे तुम्हारी बुद्धि विपरीत हो गयी ? भगवान् शिवने देवताओंकी प्रार्थनासे प्रभावित होकर हम सब ऋषियोंको और अरुन्धती देवीको भी तुम्हारे पास भेजा है। हम तुम्हें यही शिक्षा देते हैं कि तुम पार्वतीको रुद्रके हाथमें दे दो। गिरे ! ऐसा करनेपर

---

* गृही ददाति स्वसुतां राज्यसम्पत्तिशालिने। कन्यकां दुःखिने दत्त्वा कन्याघाती भवेत्पिता ॥

(शि॰ पु॰ रु॰ सं॰ पा॰ खं॰ ३३ । ३५)

तुम्हें महान् आनन्द प्राप्त होगा। शैलेन्द्र ! यदि तुम स्वेच्छासे अपनी बेटी शिवाको शिवके हाथमें नहीं दोगे तो भावीके बलसे ही इन दोनोंका विवाह हो जायगा। तात ! भगवान् शंकरने तपस्यामें लगी हुई पार्वतीको ऐसा ही वर दिया है। ईश्वरकी की हुई प्रतिज्ञा कभी पलट नहीं सकती। गिरिराज ! ईश्वरके वशमें रहनेवाले समस्त साधु पुरुषोंकी भी प्रतिज्ञाका संसारमें किसीके द्वारा उल्लङ्घन होना कठिन है। फिर साक्षात् ईश्वरकी प्रतिज्ञाके लिये तो कहना ही क्या है ? (अध्याय ३२-३३)

☆

सप्तर्षियोंके समझाने तथा मेरु आदिके कहनेसे पत्नीसहित हिमवान्‌का शिवके साथ अपनी पुत्रीके विवाहका निश्चय करना तथा सप्तर्षियोंका शिवके पास जा उन्हें सब बात बताकर अपने धामको जाना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! तदनन्तर वसिष्ठने प्राचीन कालमें राजा अनरण्यके द्वारा अपनी कन्या पद्माका पिप्पलादके साथ विवाह करनेकी तथा धर्मके वरदानसे पिप्पलादके तरुण अवस्था, रूप, गुण, सदा

स्थिर रहनेवाले यौवन, कुबेर और इन्द्रसे भी बढ़कर धन-ऐश्वर्य, भक्ति, सिद्धि एवं समता प्राप्त करनेकी तथा पद्माके स्थिर यौवन, सौभाग्य, सम्पत्ति एवं भर्ताके द्वारा परम गुणवान् दस पुत्रोंके प्राप्त करनेकी कथा सुनाकर कहा—'शैलेन्द्र ! तुम मेरे कथनके सारतत्त्वको समझकर अपनी पुत्री पार्वतीका हाथ महादेवजीके हाथमें दे दो और मेनासहित तुम्हारे मनमें जो कुरोष है, उसे त्याग दो। आजसे एक सप्ताह व्यतीत होनेपर अत्यन्त शुभ और दुर्लभ मुहूर्त आनेवाला है। उस समय चन्द्रमा लग्नके स्वामी होकर अपने पुत्र बुधके साथ लग्नमें ही स्थित होंगे। उनका रोहिणी नक्षत्रके साथ योग होगा। चन्द्रमा और तारे शुद्ध होंगे। मार्गशीर्ष-मासके अन्तर्गत सम्पूर्ण दोषोंसे रहित सोमवारको, जब कि लग्नपर सम्पूर्ण शुभग्रहोंकी दृष्टि होगी, पापग्रहोंकी दृष्टि नहीं होगी तथा बृहस्पति ऐसे स्थानपर स्थित होंगे, जहाँसे वे उत्तम संतान और पतिका सौभाग्य देनेमें समर्थ होंगे। ऐसे मुहूर्तमें तुम अपनी कन्या मूलप्रकृति ईश्वरी जगदम्बा पार्वतीको जगत्पिता भगवान् शिवके हाथमें देकर कृतार्थ हो जाओ।'

ऐसा कहकर ज्ञानशिरोमणि मुनिवर वसिष्ठ नाना प्रकारकी लीला करनेवाले

भगवान् शिवका स्मरण करके चुप हो गये। वसिष्ठजीकी बात सुनकर सेवकों और पत्नीसहित गिरिराज हिमालय बड़े विस्मित हुए और दूसरे-दूसरे पर्वतोंसे बोले।

हिमालयने कहा—गिरिराज मेरु, सह्य, गन्धमादन, मन्दराचल, मैनाक और विन्ध्याचल आदि पर्वतेश्वरो! आप सब लोग मेरी बात सुनें। वसिष्ठजी ऐसी बात कह रहे हैं। अब मुझे क्या करना चाहिये, इस बातका विचार करना है। आपलोग अपने मनसे सब बातोंका निर्णय करके जैसा ठीक समझें, वैसा करें।

हिमाचलकी यह बात सुनकर सुमेरु आदि पर्वत भलीभाँति निर्णय करके उनसे प्रसन्नतापूर्वक बोले।

पर्वतोंने कहा—महाभाग! इस समय विचार करनेसे क्या लाभ? जैसा ऋषिलोग कहते हैं, उसके अनुसार ही कार्य करना चाहिये। वास्तवमें यह कन्या देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये ही उत्पन्न हुई है। इसने शिवके लिये ही अवतार लिया है, इसलिये यह शिवको ही दी जानी चाहिये। यदि इसने रुद्रदेवकी आराधना की है और रुद्रने आकर इसके साथ वार्तालाप किया है तो इसका विवाह उन्हींके साथ होना चाहिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! उन मेरु आदि पर्वतोंकी यह बात सुनकर हिमाचल बड़े प्रसन्न हुए और गिरिजा भी मन-ही-मन हँसने लगीं। अरुन्धतीने भी अनेक कारण बताकर, नाना प्रकारकी बातें सुनाकर और विविध प्रकारके इतिहासोंका वर्णन करके मेनादेवीको समझाया। तब शैलपत्नी मेनका सब कुछ समझ गयीं और प्रसन्नचित्त हो उन्होंने मुनियोंको, अरुन्धतीजीको और हिमाचलको भी भोजन कराकर स्वयं भोजन किया। तदनन्तर ज्ञानी गिरिश्रेष्ठ हिमाचलने उन मुनियोंकी भलीभाँति सेवा की। उनका मन प्रसन्न और सारा भ्रम दूर हो गया था। उन्होंने हाथ जोड़ प्रसन्नतापूर्वक उन महर्षियोंसे कहा।

हिमालय बोले—महाभाग सप्तर्षियो! आपलोग मेरी बात सुनें। मेरा सारा संदेह दूर हो गया। मैंने शिव-पार्वतीके चरित्र सुन लिये; अब मेरा शरीर, मेरी पत्नी मेना, मेरे पुत्र-पुत्री, ऋद्धि-सिद्धि तथा अन्य सारी वस्तुएँ भगवान् शिवकी ही हैं, दूसरे किसीकी नहीं!

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! ऐसा कहकर हिमाचलने अपनी पुत्रीकी ओर आदरपूर्वक देखा और उसे वस्त्राभूषणोंसे विभूषित करके ऋषियोंकी गोदमें बिठा दिया। तत्पश्चात् वे शैलराज पुनः प्रसन्न हो उन ऋषियोंसे बोले—'यह भगवान् रुद्रका भाग है। इसे मैं उन्हींको दूँगा, ऐसा निश्चय कर लिया है।'

ऋषि बोले—गिरिराज! भगवान् शंकर तुम्हारे याचक हैं, तुम स्वयं उनके दाता हो और पार्वतीदेवी भिक्षा हैं। इससे उत्तम और क्या हो सकता है? हिमाचल! तुम समस्त पर्वतोंके राजा, सबसे श्रेष्ठ और धन्य हो। अतः तुम्हारे शिखरोंकी सामान्य गति है—तुम्हारे सभी शिखर सामान्यरूपसे पवित्र एवं श्रेष्ठ हैं।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! ऐसा कहकर निर्मल अन्तःकरणवाले उन मुनियोंने गिरिराज-कुमारी पार्वतीको हाथसे छूकर आशीर्वाद देते हुए कहा—'शिवे! तुम भगवान् शिवके लिये सुखदायिनी होओ। तुम्हारा कल्याण होगा। जैसे शुक्लपक्षमें चन्द्रमा बढ़ते हैं, उसी प्रकार तुम्हारे गुणोंकी वृद्धि हो।' ऐसा कहकर सब मुनियोंने गिरिराजको प्रसन्नतापूर्वक फल-फूल दे विवाहके पक्के होनेका दृढ़ विश्वास कर लिया। उस समय परम सती सुमुखी अरुन्धतीने प्रसन्नतापूर्वक भगवान् शिवके गुणोंका बखान करके मेनाको लुभा लिया। तदनन्तर गिरिराज हिमवान्‌ने परम उत्तम माङ्गलिक लोकाचारका आश्रय ले हल्दी और कुङ्कुमसे अपनी दाढ़ी-मूछका मार्जन किया। तत्पश्चात् चौथे दिन उत्तम लग्नका निश्चय करके परस्पर संतोष दे, वे सप्तर्षि भगवान् शिवके पास चले गये। वहाँ जाकर शिवको नमस्कार और विविध सूक्तियोंसे उनका स्तवन करके वे वसिष्ठ आदि सब मुनि परमेश्वर शिवसे बोले।

ऋषियोंने कहा—देवदेव! महादेव! परमेश्वर! महाप्रभो! आप प्रेमपूर्वक हमारी बात सुनें। आपके इन सेवकोंने जो कार्य किया है, उसे जान लें। महेश्वर! हमने नाना प्रकारके सुन्दर वचन और इतिहास सुनाकर गिरिराज और मेनाको समझा दिया है। गिरिराजने आपके लिये पार्वतीका वाग्दान कर दिया है। अब इसमें कोई नतु-नच नहीं है। अब आप अपने पार्षदों तथा देवताओंके साथ उनके यहाँ विवाहके लिये जाइये। महादेव! प्रभो! अब शीघ्र हिमाचलके घर पधारिये और वेदोक्त रीतिके अनुसार पार्वतीका अपने लिये पाणिग्रहण कीजिये।

सप्तर्षियोंका यह वचन सुनकर लोकाचार-परायण महेश्वर प्रसन्नचित्त हो हँसते हुए इस प्रकार बोले।

महेश्वरने कहा—महाभाग सप्तर्षियो! विवाहको तो मैंने न कभी देखा है और न सुना ही है। तुमलोगोंने पहले जैसा देखा हो, उसके अनुसार विवाहकी विशेष विधिका वर्णन करो।

महेश्वरके उस लौकिक शुभ वचनको सुनकर वे ऋषि हँसते हुए देवाधिदेव भगवान् सदाशिवसे बोले।

ऋषियोंने कहा—प्रभो! आप पहले तो भगवान् विष्णुको, विशेषतः उनके पार्षदोंसहित शीघ्र बुला लें। फिर पुत्रोंसहित ब्रह्माजीको, देवराज इन्द्रको, समस्त ऋषियोंको, यक्ष, गन्धर्व, किंनर, सिद्ध, विद्याधर और अप्सराओंको प्रसन्नतापूर्वक आमन्त्रित करें। इनको तथा अन्य सब लोगोंको यहाँ सादर बुलवा लें। वे सब मिलकर आपके कार्यका साधन कर लेंगे, इसमें संशय नहीं है।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! ऐसा कहकर वे सातों ऋषि उनकी आज्ञा ले भगवान् शंकरकी स्थितिका वर्णन करते हुए वहाँसे प्रसन्नतापूर्वक अपने धामको चले गये।

(अध्याय ३४—३६)

☆

हिमवान्‌का भगवान् शिवके पास लग्नपत्रिका भेजना, विवाहके लिये आवश्यक सामान जुटाना, मङ्गलाचारका आरम्भ करना, उनका निमन्त्रण पाकर पर्वतों और नदियोंका दिव्यरूपमें आना, पुरीकी सजावट तथा विश्वकर्माद्वारा दिव्य-मण्डप एवं देवताओंके निवासके लिये दिव्यलोकोंका निर्माण करवाना

नारदजीने पूछा—तात! महाप्राज्ञ! प्रभो! आप कृपापूर्वक यह बताइये कि *सप्तर्षियोंके चले जानेपर हिमाचलने क्या* किया।

ब्रह्माजीने कहा—मुनीश्वर! अरुन्धतीसहित उन सप्तर्षियोंके चले जानेपर हिमवान्‌ने जो कार्य किया, वह तुम्हें बता रहा हूँ। सप्तर्षियोंके जानेके बाद अपने मेरु आदि भाई-बन्धुओंको आमन्त्रित करके पुत्र और पत्नीसहित महामनस्वी गिरिराज हिमवान् बड़े हर्षका अनुभव करने लगे। तदनन्तर ऋषियोंकी आज्ञाके अनुसार हिमवान्‌ने अपने पुरोहित गर्गजीसे बड़ी प्रसन्नताके साथ लग्न-पत्रिका लिखवायी। उस पत्रिकाको उन्होंने भगवान् शिवके पास भेजा। पर्वतराजके बहुत-से आत्मीयजन प्रसन्नमनसे नाना प्रकारकी सामग्रियाँ लेकर वहाँ गये। कैलासपर भगवान् शिवके समीप पहुँचकर उन लोगोंने शिवको तिलक लगाया और वह लग्नपत्र उनके हाथमें दिया। वहाँ भगवान् शिवने उन सबका *यथायोग्य विशेष सत्कार किया। फिर वे* सब लोग प्रसन्नचित्त हो शैलराजके पास लौट आये। महेश्वरके द्वारा विशेष सम्मानित होकर बड़े हर्षके साथ लौटे हुए उन लोगोंको देखकर हिमवान्‌के हृदयमें अत्यन्त हर्ष हुआ। तत्पश्चात् आनन्दित हो शैलराजने नाना देशोंमें रहनेवाले अपने बन्धुओंको लिखित निमन्त्रण भेजा, जो उन सबको *सुख देनेवाला था। इसके बाद वे बड़े आदर* और उत्साहके साथ उत्तम अन्न एवं नाना प्रकारकी विवाहोचित सामग्रियोंका संग्रह करने लगे। उन्होंने चावल, गुड़, शक्कर, आटा, दूध, दही, घी, मिठाई, नमकीन पदार्थ, मक्खन, पकवान, महान् स्वादिष्ट रस और नाना प्रकारके व्यञ्जन इतने अधिक एकत्र किये कि सूखे पदार्थोंके पहाड़ खड़े हो गये और द्रव पदार्थोंकी बावड़ियाँ बन गयीं। शिवके पार्षदों और देवताओंके लिये हितकर नाना प्रकारकी वस्तुएँ, भाँति-भाँतिके बहुमूल्य वस्त्र, आगमें तपाकर शुद्ध किये हुए सुवर्ण, रजत और विभिन्न प्रकारके मणिरत्न—इनका तथा अन्य उपयोगी द्रव्योंका विधिपूर्वक संग्रह करके गिरिराजने मङ्गलकारी दिनमें माङ्गलिक कृत्य करना आरम्भ किया। पर्वतराजके घरकी स्त्रियोंने पार्वतीका संस्कार करवाया। भाँति-भाँतिके आभूषणोंसे विभूषित हुई *राजभवनकी उन सुन्दरी स्त्रियोंने सानन्द* मङ्गलकार्यका सम्पादन किया। नगरके ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंने स्वयं बड़े हर्षके साथ लोकाचारका अनुष्ठान किया। उसमें मङ्गलपूर्वक भाँति-भाँतिके उत्सव मनाये गये। हर्षभरे हृदयसे उत्तम मङ्गलाचारका

सम्पादन करके हिमालय भी सर्वतोभावेन बड़े प्रसन्न हुए और अपने निमन्त्रित बन्धुजनोंके आगमनकी उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करने लगे।

इसी बीचमें उनके निमन्त्रित बन्धु-बान्धव आने लगे। देवताओंके निवासभूत गिरिराज सुमेरु दिव्य रूप धारण करके नाना प्रकारके मणियों तथा महारत्नोंको बलपूर्वक साथ ले अपने स्त्री-पुत्रोंके साथ हिमालयके घर आये। मन्दराचल, अस्ताचल, उदयाचल, मलय, दर्दुर, निषध, गन्धमादन, करवीर, महेन्द्र, पारियात्र, क्रौञ्च, पुरुषोत्तमशैल, नील, त्रिकूट, चित्रकूट, वैकूट, श्रीशैल, गोकामुख, नारद, विन्ध्य, कालञ्जर, कैलास तथा अन्य पर्वत दिव्य रूप धारणकर अपने स्त्री-पुत्रोंके साथ बहुत-सी भेंट-सामग्री ले वहाँ उपस्थित हुए। दूसरे द्वीपोंमें तथा यहाँ भी जो-जो पर्वत हैं, वे सब हिमालयके घर पधारे। शिवा और शिवका विवाह है, यह जानकर सबने बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ पदार्पण किया। शोणभद्र आदि नद और सम्पूर्ण नदियाँ दिव्य नर-नारियोंके रूप धारणकर नाना प्रकारके अलंकारोंसे अलंकृत हो शिव-पार्वतीका विवाह देखनेके लिये आये। गोदावरी, यमुना, सरस्वती, वेणी, गङ्गा, नर्मदा तथा अन्य श्रेष्ठ सरिताएँ भी बड़ी प्रसन्नताके साथ हिमवान्‌के यहाँ आयीं। उन सबके आनेसे हिमालयकी दिव्य पुरी सब ओरसे भर गयी। वह सब प्रकारकी शोभाओंसे सम्पन्न थी। वहाँ बड़े-बड़े उत्सव हो रहे थे। ध्वजा-पताकाएँ फहरा रही थीं। बंदनवारोंसे उसकी अधिक शोभा होती थी। चारों ओर चँदोवे तने होनेसे वहाँ सूर्यका दर्शन नहीं होता था। भाँति-भाँतिकी पीली, पीली आदि प्रभा उस पुरीकी शोभा बढ़ाती थी। हिमालयने भी बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने यहाँ पधारे हुए सभी स्त्री-पुरुषोंका यथायोग्य आदर-सत्कार किया और सबको अलग-अलग सुन्दर स्थानोंमें ठहराया। अनेकानेक उपयुक्त सामग्री देकर सबको पूर्ण संतुष्ट किया।

मुनिश्रेष्ठ! तदनन्तर शैलराज हिमवान्‌ने प्रसन्न हो महान् उत्सवसे परिपूर्ण अपने नगरको विचित्र रीतिसे सजाना आरम्भ किया। सड़कोंको झाड़-बुहारकर उनपर छिड़काव कराया। उन्हें बहुमूल्य साधनोंसे सुसज्जित एवं शोभित किया। प्रत्येक घरके दरवाजेपर केले आदि माङ्गलिक वृक्ष लगवाये और उन्हें माङ्गलिक द्रव्योंसे संयुक्त किया। आँगनको केलेके खंभोंसे सजाया। रेशमकी डोरीमें आमके पल्लव बाँधकर बंदनवारें बनवायीं और उन्हें उन खंभोंके चारों ओर लगवा दिया। मालतीके फूलोंकी मालाएँ उस (आँगन) के सब ओर लटका दी गयीं। सुन्दर तोरणोंसे वह आँगनका भाग अत्यन्त प्रकाशमान जान पड़ता था। चारों दिशाओंमें मङ्गलसूचक शुभ द्रव्य रखे गये थे, जो उस प्राङ्गणकी शोभा बढ़ा रहे थे। इसी प्रकार अत्यन्त प्रसन्नतासे भरे हुए गिरिराज हिमवान्‌ने महान् प्रभावशाली गर्गमुनिको आगे करके अपनी पुत्रीके लिये प्रस्तुत करनेयोग्य सारा उत्तम मङ्गलकार्य सम्पन्न किया। उन्होंने विश्वकर्माको बुलाकर आदरपूर्वक एक मण्डप बनवाया, जिसका विस्तार बहुत अधिक था। वेदी आदिके कारण वह मण्डप बहुत मनोहर जान पड़ता था। देववें! वह मण्डप कई योजन विस्तृत

था। अनेक शुभ लक्षणोंसे युक्त तथा नाना प्रकारके आश्चर्योंसे परिपूर्ण था। वहाँ स्थावर और जंगम सभी वस्तुएँ कृत्रिम बनी थीं; परंतु असली वस्तुओंके समान प्रतीत होती थीं। उनसे उस मण्डपकी मनोहरता बढ़ गयी थी। वहाँ सब ओर ऐसी अद्भुत वस्तुएँ थीं जो उस मण्डपका सर्वस्व जान पड़ती थीं। नाना प्रकारकी निराली वस्तुओंका चमत्कार वहाँ छा रहा था। वहाँकी स्थावर वस्तुओंसे जंगम और जंगम वस्तुओंसे स्थावर पराजित हो रहे थे अर्थात् वे एक-दूसरेसे बढ़कर शोभाशाली और चमत्कारपूर्ण दिखायी देते थे। उस मण्डपकी स्थलभूमि जलसे पराजित हो रही थी। अर्थात् चतुर-से-चतुर मनुष्य भी यह नहीं जान पाते थे कि इसमें कहाँ जल है और कहाँ स्थल। कहीं कृत्रिम सिंह बने थे और कहीं सारसोंकी पंक्तियाँ। कहीं बनावटी मोर थे, जो अपनी सुन्दरतासे मनको मोहे लेते थे। कहीं कृत्रिम स्त्रियाँ थीं, जो पुरुषोंके साथ नृत्य करती हुई देखी जाती थीं। वे कृत्रिम होनेपर भी सब लोगोंकी ओर देखतीं और उनके मनको मोहमें डाल देती थीं। उसी विधिसे मनोहर द्वारपाल बने थे, जो स्थावर होनेपर भी जंगमोंके समान जान पड़ते थे। वे अपने हाथोंसे धनुष उठाकर उन्हें खींचते देखे जाते थे।

द्वारपर कृत्रिम महालक्ष्मी खड़ी थीं, जिनकी रचना अद्भुत थी। वह समस्त शुभ लक्षणोंसे संयुक्त दिखायी देती थीं। उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो क्षीरसागरसे साक्षात् लक्ष्मी ही आ गयी हों। उस मण्डपमें स्थान-स्थानपर सजे-सजाये कृत्रिम हाथी खड़े किये गये थे, जो असली हाथियोंके समान ही प्रतीत होते थे। घुड़सवारोंसहित घोड़े और हाथीसवारोंसहित हाथी बनाये गये थे। जहाँ-तहाँ रथियोंसहित रथ बने थे, जो कृत्रिम अश्वोंसे ही खींचे जाते थे। उन्हें देखकर लोगोंको बड़ा आश्चर्य होता था। इनके सिवा दूसरे-दूसरे कृत्रिम वाहन भी वहाँ खड़े थे। पैदल सिपाहियोंकी कृत्रिम सेना भी वहाँ मौजूद थी। मुने! प्रसन्न चित्तवाले विश्वकर्माने देवताओं और मुनियोंको भी मोह (आश्चर्य)में डालनेके लिये वहाँ ऐसी अद्भुत रचनाएँ की थीं। मण्डपके सबसे बड़े फाटकपर कृत्रिम नन्दी खड़ा था, जो शुद्ध स्फटिकमणिके समान उज्ज्वल कान्तिसे सुशोभित होता था। भगवान् शिवके वाहन नन्दीकी जैसी आकृति है, ठीक वैसा ही वह भी था। उस कृत्रिम नन्दीके ऊपर रत्न-विभूषित महादिव्य पुष्पक शोभा पाता था, जो पल्लवों तथा श्वेत चामरोंसे सजाया गया था। उसके वाम पार्श्वमें दो कृत्रिम हाथी खड़े थे, जिनका रंग विशुद्ध केसरके समान था। वे चार दाँतवाले बनाये गये थे और साठ वर्षके पाठोंके समान दीखते थे। वे परस्पर स्नेह करते-से प्रतीत होते थे। उनमें बड़ी चमक थी। इसी प्रकार सूर्यके समान अत्यन्त प्रकाशमान दो दिव्य अश्व भी विश्वकर्माने बनाये थे, जो चँवरसे अलंकृत और दिव्य आभूषणोंसे विभूषित थे। श्रेष्ठ रत्नमय आभूषणोंसे सम्पन्न, कवचधारी लोकपाल तथा सम्पूर्ण देवता भी वहाँ विश्वकर्माद्वारा रचे गये थे, जो ठीक उन्हीं लोकपालों और देवताओंसे मिलते-जुलते थे। इसी तरह भृगु आदि समस्त तपोधन ऋषि, अन्यान्य उपदेवता और सिद्ध भी

उनके द्वारा वहाँ निर्मित हुए थे।

गरुड़ आदि समस्त पार्षदोंसे युक्त भगवान् विष्णुका कृत्रिम विग्रह भी विश्वकर्माने बनाया था, जिसका स्वरूप साक्षात् श्रीहरिके समान ही आश्चर्यजनक था। नारद! उसी प्रकार पुत्रों, वेदों और सिद्धोंसे घिरे हुए मुझ ब्रह्माकी भी प्रतिमा वहाँ बनायी गयी थी, जो मेरे समान ही वैदिक सूक्तोंका पाठ कर रही थी। ऐरावत हाथीपर चढ़े हुए देवराज इन्द्र भी वहाँ दल-बलके साथ खड़े थे। वे भी कृत्रिम ही बनाये गये थे और परिपूर्ण चन्द्रमाके समान प्रकाशित होते थे। देवर्षे! बहुत कहनेसे क्या लाभ? हिमाचलसे प्रेरित हुए विश्वकर्माने वहाँ शीघ्र ही सम्पूर्ण देवसमाजके कृत्रिम विग्रहोंका निर्माण कर लिया था। इस प्रकार उन्होंने दिव्य मण्डपकी रचना की थी। वह मण्डप अनेक आश्चर्योंसे युक्त, महान् तथा देवताओंको भी मोह लेनेवाला था।

तदनन्तर गिरिराज हिमवान्‌की आज्ञासे परम बुद्धिमान् विश्वकर्माने देवता आदिके निवासके लिये उन-उनके कृत्रिम लोकोंका भी यत्नपूर्वक निर्माण किया। उन्हीं लोकोंमें उन्होंने उन देवताओंके लिये अत्यन्त तेजस्वी, परम अद्भुत और सुखदायक बड़े-बड़े दिव्य मञ्चों (सिंहासनों) की रचना की। इसी तरह उन्होंने मुझ स्वयम्भू ब्रह्माके निवासके लिये क्षणभरमें अद्भुत सत्यलोककी रचना कर डाली, जो उत्तम दीप्तिसे उद्दीप्त हो रहा था। साथ ही भगवान् विष्णुके लिये भी क्षणभरमें दूसरे दिव्य वैकुण्ठधामका निर्माण कर दिया, जो परम उज्ज्वल तथा नाना प्रकारके आश्चर्योंसे परिपूर्ण था। इसी तरह विश्वकर्माने देवराज इन्द्रके लिये भी दिव्य, अद्भुत, उत्तम एवं समस्त ऐश्वर्योंसे सम्पन्न गृहकी रचना की। अन्य लोकपालोंके लिये भी उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक बड़े सुन्दर, दिव्य, अद्भुत एवं बड़े-बड़े भवन बनाये। फिर क्रमशः समस्त देवताओंके लिये भी उन्होंने क्रमशः विचित्र गृहोंका निर्माण किया। परम बुद्धिमान् विश्वकर्माको भगवान् शंकरका महान् वर प्राप्त था, इसीलिये उन्होंने शिवके संतोषके लिये क्षणभरमें इन सब वस्तुओंकी रचना कर डाली। तदनन्तर उसी प्रकार भगवान् शंकरके लिये भी उन्होंने एक शोभाशाली गृहका निर्माण किया, जो शिवके चिह्नसे युक्त तथा शिवलोकवर्ती दिव्य भवनके समान ही अनुपम था। श्रेष्ठ देवताओंने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। वह परम उज्ज्वल, महान् प्रभापुञ्जसे उद्भासित, उत्तम और अद्भुत था। विश्वकर्माने भगवान् शिवकी प्रसन्नताके लिये वहाँ ऐसी अद्भुत रचना की थी, जो परम उज्ज्वल होनेके साथ ही साक्षात् महादेवजीको भी आश्चर्यमें डालनेवाली थी। इस प्रकार यह सारा लौकिक व्यवहार करके हिमाचल बड़ी प्रसन्नताके साथ भगवान् शम्भुके शुभागमनकी प्रतीक्षा करने लगे। देवर्षे! हिमालयका यह सारा आनन्ददायक वृत्तान्त मैंने तुमसे कह सुनाया। अब और क्या सुनना चाहते हो?

(अध्याय ३७-३८)

☆

भगवान् शिवका नारदजीके द्वारा सब देवताओंको निमन्त्रण दिलाना, सबका आगमन तथा शिवका मङ्गलाचार एवं ग्रहपूजन आदि करके कैलाससे बाहर निकलना

नारदजी बोले—विष्णुशिष्य महाप्राज्ञ तात विधातः! आपको नमस्कार है। कृपानिधे! आपके मुँहसे यह अद्भुत कथा मुझे सुननेको मिली है। अब मैं भगवान् चन्द्रमौलिके परम मङ्गलमय तथा समस्त पापराशिके विनाशक वैवाहिक चरित्रको सुनना चाहता हूँ। मङ्गलपत्रिका पाकर महादेवजीने क्या किया? परमात्मा शंकरकी वह दिव्य कथा सुनाइये।

ब्रह्माजीने कहा—बेटा! तुम बड़े बुद्धिमान् हो। भगवान् शंकरके उत्तम यशको सुनो। मङ्गलपत्रिका पाकर भगवान् शंकरने जो कुछ किया, वह बताता हूँ। भगवान् शिव उस मङ्गलपत्रिकाको प्रसन्नतापूर्वक हाथमें लेकर हृदयमें बड़े हर्षका अनुभव करते हुए हँसने लगे। फिर उन भगवान्‌ने उसे लानेवालोंका सम्मान किया। तत्पश्चात् उसे बाँचकर विधिपूर्वक स्वीकार किया। इसके बाद हिमाचलके यहाँसे आये हुए लोगोंको बड़े आदर-सम्मानके साथ विदा किया। तदनन्तर उन मुनियोंसे कहा—'आपलोगोंने मेरे शुभकार्यका भलीभाँति सम्पादन किया, अब मैंने विवाह स्वीकार कर लिया है। अतः आपलोगोंको मेरे विवाहमें आना चाहिये।'

भगवान् शंकरका यह वचन सुनकर वे ऋषि बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें प्रणाम एवं उनकी परिक्रमा करके अपने परम सौभाग्यकी सराहना करते हुए अपने धामको चले गये। मुने! तदनन्तर महालीला करनेवाले देवेश्वर भगवान् शम्भुने लोकाचारका सहारा ले तत्काल ही तुम्हारा स्मरण किया। तुम अपने सौभाग्यकी प्रशंसा करते हुए बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ आये और मस्तक झुका प्रणाम कर हाथ जोड़ विनीतभावसे खड़े हो गये।

तब भगवान् शिवने कहा—नारद! तुम्हारे उपदेशसे देवी पार्वतीने बड़ी भारी तपस्या की और उससे संतुष्ट होकर मैंने उन्हें यह वर दिया कि मैं पतिरूपसे तुम्हारा पाणिग्रहण करूँगा। पार्वतीकी भक्ति देखकर मैं उनके वशमें हो गया हूँ। इसलिये उनके साथ विवाह करूँगा। सप्तर्षियोंने लग्नका साधन और शोधन कर दिया है। अतः आजसे सातवें दिन मेरा विवाह होगा। उस अवसरपर लौकिक रीतिका आश्रय ले मैं महान् उत्सव करूँगा। मुने! तुम विष्णु आदि सब देवताओं, मुनियों और सिद्धोंको तथा अन्य लोगोंको भी मेरी ओरसे निमन्त्रित करो। सब लोग मेरे शासनकी गुरुताको समझकर प्रसन्नता और उत्साहके साथ सब प्रकारसे सज-धजकर स्त्री-पुत्रोंको साथ लिये यहाँ आयें।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! भगवान् शंकरकी इस आज्ञाको शिरोधार्य करके तुमने शीघ्र ही सर्वत्र जाकर उन सबको निमन्त्रण दे दिया। तत्पश्चात् शम्भुके पास आकर उनकी आज्ञाके अनुसार तुम वहीं ठहर गये। भगवान् शिव भी उन सब

देवताओंके आगमनकी उत्कण्ठापूर्वक प्रतीक्षा करते हुए अपने गणोंके साथ वहीं रहे। उनके सभी गण सम्पूर्ण दिशाओंमें नाचते हुए वहाँ बड़ा भारी उत्सव मना रहे थे। इसी बीचमें भगवान् विष्णु सुन्दर वेष धारण किये अपनी पत्नी और दलबलके साथ शीघ्र ही कैलास पर्वतपर आये और भक्तिभावसे भगवान् शिवको प्रणाम करके उनकी आज्ञा पाकर प्रसन्नतापूर्वक उत्तम स्थानमें ठहर गये। इसी प्रकार मैं अपने गणोंके साथ स्वतन्त्रतापूर्वक शीघ्र ही कैलास गया और भगवान् शम्भुको प्रणाम करके अपने सेवकोंसहित सानन्द वहाँ ठहरा। तदनन्तर इन्द्र आदि लोकपाल और उनकी स्त्रियाँ आवश्यक सामानके साथ खूब सज-धजकर वहाँ आयीं। वे सब-के-सब उत्सव मना रहे थे। तत्पश्चात् मुनि, नाग, सिद्ध, उपदेवता तथा अन्य लोग भी निमन्त्रित हो उत्सव मनाते हुए वहाँ आये। उस समय महेश्वरने वहाँ आये हुए सब देवता आदिका पृथक्-पृथक् सहर्ष स्वागत-सत्कार किया। फिर तो कैलास पर्वतपर बड़ा अद्भुत और महान् उत्सव होने लगा। देवाङ्गनाओंने उस अवसरपर यथायोग्य नृत्य आदि किया। विष्णु आदि जो देवता भगवान् शम्भुकी वैवाहिक यात्रा सम्पन्न करानेके लिये इस समय वहाँ आये थे, वे सब यथास्थान ठहर गये। भगवान् शिवकी आज्ञा पाकर सब लोग उनके प्रत्येक कार्यको अपना ही कार्य समझकर नियन्त्रित रूपसे करने लगे और इसे शिवकी सेवा मानने लगे। उस समय सातों मातृकाएँ वहाँ बड़ी प्रसन्नताके साथ शिवको यथायोग्य आभूषण पहिनाने लगीं। मुनिश्रेष्ठ! परमेश्वर भगवान् शिवका जो स्वाभाविक वेष था, वही उनकी इच्छासे उनके लिये आभूषणकी सामग्री बन गया। उस समय चन्द्रमा स्वयं उनके मुकुटके स्थानपर जा विराजे। उनका जो सुन्दर ललाटवर्ती तीसरा नेत्र था, वही शुभ तिलक बन गया। मुने! कानोंके आभूषणोंके रूपमें जो दो सर्प बताये गये हैं, वे नाना प्रकारके रत्नोंसे युक्त दो कुण्डल बन गये। अन्यान्य अङ्गोंमें स्थित सर्प उन-उन अङ्गोंके अति रमणीय नाना रत्नमय आभूषण हो गये। उनके शरीरमें जो भस्म लगा हुआ था, वही चन्दन आदिका अङ्गराग बन गया और उनके जो गजचर्म आदि परिधान थे, वे सुन्दर दिव्य दुकूल बन गये।

इस प्रकार उनका रूप इतना सुन्दर हो गया कि उसका वर्णन करना कठिन है। वे साक्षात् ईश्वर तो थे ही, उन्होंने पूरा-पूरा ऐश्वर्य प्राप्त कर लिया। तदनन्तर समस्त देवता, यक्ष, दानव, नाग, पक्षी, अप्सरा और महर्षिगण मिलकर भगवान् शिवके समीप गये और महान् उत्सव मनाते हुए प्रसन्नतापूर्वक उनसे बोले—'महादेव! महेश्वर! अब आप महादेवी गिरिजाको ब्याह लानेके लिये हमलोगोंके साथ चलिये, चलिये। हमपर कृपा कीजिये।' तत्पश्चात् विज्ञानसे प्रसन्न हृदयवाले भगवान् विष्णुने भगवान् शंकरको भक्तिभावसे प्रणाम करके उपर्युक्त प्रस्तावके अनुरूप ही बात कही।

भगवान् विष्णु बोले—शरणागतवत्सल देवदेव! महादेव! प्रभो! आप अपने भक्तजनोंका कार्य सिद्ध करनेवाले हैं; अतः मेरा एक निवेदन सुनिये। कल्याणकारी शम्भो! आप गृह्यसूत्रोक्त विधिके अनुसार

गिरिराजकुमारी पार्वतीदेवीके साथ अपने विवाहका कार्य कराइये। हर! आपके द्वारा विवाहकी विधिका सम्पादन होनेपर वही लोकमें सर्वत्र विख्यात हो जायगी, अतः नाथ! आप कुलधर्मके अनुसार प्रेमपूर्वक मण्डपस्थापन और नान्दीमुख श्राद्ध कराइये तथा लोकमें अपने यशका विस्तार कीजिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! भगवान् विष्णुके ऐसा कहनेपर लोकाचारपरायण परमेश्वर शम्भुने विधिपूर्वक सब कार्य किया। उन्होंने सारा आभ्युदयिक कार्य करानेके लिये मुझको ही अधिकार दे दिया था। अतः वहाँ मुनियोंको साथ ले मैंने आदर और प्रसन्नताके साथ वह सब कार्य सम्पन्न किया। महामुने! उस समय कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, गौतम, भागुरि, गुरु, कण्व, बृहस्पति, शक्ति, जमदग्नि, पराशर, मार्कण्डेय, शिलापाक, अरुणपाल, अकृतश्रम, अगस्त्य, च्यवन, गर्ग, शिलाद, दधीचि, उपमन्यु, भरद्वाज, अकृतव्रण, पिप्पलाद, कुशिक, कौत्स तथा शिष्यों-सहित व्यास—ये और दूसरे बहुत-से ऋषि जो भगवान् शिवके समीप आये थे, मेरी प्रेरणासे विधिपूर्वक वहाँ आभ्युदयिक कर्म कराने लगे। वे सब-के-सब वेदोंके पारंगत विद्वान् थे। अतः वेदोक्त विधिसे वैवाहिक मङ्गलाचार करके ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके विविध उत्तम सूक्तोंद्वारा महेश्वरकी रक्षा करने लगे। उन सब ऋषियोंने बड़ी प्रसन्नताके साथ बहुत-से मङ्गलकार्य कराये। मेरी और शम्भुकी प्रेरणासे उन्होंने विघ्नोंकी शान्तिके लिये प्रीतिपूर्वक ग्रहोंका और समस्त मण्डलवर्ती देवताओंका पूजन किया। वह सब लौकिक, वैदिक कर्म यथोचित रीतिसे करके भगवान् शिव बहुत संतुष्ट हुए और उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक ब्राह्मणोंको प्रणाम किया। तदनन्तर वे सर्वेश्वर महादेव देवताओं और ब्राह्मणोंको आगे करके उस गिरिश्रेष्ठ कैलाससे हर्षपूर्वक निकले। कैलाससे बाहर जाकर देवताओं और ब्राह्मणोंके साथ भगवान् शम्भु, जो नाना प्रकारकी लीलाएँ करनेवाले हैं, सानन्द खड़े हो गये। उस समय वहाँ महेश्वरके संतोषके लिये देवता आदिने मिलकर बहुत बड़ा उत्सव मनाया। बाजे बजे तथा गान और नृत्य हुए।

(अध्याय ३९)

☆

भगवान् शिवका बारात लेकर हिमालयपुरीकी ओर प्रस्थान

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! तदनन्तर भगवान् शम्भुने नन्दी आदि सब गणोंको अपने साथ हिमवत्पुरीको चलनेकी प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा देते हुए कहा—'तुमलोग थोड़े-से गणोंको यहाँ रखकर शेष सभी लोग मेरे साथ बड़े उत्साह और आनन्दसे युक्त हो गिरिराज हिमवान्के नगरको चलो।' फिर तो भगवान्की आज्ञा पाकर गणेश्वर शङ्कुकर्ण, केकराक्ष, विकृत, विशाख, पारिजात, विकृतानन, दुन्दुभ, कपाल, संदारक, कन्दुक, कुण्डक, विष्टम्भ, पिप्पल, सनादक, आवेशन, कुण्ड, पर्वतक, चन्द्रतापन, काल, कालक, महाकाल, अग्निक, अग्निमुख, आदित्यमूर्द्धा, घनावह,

संनाह, कुमुद, अमोघ, कोकिल, सुमन्त्र, काकपादोदर, संतानक, मधुपिङ्ग, कोकिल, पूर्णभद्र, नील, चतुर्वक्त्र, करण, अहिरोमक, यज्ञाक्ष, शतमन्यु, मेघमन्यु, काष्ठागूढ, विरूपाक्ष, सुकेश, वृषभ, सनातन, तालकेतु, षण्मुख, चैत्र, स्वयम्प्रभु, लकुलीश, लोकान्तक, दीप्तात्मा, दैत्यान्तक, भृङ्गिरिटि, देवदेवप्रिय, अशनि, भानुक, प्रमथ तथा वीरभद्र अपने असंख्य कोटि-कोटि गणों तथा भूतोंको साथ लेकर चले। नन्दी आदि गणराज असंख्य गणोंसे घिरे चले तथा क्षेत्रपाल और भैरव भी कोटि-कोटि गणोंको लेकर उत्सव मनाते हुए प्रेम और उत्साहके साथ चल पड़े। वे सब सहस्र हाथोंसे युक्त थे। सिरपर जटाका मुकुट धारण किये हुए थे। उन सबके मस्तकपर चन्द्रमा और गलेमें नील चिह्न थे तथा वे सब-के-सब त्रिनेत्रधारी थे। उन सबने रुद्राक्षके आभूषण पहन रखे थे। सभी उत्तम भस्म धारण किये थे और हार, कुण्डल, केयूर तथा मुकुट आदिसे अलंकृत थे। इस प्रकार देवताओं तथा दूसरे-दूसरे गणोंको साथ ले भगवान् शंकर अपने विवाहके लिये हिमवान्‌के नगरकी ओर चले। चण्डीदेवी रुद्रदेवकी बहिन बनकर खूब उत्सव मनाती हुई बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ आ पहुँचीं। वे शत्रुओंको अत्यन्त भय देनेवाली थीं। उन्होंने साँपोंके आभूषणसे अपनेको विभूषित कर रखा था। उनका वाहन प्रेत था। वे उसीपर आरूढ़ हो अपने माथेपर एक सोनेका भरा हुआ कलश लिये चल रही थीं। वह कलश महान् प्रभापुञ्जसे प्रकाशित हो रहा था।

मुने! वहाँ करोड़ों दिव्य भूतगण शोभा पाते थे, जिनका रूप विकराल था। उनके रूप-रंग भी अनेक प्रकारके थे। उस समय डमरुओंके डिम-डिम घोषसे, भेरियोंकी गड़गड़ाहटसे और शङ्खोंके गम्भीर नादसे तीनों लोक गूँज उठे थे। दुन्दुभियोंकी ध्वनिसे महान् कोलाहल हो रहा था। वह जगत्‌का मङ्गल करता हुआ अमङ्गलका नाश करता था। देवता लोग शिवगणोंके पीछे होकर बड़ी उत्सुकताके साथ बारातका अनुसरण करते थे। सम्पूर्ण सिद्ध और लोकपाल आदि भी देवताओंके साथ थे। देवमण्डलीके मध्यभागमें गरुड़के आसनपर बैठकर लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु चल रहे थे। मुने! उनके ऊपर महान् छत्र तना हुआ था, जो उनकी शोभा बढ़ाता था। उनपर चँवर डुलाये जा रहे थे और वे अपने गणोंसे घिरे हुए थे। उनके शोभाशाली पार्षदोंने उन्हें अपने ढंगसे आभूषण आदिके द्वारा विभूषित किया था। इसी प्रकार मैं भी मूर्तिमान् वेदों, शास्त्रों, पुराणों, आगमों, सनकादि महासिद्धों, प्रजापतियों, पुत्रों तथा अन्यान्य परिजनोंके साथ मार्गमें चलता हुआ बड़ी शोभा पा रहा था और शिवकी सेवामें तत्पर था। देवराज इन्द्र भी नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित हो ऐरावत हाथीपर आरूढ़ होकर अपने सेनाके बीचसे चलते हुए अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे। उस समय बारातके साथ यात्रा करते हुए बहुतसे ऋषि भी अपने तेजसे प्रकाशित हो रहे थे। वे शिवजीका विवाह देखनेके लिये बहुत उत्कण्ठित थे। शाकिनी, यातुधान, बेताल, ब्रह्मराक्षस, भूत, प्रेत, पिशाच, प्रमथ आदि गण; तुम्बुरु, नारद, हाहा और हूहू आदि श्रेष्ठ गन्धर्व तथा किंनर भी बड़े हर्षसे भरकर

बाजा बजाते हुए चले। सम्पूर्ण जगन्मातएँ, सारी देवकन्याएँ, गायत्री, सावित्री, लक्ष्मी और अन्य देवाङ्गनाएँ—ये तथा दूसरी देवपत्नियाँ जो सम्पूर्ण जगत्की माताएँ हैं, शंकरजीका विवाह है, यह सोचकर बड़ी प्रसन्नताके साथ उसमें सम्मिलित होनेके लिये गयीं। वेदों, शास्त्रों, सिद्धों और महर्षियोंद्वारा जो साक्षात् धर्मका स्वरूप कहा गया है तथा जिसकी अङ्गकान्ति शुद्ध स्फटिकके समान उज्ज्वल है, वह सर्वाङ्ग-सुन्दर वृषभ भगवान् शिवका वाहन है। धर्मवत्सल महादेवजी उस वृषभपर आरूढ हो सबके साथ यात्रा करते हुए बड़ी शोभा पा रहे थे। देवर्षियोंके समुदाय उनकी सेवामें उपस्थित थे। इन सब देवताओं और महर्षियोंके एकत्र हुए समुदायसे महेश्वरकी बड़ी शोभा हो रही थी। उनका बहुत शृङ्गार किया गया था। वे शिवाका पाणिग्रहण करनेके लिये हिमालयके भवनको जा रहे थे। नारद! इस प्रकार बारातकी यात्रा-सम्बन्धी उत्तम उत्सवसे युक्त शम्भुका चरित्र कहा गया। अब हिमालयनगरमें जो सुन्दर वृत्तान्त घटित हुआ, उसे सुनो।

(अध्याय ४०)

☆

हिमवान्द्वारा शिवकी बारातकी अगवानी तथा सबका अभिनन्दन एवं वन्दन, मेनाका नारदजीको बुलाकर उनसे बरातियोंका परिचय पाना तथा शिव और उनके गणोंको देखकर भयसे मूर्च्छित होना

ब्रह्माजी कहते हैं—तदनन्तर भगवान् शिवने नारदजीको हिमाचलके घर भेजा। वे वहाँकी विलक्षण सजावट देखकर दंग रह गये। विश्वकर्माने जो विष्णु, ब्रह्मा आदि समस्त देवताओं तथा नारद आदि ऋषियोंकी चेतन-सी प्रतीत होनेवाली मूर्तियाँ बनायी थीं, उन्हें देखकर देवर्षि नारद चकित हो उठे। तत्पश्चात् हिमाचलने देवर्षिको बारात बुला लानेके लिये भेजा। साथ ही उस बारातकी अगवानीके लिये मैनाक आदि पर्वत भी गये। तदनन्तर विष्णु आदि देवताओं तथा आनन्दित हुए अपने गणोंके साथ भगवान् शिव हिमालयनगरके समीप सानन्द आ पहुँचे।

गिरिराज हिमवान्ने जब यह सुना कि सर्वव्यापी शंकर मेरे नगरके निकट आ पहुँचे हैं, तब उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। तदनन्तर उन्होंने बहुत-सा सामान एकत्र करके पर्वतों और ब्राह्मणोंको महादेवजीके साथ वार्तालाप करनेके लिये भेजा। स्वयं भी बड़ी भक्तिके साथ वे प्राणप्यारे महेश्वरका दर्शन करनेके लिये गये। उस समय उनका हृदय अधिक प्रेमके कारण द्रवित हो रहा था और वे प्रसन्नतापूर्वक अपने सौभाग्यकी सराहना करते थे। उस समय समस्त देवताओंकी सेनाको उपस्थित देख हिमवान्को बड़ा विस्मय हुआ और वे अपनेको धन्य मानते हुए उनके सामने गये। देवता और पर्वत एक-दूसरेसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुए और अपने-आपको कृतकृत्य मानने लगे। महादेवजीको सामने देखकर हिमालयने उन्हें प्रणाम किया। साथ ही समस्त पर्वतों और ब्राह्मणोंने भी सदाशिवकी वन्दना की। वे वृषभपर

आरूढ़ थे। उनके मुखपर प्रसन्नता छा रही थी। वे नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित थे और अपने दिव्य अङ्गोंके लावण्यसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित कर रहे थे। उनका श्रीअङ्ग अत्यन्त महीन, नूतन और सुन्दर रेशमी वस्त्रसे सुशोभित था। उनके मस्तकका मुकुट उत्तम रत्नोंसे जटित होनेके कारण बड़ी शोभा पा रहा था। वे अपनी पावन प्रभाका प्रसार करते हुए हँस रहे थे। उनका प्रत्येक अङ्ग भूषण बने हुए सर्पोंसे युक्त था तथा उनकी अङ्गकान्ति बड़ी अद्भुत दिखायी देती थी। दिव्य कान्तिसे सम्पन्न उन महेश्वरकी सुरेश्वरगण हाथमें चँवर लिये सेवा कर रहे थे। उनके बायें भागमें भगवान् विष्णु थे और दाहिने भागमें मैं था। पीछे देवराज इन्द्र थे और अन्य देवता आदि भी पीछे तथा अगल-बगलमें विद्यमान थे। नाना प्रकारके देवता आदि उन लोक-कल्याणकारी भगवान् शंकरकी स्तुति करते जाते थे। उन्होंने स्वेच्छासे ही दिव्य शरीर धारण कर रखा था। वास्तवमें वे साक्षात् परब्रह्म परमात्मा, सबके ईश्वर, उपासकोंको मनोवाञ्छित वर देनेवाले, कल्याणमय गुणोंसे युक्त, प्राकृत गुणोंसे रहित, भक्तोंके अधीन रहनेवाले, सबपर कृपा करनेवाले, प्रकृति और पुरुषसे भी विलक्षण तथा सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। उनके दर्शनके पश्चात् हिपवान्‌ने भगवान् शिवके वामभागमें अच्युत श्रीहरिका दर्शन किया, जो नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित हो विनतानन्दन गरुड़की पीठपर विराजमान थे। मुने! भगवान्‌के दाहिने भागमें उन्होंने चार मुखोंसे युक्त, महाशोभाशाली तथा अपने परिवारसे संयुक्त मुझ ब्रह्माको देखा। भगवान् शिवके सदा ही अत्यन्त प्रिय इन दोनों देवेश्वरोंका दर्शन करके परिवारसहित गिरिराजने आदरपूर्वक प्रणाम किया।

इसी प्रकार भगवान् शिवके पीछे तथा अगल-बगलमें खड़े हुए दीप्तिमान् देवता आदिको भी देखकर गिरिराजने उन सबके सामने मस्तक झुकाया। तत्पश्चात् शिवकी आज्ञासे आगे होकर हिमवान् अपने नगरको गये। उनके साथ महादेवजी, भगवान् विष्णु तथा स्वयम्भू ब्रह्मा भी मुनियों और देवताओंसहित शीघ्रतापूर्वक चलने लगे। मुने! उस अवसरपर मेनाके मनमें भगवान् शिवके दर्शनकी इच्छा हुई। इसलिये उन्होंने तुमको बुलवाया। उस समय भगवान् शिवसे प्रेरित होकर उनका हार्दिक अभिप्राय पूर्ण करनेकी इच्छासे तुम वहाँ गये।

मेना तुम्हें प्रणाम करके बोलीं—मुने! गिरिजाके होनेवाले पतिको पहले मैं देखूँगी। शिवका कैसा रूप है, जिनके लिये मेरी बेटीने ऐसी उत्कृष्ट तपस्या की है।

तात! उस समय भगवान् शिव भी मेनाके भीतरके अहंकारको जानकर श्रीविष्णु और मुझसे अद्भुत लीला करते हुए बोले।

शिवने कहा—तात! आप दोनों मेरी आज्ञासे देवताओंसहित अलग-अलग होकर गिरिराजके द्वारपर चलिये। हम पीछेसे आयेंगे।

यह सुनकर भगवान् श्रीहरिने सब देवताओंको बुलाकर वैसा करनेके लिये कहा। शिवके चिन्तनमें तत्पर रहनेवाले समस्त देवताओंने शीघ्र वैसी ही व्यवस्था करके उत्सुकतापूर्वक वहाँसे पृथक्-पृथक् यात्रा की। मुने! मेना अपने सकानके

सबसे ऊपरी भवनमें तुम्हारे साथ खड़ी थीं। उस समय भगवान् विश्वेश्वरने अपनेको ऐसी वेष-भूषामें दिखाया, जिससे मेनाके हृदयको ठेस पहुँचे। सबसे पहले बारातके जुलूसमें विविध वाहनोंपर विराजित खूब सजे-धजे बाजे-गाजेके साथ पताकाएँ फहराते हुए वसु आदि गन्धर्व आये; फिर मणिग्रीवादि यक्ष, तदनन्तर क्रमसे यमराज, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, देवराज इन्द्र, चन्द्रमा, सूर्य, भृगु आदि मुनीश्वर तथा ब्रह्मा आये। ये सब उत्तरोत्तर एक-से-एक विशेष सुन्दर शोभामय रूप-गुणसे सम्पन्न थे। इनमेंसे प्रत्येक दलके स्वामीको देखकर मेना पूछती थी कि 'क्या ये ही शिव हैं?' नारदजी कहते—'यह तो शिवके सेवक हैं।' मेना यह सुनकर बड़ी प्रसन्न होतीं और हर्षमें भरकर मन-ही-मन कहतीं—ये उनके सेवक ही जब इतने सुन्दर हैं, तब वे सबके स्वामी शिव तो पता नहीं कितने सुन्दर होंगे।

इसी बीचमें वहाँ भगवान् विष्णु पधारे। वे सम्पूर्ण शोभासे सम्पन्न श्रीमान्, नूतन जलधरके समान श्याम तथा चार भुजाओंसे संयुक्त थे। उनका लावण्य करोड़ों कंदर्पोंको लज्जित कर रहा था। वे पीताम्बर धारण करके अपनी सहज प्रभासे प्रकाशित हो रहे थे। उनके सुन्दर नेत्र प्रफुल्ल कमलकी शोभाको छीने लेते थे। उनकी आकृतिसे शान्ति बरस रही थी। पक्षिराज गरुड़ उनके वाहन थे। शङ्ख, चक्र आदि लक्षणोंसे युक्त मुकुट आदिसे विभूषित, वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न धारण किये वे लक्ष्मीपति विष्णु अपने अप्रमेय प्रभापुञ्जसे प्रकाशमान थे। उन्हें देखते ही मेनाके नेत्र चकित हो गये। वे बड़े हर्षसे बोलीं—'अवश्य ये ही मेरी शिवाके पति साक्षात् भगवान् शिव हैं इसमें संशय नहीं है।'

मुने! तुम भी लीला करनेवाले ही ठहरे। अतः मेनाकी यह बात सुनकर उनसे बोले— 'देवि! ये शिवाके पति नहीं हैं, अपितु भगवान् केशव हरि हैं। भगवान् शंकरके सम्पूर्ण कार्योंके अधिकारी तथा उनके प्रिय हैं। पार्वतीके पति जो दूल्हा शिव हैं, उन्हें इनसे भी बढ़कर समझना चाहिये। उनकी शोभाका वर्णन मुझसे नहीं हो सकता। वे ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके अधिपति, सर्वेश्वर तथा स्वयम्प्रकाश परमात्मा हैं।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! तुम्हारी इस बातको सुनकर मेनाने उन शुभलक्षणा उमाको महान् धन-वैभवसे सम्पन्न, सौभाग्यवती तथा तीनों कुलोंके लिये सुखदायिनी माना। वे मुखपर प्रसन्नता लाकर प्रीतियुक्त हृदयसे अपने सर्वाधिक सौभाग्यका बारंबार वर्णन करती हुई बोलीं।

मेनाने कहा—इस समय मैं पार्वतीको जन्म देनेके कारण सर्वथा धन्य हो गयी। ये गिरीश्वर भी धन्य हैं तथा मेरा सब कुछ परम धन्य हो गया। जिन-जिन अत्यन्त तेजस्वी देवताओं और देवेश्वरोंका मैंने दर्शन किया है, इन सबके जो पति हैं, वे मेरी पुत्रीके पति होंगे। उसके सौभाग्यका क्या वर्णन किया जाय? भगवान् शिवको पतिरूपमें पानेके कारण पार्वतीके सौभाग्यका सौ वर्षोंमें भी वर्णन नहीं किया जा सकता।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! मेनाने प्रेमपूर्ण हृदयसे ज्यों ही उपर्युक्त बात कही,

त्यों ही अद्भुत लीला करनेवाले भगवान् रुद्र सामने आ गये। तात! उनके सभी गण अद्भुत तथा मेनाके अहंकारको चूर्ण करनेवाले थे। भगवान् शिव अपने-आपको मायासे निर्लिप्त एवं निर्विकार दिखाते हुए वहाँ आये। मुने! उन्हें आया जान तुमने मेनाको शिवाके पतिका दर्शन कराते हुए उनसे इस प्रकार कहा—'सुन्दरि! देखो, ये साक्षात् भगवान् शंकर हैं, जिनकी प्राप्तिके लिये शिवाने वनमें बड़ी भारी तपस्या की थी।'

तुम्हारे ऐसा कहनेपर मेनाने बड़ी प्रसन्नताके साथ अद्भुत आकारवाले भगवान् महेश्वरकी ओर देखा। वे स्वयं तो अद्भुत थे ही, उनके अनुचर भी बड़े अद्भुत थे। इतनेमें ही रुद्रदेवकी परम अद्भुत सेना भी आ पहुँची, जो भूत-प्रेत आदिसे संयुक्त तथा नाना गणोंसे सम्पन्न थी। उनमेंसे कितने ही बवंडरका रूप धारण करके आये थे। कितने ही पताकाकी मर्मरध्वनिके समान शब्द करते थे। किन्हींके मुँह टेढ़े थे तो कोई अत्यन्त कुरूप दिखायी देते थे। कुछ बड़े विकराल थे। किन्हींका मुँह दाढ़ी-मूँछसे भरा हुआ था। कोई लँगड़े थे तो कोई अंधे। कोई दण्ड और पाश धारण किये हुए थे तो किन्हींके हाथोंमें मुद्गर थे। कितने ही अपने वाहनोंको उलटे चला रहे थे। कोई सींग, कोई डमरू और कोई गोमुख बजाते थे, गणोंमेंसे कितनेके तो मुँह ही नहीं थे। कितनोंके मुख पीठकी ओर लगे थे और बहुतोंके बहुतेरे मुख थे। इसी तरह कोई बिना हाथके थे। किन्हींके हाथ उलटे लग रहे थे और कितनोंके बहुत-से हाथ थे। कितने ही नेत्रहीन थे, किन्हींके बहुत-से नेत्र थे। किन्हींके सिर ही नहीं थे और किन्हींके बहुत खराब सिर थे, किन्हींके कान ही नहीं थे और किन्हींके बहुत-से कान थे। इस तरह सभी गण नाना प्रकारकी वेश-भूषा धारण किये हुए थे। तात! ये विकृत आकारवाले अनेक प्रबल गण बड़े वीर और भयंकर थे। उनकी कोई संख्या नहीं थी। मुने! तुमने अँगुलीद्वारा रुद्रगणोंको दिखाते हुए मेनासे कहा—'वरानने! तुम पहले भगवान् हरके सेवकोंको देखो, फिर उनका भी दर्शन करना।' उन असंख्य भूत-प्रेत आदि गणोंको देखकर मेना तत्काल भयसे व्याकुल हो गयीं। उन्हींके बीचमें भगवान् शंकर भी थे, जो निर्गुण होते हुए भी परम गुणवान् थे। वे वृषभपर सवार थे। उनके पाँच मुख थे और प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र। उनके सारे अङ्गोंमें विभूति लगी हुई थी, जो उनके लिये भूषणका काम देती थी। मस्तकपर जटाजूट और चन्द्रमाका मुकुट, दस हाथ और उनमेंसे एकमें कपाल लिये, शरीरपर बाघंबरका दुपट्टा और हाथमें पिनाक एवं त्रिशूल, आँखें भयानक, आकृति विकराल और हाथीकी खालका वस्त्र! यह सब देखकर शिवाकी माता बहुत डर गयीं, चकित हो गयीं, व्याकुल होकर काँपने लगीं और उनकी बुद्धि चकरा गयी। उस अवस्थामें तुमने अँगुलीसे दिखाते हुए उनसे कहा—'ये ही हैं भगवान् शिव।' तुम्हारी यह बात सुनकर सती मेना दुःखसे

भर गयीं और हवाके झोंके खाकर गिरी हुई लताके समान तुरंत भूमिपर गिर पड़ीं। 'यह कैसा विकृत दृश्य है ? मैं दुराग्रहमें पड़कर ठगी गयी।' यों कहकर मेना उसी क्षण मूर्च्छित हो गयीं। तदनन्तर सखियोंने जब नाना प्रकारके उपाय करके उनकी समुचित सेवा की, तब गिरिराजप्रिया मेना धीरे-धीरे होशमें आयीं। (अध्याय ४१—४३)

☆

मेनाका विलाप, शिवके साथ कन्याका विवाह न करनेका हठ, देवताओं तथा श्रीविष्णुका उन्हें समझाना तथा उनका सुन्दर रूप धारण करनेपर ही शिवको कन्या देनेका विचार प्रकट करना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! जब हिमाचलप्रिया सती मेनाको चेत हुआ, तब वे अत्यन्त क्षुब्ध होकर विलाप एवं तिरस्कार करने लगीं। पहले तो उन्होंने अपने पुत्रोंकी निन्दा की, इसके बाद वे तुम्हें और अपनी पुत्रीको दुर्वचन सुनाने लगीं।

मेना बोलीं—मुने ! पहले तो तुमने यह कहा कि 'शिवा शिवका वरण करेगी', पीछे मेरे पति हिमवान्‌का कर्तव्य बताकर उन्हें आराधना-पूजामें लगाया। परंतु इसका यथार्थ फल क्या देखा गया ? विपरीत एवं अनर्थकारी ! दुर्बुद्धि देवर्षे ! तुमने मुझ अधम नारीको सब तरहसे ठग लिया। फिर मेरी बेटीने ऐसा तप किया, जो मुनियोंके लिये भी दुष्कर है; उसकी उस तपस्याका यह फल मिला, जो देखनेवालोंको भी दुःखमें डालता है। हाय ! मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कौन मेरे दुःखको दूर करेगा ? मेरा कुल आदि नष्ट हो गया, मेरे जीवनका भी नाश हो गया। कहाँ गये वे दिव्य ऋषि ? पाऊँ तो मैं उनकी दाढ़ी-मूँछ नोच लूँ। वसिष्ठकी वह तपस्विनी पत्नी भी बड़ी धूर्ता है, वह स्वयं इस विवाहके लिये अगुआ बनकर आयी थी। न जाने किन-किनके अपराधसे इस समय मेरा सब कुछ लुट गया।

ऐसा कहकर मेना अपनी पुत्री शिवाकी ओर देखकर उन्हें कटुवचन सुनाने लगीं—'अरी दुष्ट लड़की ! तूने यह कौन-सा कर्म किया, जो मेरे लिये दुःखदायक सिद्ध हुआ ? तुझ दुष्टाने स्वयं ही सोना देकर काँच खरीदा है, चन्दन छोड़कर अपने अङ्गोंमें कीचड़का ढेर पोत लिया ! हाय ! हाय ! हंसको उड़ाकर तूने पिंजड़ेमें कौआ पाल लिया। गङ्गाजलको दूर फेंककर कुएँका जल पीया। प्रकाश पानेकी इच्छासे सूर्यको छोड़कर यत्नपूर्वक जुगनूको पकड़ा। चावल छोड़कर भूसी खा ली। घी फेंककर मोमके तेलका आदरपूर्वक भोग लगाया। सिंहका आश्रय छोड़कर सियारका सेवन किया। ब्रह्मविद्या छोड़कर कुत्सित गाथाका श्रवण किया। बेटी ! तूने घरमें रखी हुई यशकी मङ्गलमयी विभूतिको दूर हटाकर चिताकी अमङ्गलमयी राख अपने पल्ले बाँध ली; क्योंकि समस्त श्रेष्ठ देवताओं और विष्णु आदि परमेश्वरोंको छोड़कर अपनी कुबुद्धिके कारण शिवको पानेके लिये ऐसा तप किया ? तुझको, तेरी बुद्धिको, तेरे रूपको और तेरे चरित्रको भी बारंबार धिक्कार है। तुझे तपस्याका उपदेश देनेवाले नारदको तथा तेरी सहायता करनेवाली दोनों सखियोंको

भी धिक्कार है। बेटी ! हम दोनों माता-पिताको भी धिक्कार है, जिन्होंने तुझे जन्म

दिया। नारद ! तुम्हारी बुद्धिको भी धिक्कार है। सुबुद्धि देनेवाले उन सप्तर्षियोंको भी धिक्कार है। तुम्हारे कुलको धिक्कार है। तुम्हारी क्रिया-दक्षताको भी धिक्कार है तथा तुमने जो कुछ किया, उस सबको धिक्कार है। तुमने तो मेरा घर ही जला दिया। यह तो मेरा मरण ही है। ये पर्वतोंके राजा आज मेरे निकट न आयें। सप्तर्षि लोग स्वयं मुझे अपना मुँह न दिखायें। इन सबने मिलकर क्या साधा ? मेरे कुलका नाश करा दिया। हाय ! मैं बाँझ क्यों नहीं हो गयी ? मेरा गर्भ क्यों नहीं गल गया ? मैं अथवा मेरी पुत्री ही क्यों नहीं मर गयी ? अथवा राक्षस आदिने भी आकाशमें ले जाकर इसे क्यों नहीं खा डाला ? पार्वती ! आज मैं तेरा सिर काट डालूँगी, परंतु ये शरीरके टुकड़े लेकर क्या करूँगी ? हाय ! हाय ! तुझे छोड़कर कहाँ चली जाऊँ ? मेरा तो जीवन ही नष्ट हो गया !'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! यह कहकर मेना मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़ीं। शोक-रोष आदिसे व्याकुल होनेके कारण वे पतिके समीप नहीं गयीं। देवर्षे ! उस समय सब देवता क्रमशः उनके निकट गये। सबसे पहले मैं पहुँचा। मुनिश्रेष्ठ ! मुझे देखकर तुम स्वयं मेनासे बोले।

नारदने कहा—पतिव्रते ! तुम्हें पता नहीं है, वास्तवमें भगवान् शिवका रूप बड़ा सुन्दर है। उन्होंने लीलासे ऐसा रूप धारण कर लिया है, यह उनका यथार्थ रूप नहीं है। इसलिये तुम क्रोध छोड़कर स्वस्थ हो जाओ। हठ छोड़कर विवाहका कार्य करो और अपनी शिवाका हाथ शिवके हाथोंमें दे दो। तुम्हारी यह बात सुनकर मेना तुमसे बोलीं—'उठो, यहाँसे दूर चले जाओ। तुम दुष्टों और अधमोंके शिरोमणि हो।' मेनाके ऐसा कहनेपर मेरे साथ इन्द्र आदि सब देवता एवं दिक्पाल क्रमशः आकर यों बोले—'पितरोंकी कन्या मेने ! तुम हमारे वचनोंको प्रसन्नतापूर्वक सुनो। ये शिव निश्चय ही सबसे उत्कृष्ट देवता हैं और सबको उत्तम सुख देनेवाले हैं। आपकी पुत्रीके अत्यन्त दुस्सह तपको देखकर इन भक्तवत्सल प्रभुने कृपा-पूर्वक उन्हें दर्शन और श्रेष्ठ वर दिया था।'

यह सुनकर मेनाने देवताओंसे बारंबार अत्यन्त विलाप करके कहा—'शिवका रूप बड़ा भयंकर है, मैं उन्हें अपनी पुत्री नहीं दूँगी। आप सब देवता प्रपञ्च करके क्यों मेरी इस कन्याके उत्कृष्ट रूपको व्यर्थ करनेके लिये उद्यत हैं ?'

मुनीश्वर ! उनके ऐसा कहनेपर वसिष्ठ आदि सप्तर्षियोंने वहाँ आकर यह बात कही—'पितरोंकी कन्या तथा गिरिराजकी रानी मेने ! हमलोग तुम्हारा कार्य सिद्ध करनेके लिये आये हैं। जो कार्य सर्वथा उचित और उपयोगी है, उसे तुम्हारे हठके कारण हम विपरीत कैसे मान लें ? भगवान् शंकरका दर्शन सबसे बड़ा लाभ है। वे दानपात्र होकर स्वयं तुम्हारे घर पधारे हैं।'

उनके ऐसा कहनेपर भी ज्ञानदुर्बला मेनाने उनकी बात मिथ्या कर दी और रुष्ट होकर उनसे कहा—'मैं शस्त्र आदिसे अपनी बेटीके टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगी, परंतु उसे शंकरके हाथमें नहीं दूँगी, तुम सब लोग दूर हट जाओ, किसीको मेरे पास नहीं आना चाहिये।'

ऐसा कह अत्यन्त विह्वल हो विलाप करके मेना चुप हो गयीं। मुने ! तबतक उनके इस बर्तावसे हाहाकार मच गया। तब हिमालय अत्यन्त व्याकुल हो वहाँ आये और मेनाको समझानेके लिये प्रेमपूर्वक तत्त्व दर्शाते हुए बोले।

हिमालयने कहा—प्रिये मेने ! मेरी बात सुनो, तुम इतनी व्याकुल क्यों हो गयी ? देखो तो, कौन-कौन-से महात्मा तुम्हारे घर पधारे हैं। तुम इनकी निन्दा क्यों करती हो ? भगवान् शंकरको तुम भी जानती हो, किंतु नाना नामरूपवाले शम्भुके विकट रूपको देखकर घबरा गयी हो। मैं शंकरजीको भलीभाँति जानता हूँ। वे ही सबके प्रतिपालक हैं, पूजनीयोंके भी पूजनीय हैं तथा अनुग्रह एवं निग्रह करनेवाले हैं। निष्पाप प्राणप्रिये ! हठ न करो, मानसिक दुःख छोड़ो। सुव्रते ! शीघ्र उठो और सब कार्य करो। पहली बार विकट-रूपधारी शम्भुने मेरे द्वारपर आकर जो नाना प्रकारकी लीलाएँ की थीं, मैं उनका आज तुम्हें स्मरण दिला रहा हूँ। उनके उस परम माहात्म्यको देख और समझकर उस समय मैंने और तुमने उन्हें कन्या देना स्वीकार किया था। प्रिये ! अपनी उस बातको प्रमाण मानकर सार्थक करो।

इस बातको सुनकर शिवाकी माता मेना हिमालयसे बोलीं—नाथ ! मेरी बात सुनिये और सुनकर आपको वैसा ही करना चाहिये। आप अपनी पुत्री पार्वतीके गलेमें रस्सी बाँधकर इसे बेखटके पर्वतसे नीचे गिरा दीजिये, परंतु मैं इसे हरके हाथमें नहीं दूँगी। अथवा नाथ ! अपनी इस बेटीको ले जाकर निर्दयतापूर्वक समुद्रमें डुबा दीजिये। गिरिराज ! ऐसा करके आप पूर्ण सुखी हो जाइये। स्वामिन् ! यदि विकटरूपधारी

रुद्रको आप पुत्री दे देंगे तो मैं निश्चय ही अपना शरीर त्याग दूँगी।

मेनाने जब हठपूर्वक ऐसी बात कही, तब पार्वती स्वयं आकर यह रमणीय वचन बोलीं—'माँ! तुम्हारी बुद्धि तो बड़ी शुभकारक है। इस समय विपरीत कैसे हो गयी? धर्मका अवलम्बन करनेवाली होकर भी तुम धर्मको कैसे छोड़ रही हो? ये रुद्रदेव सबकी उत्पत्तिके कारणभूत साक्षात् ईश्वर हैं, इनसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है। समस्त श्रुतियोंमें यह वर्णन है कि भगवान् शम्भु सुन्दर रूपवाले तथा सुखद हैं। कल्याणकारी महेश्वर समस्त देवताओंके स्वामी तथा स्वयंप्रकाश हैं। इनके नाम और रूप अनेक हैं। माताजी! श्रीविष्णु और ब्रह्मा आदि भी इनकी सेवा करते हैं। ये सबके अधिष्ठान हैं, कर्ता, हर्ता और स्वामी हैं। विकारोंकी इनतक पहुँच नहीं है। ये तीनों देवताओंके स्वामी, अविनाशी एवं सनातन हैं। इनके लिये ही सब देवता किंकर होकर तुम्हारे द्वारपर पधारे हैं और उत्सव मना रहे हैं। इससे बढ़कर सुखकी बात और क्या हो सकती है। अतः यत्नपूर्वक उठो और जीवन सफल करो। मुझे शिवके हाथमें सौंप दो और अपने गृहस्थाश्रमको सार्थक करो। माँ! मुझे परमेश्वर शंकरकी सेवामें दे दो। मैं स्वयं तुमसे यह बात कहती हूँ। तुम मेरी इतनी-सी ही विनती मान लो। यदि तुम इनके हाथमें मुझे नहीं दोगी तो मैं दूसरे किसी वरका वरण नहीं करूँगी; क्योंकि जो सिंहका भाग है, उसे दूसरोंको ठगनेवाला सियार कैसे पा सकता है? माँ! मैंने मन, वाणी और क्रियाद्वारा स्वयं हरका वरण किया है, हरका ही वरण किया है। अब तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वह करो।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! पार्वतीकी यह बात सुनकर शैलेश्वरप्रिया मेना बहुत ही उत्तेजित हो गयीं और पार्वतीको डाँटती हुई दुर्वचन कहकर रोने तथा विलाप करने लगीं। तदनन्तर स्वयं मैंने तथा सनकादि सिद्धोंने भी मेनाको बहुत समझाया। परंतु वे किसीकी बात न मानकर सबको डाँटती रहीं। इसी बीचमें उनके सुदृढ़ एवं महान् हठकी बात सुनकर शिवप्रिय भगवान् विष्णु भी तुरंत वहाँ आ पहुँचे और इस प्रकार बोले।

श्रीविष्णुने कहा—देवि! तुम पितरोंकी मानसी पुत्री एवं उन्हें बहुत ही प्यारी हो; साथ ही गिरिराज हिमालयकी गुणवती पत्नी हो। इस प्रकार तुम्हारा सम्बन्ध साक्षात् ब्रह्माजीके उत्तम कुलसे है। संसारमें तुम्हारे सहायक भी ऐसे ही हैं। तुम धन्य हो। मैं तुमसे क्या कहूँ? तुम तो धर्मकी आधारभूता हो, फिर धर्मका त्याग कैसे करती हो? तुम्हीं अच्छी तरह सोचो तो सही। सम्पूर्ण देवता, ऋषि, ब्रह्माजी और मैं— सभी लोग विपरीत बात ही क्यों कहेंगे? तुम शिवको नहीं जानती। वे निर्गुण भी हैं और सगुण भी हैं। कुरूप भी हैं और सुरूप भी। सबके सेव्य तथा सत्पुरुषोंके आश्रय हैं। उन्होंने मूलप्रकृतिरूपा देवी ईश्वरीका निर्माण किया और उसके बगलमें पुरुषोत्तमका निर्माण करके बिठाया। उन्हीं दोनोंसे सगुण-रूपमें मेरी तथा ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई। फिर लोकोंका हित करनेके लिये वे स्वयं भी रुद्र-रूपसे प्रकट हुए। तदनन्तर वेद, देवता तथा स्थावर-जंगमरूपसे जो कुछ दिखायी देता है, वह सारा जगत् भी भगवान् शंकरसे ही

उत्पन्न हुआ। उनके रूपका ठीक-ठीक वर्णन अबतक कौन कर सका है? अथवा कौन उनके रूपको जानता है? मैंने और ब्रह्माजीने भी जिनका अन्त नहीं पाया, उनका पार दूसरा कौन पा सकता है? ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त जो कुछ जगत् दिखायी देता है, वह सब शिवका ही रूप है—ऐसा जानो। इस विषयमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। वे ही अपनी लीलासे ऐसे रूपमें अवतीर्ण हुए हैं और शिवाके तपके प्रभावसे तुम्हारे द्वारपर आये हैं। अतः हिमाचलकी पत्नी! तुम दुःख छोड़ो और शिवका भजन करो। इससे तुम्हें महान् आनन्द प्राप्त होगा और तुम्हारा सारा क्लेश मिट जायगा।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! श्रीविष्णुके द्वारा इस प्रकार समझायी जानेपर मेनाका मन कुछ कोमल हुआ। परंतु शिवको कन्या न देनेका हठ उन्होंने तब भी नहीं छोड़ा। शिवकी मायासे मोहित होनेके कारण ही उन्होंने ऐसा दुराग्रह किया था। उस समय मेनाने शिवके महत्त्वको स्वीकार कर लिया। कुछ ज्ञान हो जानेपर उन्होंने श्रीहरिसे कहा—'यदि भगवान् शिव सुन्दर शरीर धारण कर लें, तब मैं उन्हें अपनी पुत्री दे सकती हूँ; अन्यथा कोटि उपाय करनेपर भी नहीं दूँगी। यह बात मैं सचाई और दृढ़ताके साथ कह रही हूँ।'

ऐसा कहकर दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाली मेना शिवकी इच्छासे प्रेरित हो चुप हो गयीं। धन्य है शिवकी माया, जो सबको मोहमें डाल देती है! (अध्याय ४४)

☆

भगवान् शिवका अपने परम सुन्दर दिव्य रूपको प्रकट करना, मेनाकी प्रसन्नता और क्षमा-प्रार्थना तथा पुरवासिनी स्त्रियोंका शिवके रूपका दर्शन करके जन्म और जीवनको सफल मानना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! इसी समय भगवान् विष्णुसे प्रेरित हो तुम शीघ्र ही भगवान् शंकरको अनुकूल बनानेके लिये उनके निकट गये। वहाँ जाकर देवताओंका कार्य सिद्ध करनेकी इच्छासे नाना प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा तुमने स्वदेवको संतुष्ट किया। तुम्हारी बात सुनकर शम्भुने प्रसन्नतापूर्वक अद्भुत, उत्तम एवं दिव्य रूप धारण कर लिया। ऐसा करके उन्होंने अपने दयालु स्वभावका परिचय दिया। मुने! भगवान् शम्भुका वह स्वरूप कामदेवसे भी अधिक सुन्दर तथा लावण्यका परम आश्रय था; उसका दर्शन करके तुम बड़े प्रसन्न हुए और उस स्थानपर गये, जहाँ सबके साथ मेना विद्यमान थी।

वहाँ पहुँचकर तुमने कहा—विशाल नेत्रोंवाली मेने! भगवान् शिवके उस सर्वोत्तम रूपका दर्शन करो। यह रूप प्रकट करके उन करुणामय शिवने तुमपर बड़ी ही कृपा की है।

तुम्हारी यह बात सुनकर शैलराजकी पत्नी मेना आश्चर्यचकित हो गयीं। उन्होंने शिवके उस परमानन्ददायक रूपका दर्शन किया, जो करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी, सर्वाङ्गसुन्दर, विचित्र वस्त्रधारी तथा नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित था। वह अत्यन्त प्रसन्न, सुन्दर हास्यसे सुशोभित, ललित लावण्यसे लसित, मनोहर, गौरवर्ण,

द्युतिमान् तथा चन्द्रलेखासे अलंकृत था। विष्णु आदि सम्पूर्ण देवता बड़े प्रेमसे भगवान् शिवकी सेवा कर रहे थे। सूर्यदेवने

छत्र लगा रखा था। चन्द्रदेव मस्तकका मुकुट बनकर उनकी शोभा बढ़ा रहे थे। इन सब साधनोंसे भगवान् शंकर सर्वथा रमणीय जान पड़ते थे। उनका वाहन भी अनेक प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित था। उसकी महाशोभाका वर्णन नहीं हो सकता था। गङ्गा और यमुना भगवान् शिवको सुन्दर चँवर डुला रही थीं और आठों सिद्धियाँ उनके आगे नाच रही थीं। उस समय मैं, भगवान् विष्णु तथा इन्द्र आदि देवता अपने-अपने वेशको भलीभाँति विभूषित करके पर्वतवासी भगवान् शिवके साथ चल रहे थे। नानारूपधारी शिवके गण खूब सज-धजकर अत्यन्त आनन्दित हो शिवके आगे-आगे चल रहे थे। सिद्ध, उपदेवता, समस्त मुनि तथा अन्य सब लोग भी महान् सुखका अनुभव करते हुए अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक शिवके साथ यात्रा कर रहे थे। इस प्रकार देवता आदि सब लोग विवाह देखनेके लिये उत्कण्ठित हो खूब सज-धजकर अपनी पत्नियोंके साथ परब्रह्म शिवका यशोगान करते हुए जा रहे थे। विश्वावसु आदि गन्धर्व अप्सराओंके साथ हो शंकरजीके उत्तम यशका गान करते हुए उनके आगे-आगे चल रहे थे। मुनिश्रेष्ठ! महेश्वरके शैलराजके द्वारपर पधारते समय इस प्रकार वहाँ नाना प्रकारका महान् उत्सव हो रहा था। मुनीश्वर! उस समय वहाँ परमात्मा शिवकी जैसी शोभा हो रही थी, उसका विशेषरूपसे वर्णन करनेमें कौन समर्थ हो सकता है? उन्हें वैसे विलक्षण रूपमें देखकर मेना क्षणभरके लिये चित्रलिखी-सी रह गयीं। फिर बड़ी प्रसन्नताके साथ बोलीं—'महेश्वर! मेरी पुत्री धन्य है, जिसने बड़ा भारी तप किया और उस तपके प्रभावसे आप मेरे इस घरमें पधारे। पहले जो मैंने आप शिवकी अक्षम्य निन्दा की है, वैसे मेरी शिवाके स्वामी शिव! आप क्षमा करें और इस समय पूर्णतः प्रसन्न हो जायँ।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! इस प्रकार बात करके चन्द्रमौलि शिवकी स्तुति करती हुई शैलप्रिया मेनाने उन्हें हाथ जोड़ प्रणाम किया, फिर वे लज्जित हो गयीं। इतनेमें ही बहुत-सी पुरवासिनी स्त्रियाँ भगवान् शिवके दर्शनकी लालसासे अनेक प्रकारके काम छोड़कर वहाँ आ पहुँचीं। जो जैसे थीं, वैसे ही अस्त-व्यस्तरूपमें दौड़ आयीं। भगवान् शंकरका वह मनोहर रूप देखकर वे सब

मोहित हो गयीं। शिवके दर्शनसे हर्षको प्राप्त हो प्रेमपूर्ण हृदयवाली वे नारियाँ महेश्वरकी उस मूर्तिको अपने मनोमन्दिरमें बिठाकर इस प्रकार बोलीं।

पुरवासिनियोंने कहा—अहो! हिमवान्‌के नगरमें निवास करनेवाले लोगोंके नेत्र आज सफल हो गये। जिस-जिस व्यक्तिने इस दिव्य रूपका दर्शन किया है, निश्चय ही उसका जन्म सार्थक हो गया है। उसीका जन्म सफल है और उसीकी सारी क्रियाएँ सफल हैं, जिसने सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाले साक्षात् शिवका दर्शन किया है। पार्वतीने शिवके लिये जो तप किया है, उसके द्वारा उन्होंने अपना सारा मनोरथ सिद्ध कर लिया। शिवको पतिके रूपमें पाकर ये शिवा धन्य और कृतकृत्य हो गयीं। यदि विधाता शिवा और शिवकी इस युगल जोड़ीको सानन्द एक-दूसरेसे मिला न देते तो उनका सारा परिश्रम निष्फल हो जाता। इस उत्तम जोड़ीको मिलाकर ब्रह्माजीने बहुत अच्छा कार्य किया है। इससे सबके सभी कार्य सार्थक हो गये। तपस्याके बिना मनुष्योंके लिये शम्भुका दर्शन दुर्लभ है। भगवान् शंकरके दर्शनमात्रसे ही सब लोग कृतार्थ हो गये। जो-जो सर्वेश्वर गिरिजापति शंकरका दर्शन करते हैं, वे सारे पुरुष श्रेष्ठ हैं और हम सारी स्त्रियाँ भी धन्य हैं।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! ऐसी बात कहकर उन स्त्रियोंने चन्दन और अक्षतसे शिवका पूजन किया और बड़े आदरसे उनके ऊपर खीलोंकी वर्षा की। वे सब स्त्रियाँ मेनाके साथ उत्सुक होकर खड़ी रहीं और मेना तथा गिरिराजके भूरिभाग्यकी सराहना करती रहीं। मुने! स्त्रियोंके मुखसे वैसी शुभ बातें सुनकर विष्णु आदि सब देवताओंके साथ भगवान् शिवको बड़ा हर्ष हुआ। (अध्याय ४५)

☆

मेनाद्वारा द्वारपर भगवान् शिवका परिछन, उनके रूपको देखकर संतोषका अनुभव, अन्यान्य युवतियोंद्वारा वरकी प्रशंसा, पार्वतीका अम्बिका-पूजनके लिये बाहर निकलना तथा देवताओं और भगवान् शिवका उनके सुन्दर रूपको देखकर प्रसन्न होना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! तदनन्तर भगवान् शिव प्रसन्नचित्त हो अपने गणों, समस्त देवताओं तथा अन्य लोगोंके साथ कौतूहलपूर्वक गिरिराज हिमवान्‌के धाममें गये। हिमाचलकी श्रेष्ठ पत्नी मेना भी उन स्त्रियोंके साथ घरके भीतर गयीं और शम्भुकी आरती उतारनेके लिये हाथमें दीपकोंसे सजी हुई थाली लेकर सभी ऋषिपत्नियों तथा अन्य स्त्रियोंके साथ आदरपूर्वक द्वारपर आयीं। वहाँ आकर मेनाने सम्पूर्ण देवताओंसे सेवित गिरिजापति महेश्वर शंकरको, जो द्वारपर उपस्थित थे, बड़े प्यारसे देखा। उनकी अङ्गकान्ति मनोहर चम्पाके समान थी। उनके एक मुख और तीन नेत्र थे। प्रसन्न मुखारविन्दपर मन्द मुसकानकी छटा छा रही थी। वे रत्न और

सुवर्ण आदिसे विभूषित थे। गलेमें मालतीकी माला पहने हुए थे। सुन्दर रत्नमय मुकुट धारण करनेसे उनका मुखमण्डल उज्ज्वल प्रभासे उद्भासित हो रहा था। कण्ठमें हार आदि सुन्दर आभरण शोभा दे रहे थे। सुन्दर कड़े और बाजूबंद उनकी भुजाओंको विभूषित कर रहे थे। अग्निके समान निर्मल एवं अनुपम अत्यन्त सूक्ष्म, मनोहर, विचित्र एवं बहुमूल्य युगल वस्त्रसे उनकी बड़ी शोभा हो रही थी। चन्दन, अगर, कस्तूरी तथा मनोहर कुङ्कुमके अङ्गरागसे उनके अङ्ग विभूषित थे। उन्होंने हाथमें रत्नमय दर्पण ले रखा था और उनके दोनों नेत्र कज्जलसे सुशोभित थे। उन्होंने अपनी प्रभासे सबको आच्छादित कर लिया था तथा वे अत्यन्त मनोहर जान पड़ते थे। अत्यन्त तरुण, परम सुन्दर और आभरण-भूषित अङ्गोंसे सुशोभित थे। कामिनियोंको अत्यन्त कमनीय प्रतीत होते थे। उनमें व्यग्रताका अभाव था। उनका मुखारविन्द कोटि चन्द्रमाओंसे भी अधिक आह्लाद-दायक था। उनके श्रीअङ्गोंकी छवि कोटि कामदेवोंसे भी अधिक मनोहारिणी थी। वे अपने सभी अङ्गोंसे परम सुन्दर थे। ऐसे सुन्दर रूपवाले उत्कृष्टदेवता भगवान् शिवको जामाताके रूपमें अपने सामने खड़ा देख मेनाकी सारी शोक-चिन्ता दूर हो गयी। वे परमानन्दसिन्धुमें निमग्न हो गयीं और अपने भाग्यकी, गिरिजाकी, गिरिराज हिमवान्‌की और उनके समस्त कुलकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगीं। उन्होंने अपने-आपको कृतार्थ माना और वे बारंबार हर्षका अनुभव करने लगीं। सती मेनाका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा था। वे अपने दामादकी शोभाका सानन्द अवलोकन करती हुई उनकी आरती उतारने लगीं। गिरिजाकी कही हुई बातको बारंबार याद करके मेनाको बड़ा विस्मय हो रहा था। वे हर्षोत्फुल्ल मुखारविन्दसे युक्त हो मन-ही-मन यों कहने लगीं—'पार्वतीने मुझसे पहले जैसा बताया था, उससे भी अधिक सौन्दर्य मैं इन परमेश्वर शिवके अङ्गोंमें देख रही हूँ। महेश्वरका मनोहर लावण्य इस समय अवर्णनीय है।' ऐसा सोचकर आश्चर्य-चकित हुई मेना अपने घरके भीतर आयीं।

वहाँ आयी हुई युवतियोंने भी वरके मनोहर रूपकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। वे बोलीं—'गिरिराजनन्दिनी शिवा धन्य हैं, धन्य हैं।' कुछ कन्याएँ कहने लगीं—'दुर्गा तो साक्षात् भगवती हैं।' कुछ दूसरी कन्याएँ महारानी मेनासे बोलीं—'हमने तो कभी ऐसा वर नहीं देखा है और न कभी ध्यानमें ही ऐसे वरका अवलोकन किया है। इन्हें पाकर गिरिजा धन्य हो गयी।' भगवान् शंकरका वह रूप देखकर समस्त देवता हर्षसे खिल उठे। श्रेष्ठ गन्धर्व उनका यश गाने लगे और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। बाजा बजानेवाले लोग मधुर ध्वनिमें अनेक प्रकारकी कला दिखाते हुए आदरपूर्वक भाँति-भाँतिके बाजे बजा रहे थे। हिमाचलने भी आनन्दित होकर द्वारोचित मङ्गलाचार किया। समस्त नारियोंके साथ मेनाने भी महान् उत्सव मनाते हुए वरका परिछन किया। फिर वे प्रसन्नतापूर्वक घरमें चली गयीं। इसके बाद भगवान् शिव अपने गणों और देवताओंके साथ अपनेको दिये गये स्थान (जनवासे) में चले गये।

इसी बीचमें गिरिराजके अन्तःपुरकी

स्त्रियाँ दुर्गाको साथ ले कुलदेवीकी पूजाके लिये बाहर निकलीं। वहाँ देवताओंने, जिनकी पलकें कभी नहीं गिरती थीं, प्रसन्नतापूर्वक पार्वतीको देखा। उनकी अङ्गकान्ति नील अञ्जनके समान थी। वे अपने मनोहर अङ्गोंसे ही विभूषित थीं। उनका कटाक्ष केवल भगवान् त्रिलोचनपर ही आदरपूर्वक पड़ता था। दूसरे किसी पुरुषकी ओर उनके नेत्र नहीं जाते थे। उनका प्रसन्न-मुख मन्द मुसकानसे सुशोभित था। वे कटाक्षपूर्ण दृष्टिसे देखती थीं और बड़ी मनोहारिणी जान पड़ती थीं। उनके केशोंकी चोटी बड़ी ही सुन्दर थी। कपोलोंपर बनी हुई मनोहर पत्रभङ्गी उनकी शोभा बढ़ाती थी। ललाटमें कस्तूरीकी बेंदीके साथ ही सिन्दूरकी बिंदी शोभा दे रही थी। वक्षःस्थलपर श्रेष्ठ रत्नोंके सारभूत हारसे दिव्य दीप्ति छिटक रही थी। रत्नोंके बने हुए केयूर, वलय और कङ्कणसे उनकी भुजाएँ अलंकृत थीं। उत्तम रत्नमय कुण्डलोंसे उनके मनोहर कपोल जगमगा रहे थे। उनकी दन्तपंक्ति मणियों तथा रत्नोंकी प्रभाको छीने लेती थी और मुखकी शोभा बढ़ाती थी। मधुसे पूरित अधर और ओष्ठ बिम्बफलके समान लाल थे। दोनों पैरोंमें रत्नोंकी आभासे युक्त महावर शोभा देता था। उन्होंने अपने एक हाथमें रत्नजटित दर्पण ले रखा था और उनका दूसरा हाथ क्रीडाकमलसे सुशोभित था। उनके अङ्गोंमें चन्दन, अगर, कस्तूरी और कुङ्कुमका अङ्गराग लगा हुआ था। पैरोंमें पायजेब बज रहे थे और वे अपने लाल-लाल तलुओंके कारण बड़ी शोभा पा रही थीं। समस्त देवता आदिने जगत्‌की आदिकारणभूता जगज्जननी पार्वतीदेवीको देखकर भक्तिभावसे मस्तक झुका मैनासहित उन्हें प्रणाम किया। त्रिलोचन शिवने भी बड़ी प्रसन्नताके साथ कनखियोंसे उन्हें देखा और उनमें सतीकी आकृति देखकर अपनी विरह-वेदनाको त्याग दिया। शिवापर आँखें गड़ाकर भगवान् शिव उस समय सब कुछ भूल गये। उनके सारे अङ्गोंमें रोमाञ्च हो आया। वे हर्षका अनुभव करते हुए गौरीकी ओर देखने लगे। गौरी उनकी आँखोंमें समा गयी थीं।

इधर काली पुरीसे बाहर जाकर अम्बिकादेवीकी पूजा करनेके पश्चात् ब्राह्मणपत्नियोंके साथ पुनः अपने पिताके रमणीय भवनमें लौट आयीं। भगवान् शंकर भी मुझ ब्रह्मा, विष्णु तथा देवताओंके साथ हिमाचलके बताये हुए अपने नियत स्थानपर प्रसन्नतापूर्वक गये। वहाँ गिरिराजके द्वारा नाना प्रकारकी सुन्दर समृद्धिसे सम्मानित हुए वे सब लोग सुखपूर्वक ठहर गये और भगवान् शिवकी सेवा करने लगे।

(अध्याय ४६)

☆

वरपक्षके आभूषणोंसे विभूषित शिवाकी नीराजना, कन्यादानके समय वरके साथ सब देवताओंका हिमाचलके घरके आँगनमें विराजना तथा वरवधूके द्वारा एक-दूसरेका पूजन

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! तदनन्तर गिरिश्रेष्ठ हिमवान्‌ने प्रसन्नता और उत्साहके साथ वेदमन्त्रोंद्वारा दुर्गा और शिवका उपस्थान करवाया। तत्पश्चात् गिरिराजकी प्रार्थनासे

श्रीविष्णु आदि देवता तथा मुनि कौतूहलपूर्वक उनके घरके भीतर गये। वहाँ उन्होंने वैदिक और लौकिक आचारका यथार्थ रीतिसे पालन करके भगवान् शिवके दिये हुए आभूषणोंसे देवी शिवाको अलंकृत किया। सखियों और ब्राह्मणकी पत्नियोंने पहले पार्वतीको स्नान करवाया, फिर सब प्रकारसे वस्त्राभूषणों-द्वारा विभूषित करके उनकी आरती उतारी। तीनों लोकोंकी जननी महाशैलपुत्री सुन्दरी शिवा दिव्य वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर मन-ही-मन भगवान् शिवका ध्यान करती हुई वहीं बैठीं। उस समय उनकी बड़ी शोभा हो रही थी। उस अवसरपर दोनों पक्षोंमें महान् आनन्ददायक उत्सव होने लगा। ब्राह्मणोंको शास्त्रोक्त रीतिसे नाना प्रकारका दान दिया गया। अन्य लोगोंको भी वहाँ भाँति-भाँतिके बहुत-से द्रव्य बाँटे गये। विशेष उत्सवके साथ गीत और वाद्य आदिके द्वारा लोगोंका मनोरञ्जन किया गया। तदनन्तर मैं ब्रह्मा, भगवान् विष्णु, इन्द्र आदि देवता तथा मुनि—ये सब-के-सब बड़ी प्रसन्नताके साथ सानन्द उत्सव मनाते हुए भक्तिभावसे शिवाको प्रणामकर शिवके चरणारविन्दोंके चिन्तनपूर्वक हिमाचलकी आज्ञा ले अपने-अपने स्थानपर चले गये।

इसके बाद गर्गने कन्यादानका समय जान हिमाचलसे श्रीशंकर तथा बरातियोंको बुलानेके लिये कहा। फिर तो बाजे बजने लगे। हिमाचलके मन्त्रियोंने जाकर वर और बरातियोंसे शीघ्र पधारनेके लिये प्रार्थना की। वे बोले—'कन्यादानके लिये उचित समय आ गया है। अतः आप लोग शीघ्र मण्डपमें पधारें।' तदनन्तर भगवान् शिवको सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित करके वृषभकी पीठपर बिठाया गया और जय बोलते हुए सब लोग चले। भगवान् शंकरको आगे करके बाजे बजाते और कौतुक करते हुए सब बराती हिमालयके घरको गये। हिमाचलके भेजे हुए ब्राह्मण तथा श्रेष्ठ पर्वत कौतूहलपूर्वक शम्भुके आगे-आगे चलते थे। भगवान्‌के मस्तकपर बहुत बड़ा छत्र तना हुआ था। सब ओरसे उन्हें चँवर डुलाया जाता था तथा वे महेश्वर चँदोवेके नीचे होकर चलते थे। मैं, विष्णु, इन्द्र और लोकपाल आगे रहकर उत्तम शोभासे सुशोभित हो रहे थे। उस महान् उत्सवके समय शङ्ख, भेरी, पटह, आनक और गोमुख आदि बाजे बारंबार बज रहे थे। इन सबके साथ जगत्‌के एकमात्र जीवन-बन्धु भगवान् शिव परमेश्वरोचित तेजसे सम्पन्न हो यात्रा कर रहे थे। उस समय समस्त देवेश्वर उनकी सेवामें उपस्थित हो बड़े हर्षोल्लासके साथ उनपर फूलोंकी वर्षा करते थे। इस प्रकार पूजित और बहुत-सी स्तुतियोंद्वारा प्रशंसित हो परमेश्वर शिवने यज्ञमण्डपमें प्रवेश किया। वहाँ श्रेष्ठ पर्वतोंने शिवको वृषभसे उतारा और महान् उत्सवके साथ प्रेमपूर्वक उन्हें घरके भीतर ले गये। हिमालयने भी घरमें आये हुए देवताओं-सहित महेश्वरको विधिपूर्वक भक्ति-भावसे प्रणाम करके उनकी आरती उतारी। फिर महान् उत्सवपूर्वक अपने भाग्यकी सराहना करते हुए उन्होंने अन्य समस्त देवताओं और मुनियोंको प्रणाम करके उन सबका समादर किया। श्रीविष्णुसहित महेश्वरको तथा मुख्य-मुख्य देवताओंको पाद्य-अर्घ्य देकर हिमालय उन्हें अपने भवनके भीतर ले गये

और आँगनमें रत्नमय सिंहासनोंके ऊपर मुझको, विष्णुको, शंकरजीको तथा अन्य विशिष्ट व्यक्तियोंको बिठाया। उस समय मेनाने अपनी सखियों, ब्राह्मणपत्नियों तथा अन्य पुरन्ध्रियोंके साथ आकर सानन्द आरती उतारी। कर्मकाण्डके ज्ञाता पुरोहित महात्मा शंकरके लिये मधुपर्क-पूजन आदि जो-जो आवश्यक कृत्य थे, उन सबको सहर्ष सम्पन्न किया। फिर मेरे कहनेसे पुरोहितने प्रस्तावके अनुरूप उत्तम मङ्गलमय कार्य आरम्भ किया।

इसके बाद हिमालयने अन्तर्वेदीमें जहाँ समस्त आभूषणोंसे विभूषित उनकी कृशाङ्गी कन्या वेदीके ऊपर विराजमान थी, वहाँ मेरे और श्रीविष्णुके साथ महादेवजीको ले गये। तदनन्तर बृहस्पति आदि विद्वान् बड़े उत्साहसे सम्पन्न हो कन्यादानोचित लग्नकी प्रतीक्षा करने लगे। गर्गने पुण्याहवाचन करते हुए पार्वतीजीकी अञ्जलिमें चावल भरे और शिवजीके ऊपर अक्षत छोड़ा। परम उदार सुमुखी पार्वतीने दही, अक्षत, कुश और जलसे वहाँ रुद्रदेवका पूजन किया। जिनके लिये शिवाने बड़ी भारी तपस्या की थी, उन भगवान् शिवको बड़े प्रेमसे देखती हुई वे वहाँ अत्यन्त शोभा पा रही थीं। फिर मेरे और गर्गादि मुनियोंके कहनेसे शम्भुने लोकाचारवश शिवाका पूजन किया। इस प्रकार परस्पर पूजन करते हुए वे दोनों जगन्मय पार्वती-परमेश्वर वहाँ सुशोभित हो रहे थे। त्रिभुवनकी शोभासे सम्पन्न हो परस्पर देखते हुए उन दोनों दम्पतिकी लक्ष्मी आदि देवियोंने विशेषरूपसे आरती उतारी।

(अध्याय ४७)

☆

शिव-पार्वतीके विवाहका आरम्भ, हिमालयके द्वारा शिवके गोत्रके विषयमें प्रश्न होनेपर नारदजीके द्वारा उत्तर, हिमालयका कन्यादान करके शिवको दहेज देना तथा शिवाका अभिषेक

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! इसी समय वहाँ गर्गाचार्यसे प्रेरित हो मेनासहित हिमवान्‌ने कन्यादानका कार्य आरम्भ किया। उस समय वस्त्राभूषणोंसे विभूषित महाभागा मेना सोनेका कलश लिये पति हिमवान्‌के दाहिने भागमें बैठीं। तत्पश्चात् पुरोहितसहित हर्षसे भरे हुए शैलराजने पाद्य आदिके द्वारा वरका पूजन करके वस्त्र, चन्दन और आभूषणोंद्वारा उनका वरण किया। इसके बाद हिमाचलने ब्राह्मणोंसे कहा—'आपलोग तिथि आदिके कीर्तन-पूर्वक कन्यादानके संकल्पवाक्यका प्रयोग बोलें। उसके लिये अवसर आ गया है।' वे सब द्विजश्रेष्ठ कालके ज्ञाता थे। अतः 'तथास्तु' कहकर वे सब बड़ी प्रसन्नताके साथ तिथि आदिका कीर्तन करने लगे। तदनन्तर सुन्दर लीला करनेवाले परमेश्वर शम्भुके द्वारा मन-ही-मन प्रेरित हो हिमाचलने प्रसन्नतापूर्वक हँसकर उनसे कहा—'शम्भो ! आप अपने गोत्रका परिचय दें। प्रवर, कुल, नाम, वेद और शाखाका प्रतिपादन करें। अब अधिक समय न बितायें।'

हिमाचलकी यह बात सुनकर भगवान् शंकर सुमुख होकर भी विमुख हो गये। अशोचनीय होकर भी तत्काल शोचनीय

अवस्थामें पड़ गये। उस समय श्रेष्ठ देवताओं, मुनियों, गन्धर्वों, यक्षों और सिद्धोंने देखा कि भगवान् शिवके मुखसे कोई उत्तर नहीं निकल रहा है। नारद ! यह देखकर तुम हँसने लगे और महेश्वरका मन-ही-मन स्मरण करके गिरिराजसे यों बोले।

नारदने कहा—पर्वतराज ! तुम मूढ़ताके वशीभूत होकर कुछ भी नहीं जानते ! महेश्वरसे क्या कहना चाहिये और क्या नहीं, इसका तुम्हें पता नहीं है। वास्तवमें तुम बड़े बहिर्मुख हो। तुमने इस समय साक्षात् हरसे उनका गोत्र पूछा है और उसे बतानेके लिये उन्हें प्रेरित किया है। तुम्हारी यह बात अत्यन्त उपहासजनक है। पर्वतराज ! इनके गोत्र, कुल और नामको तो विष्णु और ब्रह्मा आदि भी नहीं जानते, फिर दूसरोंकी क्या चर्चा है ? शैलराज ! जिनके एक दिनमें करोड़ों ब्रह्माओंका लय होता है, उन्हीं भगवान् शंकरको तुमने आज कालीके तपोबलसे प्रत्यक्ष देखा है। इनका कोई रूप नहीं है, ये प्रकृतिसे परे निर्गुण, परब्रह्म परमात्मा हैं। निराकार, निर्विकार, मायाधीश एवं परात्पर हैं। गोत्र, कुल और नामसे रहित स्वतन्त्र परमेश्वर हैं। साथ ही अपने भक्तोंके प्रति बड़े दयालु हैं। भक्तोंकी इच्छासे ही ये निर्गुणसे सगुण हो जाते हैं, निराकार होते हुए भी सुन्दर शरीर धारण कर लेते हैं और अनामा होकर भी बहुत-से नामवाले हो जाते हैं। ये गोत्रहीन होकर भी उत्तम गोत्रवाले हैं, कुलहीन होकर भी कुलीन हैं, पार्वतीकी तपस्यासे ही ये आज तुम्हारे जामाता बन गये हैं, इसमें संशय नहीं है। गिरिश्रेष्ठ ! इन लीलाविहारी परमेश्वरने चराचर जगत्को मोहमें डाल रखा है। कोई कितना ही बुद्धिमान् क्यों न हो, वह भगवान् शिवको अच्छी तरह नहीं जानता।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! ऐसा कहकर शिवकी इच्छासे कार्य करनेवाले तुझ ज्ञानी देवर्षिने शैलराजको अपनी वाणीसे हर्ष प्रदान करते हुए फिर इस प्रकार उत्तर दिया।

नारद बोले—शिवाको जन्म देनेवाले तात महाशैल ! मेरी बात सुनो और उसे सुनकर अपनी पुत्री शंकरजीके हाथमें दे दो। लीलापूर्वक रूप धारण करनेवाले सगुण महेश्वरका गोत्र और कुल केवल नाद ही है, इस बातको अच्छी तरह समझ लो। शिव नादमय हैं और नाद शिवमय है—यह सर्वथा सची बात है। नाद और शिव—इन दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है। शैलेन्द्र ! सृष्टिके समय सबसे पहले लीलाके लिये सगुण रूप धारण करनेवाले शिवसे नाद ही प्रकट हुआ था। अतः वह सबसे उत्कृष्ट है। हिमालय ! इसीलिये मन-ही-मन सर्वेश्वर शंकरके द्वारा प्रेरित हो मैंने आज अभी वीणा बजाना आरम्भ कर दिया था।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! तुम्हारी यह बात सुनकर गिरिराज हिमालयको संतोष प्राप्त हुआ और उनके मनका सारा विस्मय जाता रहा। तदनन्तर श्रीविष्णु आदि देवता तथा मुनि सब-के-सब विस्मयरहित हो नारदको साधुवाद देने लगे। महेश्वरकी गम्भीरता जानकर सभी विद्वान् आश्चर्य-चकित हो बड़ी प्रसन्नताके साथ परस्पर बोले—'अहो ! जिनकी आज्ञासे इस विशाल जगत्का प्राकट्य हुआ है, जो परात्परतर, आत्मबोधस्वरूप, स्वतन्त्र लीला करनेवाले तथा उत्तम भावसे ही जाननेयोग्य हैं, उन त्रिलोकनाथ भगवान् शम्भुका आज

हमलोगोंने भलीभाँति दर्शन किया है।'

तदनन्तर हिमालयने विधिके द्वारा प्रेरित हो भगवान् शिवको अपनी कन्याका दान कर दिया। कन्यादान करते समय वे बोले—

इमां कन्यां तुभ्यमहं ददामि परमेश्वर।
भार्यार्थं परिगृह्णीष्व प्रसीद सकलेश्वर॥

'परमेश्वर! मैं अपनी यह कन्या आपको देता हूँ। आप इसे अपनी पत्नी बनानेके लिये ग्रहण करें! सर्वेश्वर! इस कन्यादानसे आप संतुष्ट हों।'

इस मन्त्रका उच्चारण करके हिमाचलने अपनी पुत्री त्रिलोकजननी पार्वतीको उन महान् देवता रुद्रके हाथमें दे दिया। इस प्रकार शिवाका हाथ शिवके हाथमें रखकर शैलराज मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए। उस समय वे अपने मनोरथके महासागरको पार कर गये थे। परमेश्वर महादेवजीने प्रसन्न हो वेदमन्त्रके उच्चारणपूर्वक गिरिजाके करकमलको शीघ्र अपने हाथमें ले लिया। मुने! लोकाचारके पालनकी आवश्यकता-को दिखाते हुए उन भगवान् शंकरने पृथ्वीका स्पर्श करके 'कोऽदात्' * इत्यादि रूपसे कामसम्बन्धी मन्त्रका पाठ किया। उस समय वहाँ सब ओर महान् आनन्द-दायक महोत्सव होने लगा। पृथ्वीधर, अन्तरिक्षमें तथा स्वर्गमें भी जय-जयकारका शब्द गूँजने लगा। सब लोग अत्यन्त हर्षसे भरकर साधुवाद देने और नमस्कार करने लगे। गन्धर्वगण प्रेमपूर्वक गाने लगे और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। हिमाचलके नगरके लोग भी अपने मनमें परम आनन्द-का अनुभव करने लगे। उस समय महान् उत्सवके साथ परम मङ्गल मनाया जाने लगा। मैं, विष्णु, इन्द्र, देवगण तथा सम्पूर्ण मुनि हर्षसे भर गये। हम सबके मुखारविन्द प्रसन्नतासे खिल उठे। तदनन्तर शैलराज हिमाचलने अत्यन्त प्रसन्न हो शिवके लिये कन्यादानकी यथोचित साङ्गता प्रदान की। तत्पश्चात् उनके बन्धुजनोंने भक्तिपूर्वक शिवाका पूजन करके नाना विधि-विधानसे भगवान् शिवको उत्तम द्रव्य समर्पित किया। हिमालयने दहेजमें अनेक प्रकारके द्रव्य, रत्न, पात्र, एक लाख सुसज्जित गौएँ, एक लाख सजे-सजाये घोड़े, करोड़ हाथी और उतने ही सुवर्णजटित रथ आदि वस्तुएँ दीं; इस प्रकार परमात्मा शिवको विधिपूर्वक अपनी पुत्री कल्याणमयी पार्वतीका दान करके हिमालय कृतार्थ हो गये। इसके बाद शैलराजने यजुर्वेदकी माध्यंदिनी शाखामें वर्णित स्तोत्रके द्वारा दोनों हाथ जोड़ प्रसन्नतापूर्वक उत्तम वाणीमें परमेश्वर शिवकी स्तुति की। तत्पश्चात् वेदवेत्ता हिमाचलके आज्ञा देनेपर मुनियोंने बड़े उत्साहके साथ शिवाके सिरपर अभिषेक किया और महादेवजीका नाम लेकर उस अभिषेककी विधि पूरी की। मुने! उस समय बड़ा आनन्ददायक महोत्सव हो रहा था।

(अध्याय ४८)

☆

* विवाहमें कन्या-प्रतिग्रहके पश्चात् वर इस ऋक्स्तुतिका पाठ करता है। पूरा मन्त्र इस प्रकार है—कोऽदात्कस्मा अदात्कामोऽदात्कामायादात्कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतत्ते। (शु० यजुर्वेदसंहिता ७। ४८)

शिवके विवाहका उपसंहार, उनके द्वारा दक्षिणा-वितरण, वर-वधूका कोहबर और वासभवनमें जाना, वहाँ स्त्रियोंका उनसे लोकाचारका पालन कराना, रतिकी प्रार्थनासे शिवद्वारा कामको जीवनदान एवं वर-प्रदान, वर-वधूका एक-दूसरेको मिष्टान्न भोजन कराना और शिवका जनवासेमें लौटना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! तदनन्तर मेरी आज्ञा पाकर महेश्वरने ब्राह्मणोंद्वारा अग्निकी स्थापना करवायी और पार्वतीको अपने आगे बिठाकर वहाँ ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदके मन्त्रोंद्वारा अग्निमें आहुतियाँ दीं। तात! उस समय कालीके भाई मैनाकने लावाकी अञ्जलि दी और काली तथा शिव दोनोंने आहुति देकर लोकाचारका आश्रय ले प्रसन्नतापूर्वक अग्निदेवकी परिक्रमा की।

नारद! तदनन्तर शिवकी आज्ञासे मुनियोंसहित मैंने शिवा-शिव-विवाहका शेष कार्य प्रसन्नतापूर्वक पूरा किया। फिर उन दोनों दम्पतिके मस्तकका अभिषेक हुआ। ब्राह्मणोंने उन्हें आदरपूर्वक ध्रुवका दर्शन कराया। तत्पश्चात् हृदयालम्भनका कार्य हुआ। फिर बड़े उत्साहके साथ स्वस्तिवाचन किया गया। इसके पश्चात् ब्राह्मणोंकी आज्ञासे शिवने शिवाके सिरमें सिन्दूरदान किया। उस समय गिरिराजनन्दिनी उमाकी शोभा अद्भुत और अवर्णनीय हो गयी। फिर ब्राह्मणोंके आदेशसे वे शिव-दम्पति एक आसनपर विराजमान हो भक्तोंके चित्तको आनन्द देनेवाली उत्तम शोभा पाने लगे। मुने! तदनन्तर अद्भुत लीला करनेवाले उन नवदम्पतिने मेरी आज्ञा पाकर अपने स्थानपर आ संस्रवप्राशन* किया। इस प्रकार विधिपूर्वक उस वैवाहिक यज्ञके पूर्ण हो जानेपर भगवान् शिवने मुझ लोकस्रष्टा ब्रह्माको पूर्णपात्र दान किया। फिर शम्भुने आचार्यको गोदान किया। मङ्गलदायक जो बड़े-बड़े दान बताये गये हैं, वे भी सहर्ष सम्पन्न किये। तत्पश्चात् उन्होंने बहुत-से ब्राह्मणोंको पृथक्-पृथक् सौ-सौ सुवर्ण मुद्राएँ दीं। करोड़ों रत्न दान किये और अनेक प्रकारके द्रव्य बाँटे। उस समय सब देवता तथा दूसरे-दूसरे चराचर जीव मनमें बड़े प्रसन्न हुए और जोर-जोरसे जय-जयकारकी ध्वनि होने लगी। सब ओर माङ्गलिक शब्द और गीत होने लगे। वाद्योंकी मनोहर ध्वनि सबके आनन्दको बढ़ाने लगी। इसके बाद श्रीविष्णु, मैं, देवता, ऋषि तथा अन्य सब लोग गिरिराजसे आज्ञा ले बड़ी प्रसन्नताके साथ शीघ्र ही अपने-अपने डेरेमें चले आये। उस समय हिमालयनगरकी स्त्रियाँ आनन्द-मग्न हो शिव और पार्वतीको लेकर कोहबरमें गयीं। वहाँ उन सबने आदरपूर्वक वर-वधूसे

---

* अग्निमें घीकी आहुति देकर खुवामें अवशिष्ट घृतको प्रोक्षणीपात्रमें डालनेकी विधि है। प्रत्येक आहुतिमें ऐसा किया जाता है। प्रोक्षणीपात्रमें डाले हुए घीको ही 'संस्रव' कहते हैं। अन्तमें यजमान उसे पीता है। इसीको 'संस्रवप्राशन' कहा गया है।

लोकाचारका सम्पादन कराया। उस समय सब ओर परमानन्ददायक महान् उत्साह छा रहा था। तदनन्तर वे स्त्रियाँ उन लोक-कल्याणकारी दम्पतिको साथ ले परम दिव्य वासभवन (कौतुकागार) में गयीं और वहाँ भी प्रसन्नतापूर्वक लोकाचारका सम्पादन किया। इसके बाद गिरिराजके नगरकी स्त्रियोंने समीप आकर मङ्गलकृत्य करके उन नवदम्पतिको केलिगृहमें पहुँचाया और जयध्वनि करती हुई उनके गँठबन्धनकी गाँठ खोलने आदिका कार्य सम्पन्न किया।

उस समय उन नूतन दम्पतिको देखनेके लिये सोलह दिव्य नारियाँ बड़े आदरके साथ शीघ्रतापूर्वक वहाँ आयीं। उनके नाम इस प्रकार हैं—सरस्वती, लक्ष्मी, सावित्री, गङ्गा, अदिति, शची, लोपामुद्रा, अरुन्धती, अहल्या, तुलसी, स्वाहा, रोहिणी, पृथिवी, शतरूपा, संज्ञा तथा रति। ये देवाङ्गनाएँ तथा मनोहारिणी देवकन्या, नागकन्या और मुनिकन्याएँ भी वहाँ आ पहुँचीं। वहाँ जितनी स्त्रियाँ उपस्थित थीं, उन सबकी गणना करनेमें कौन समर्थ है? उनके दिये हुए रत्नमय सिंहासनपर भगवान् शिव प्रसन्नतापूर्वक बैठे। उस समय उन्होंने शिवसे नाना प्रकारकी विनोदपूर्ण बातें कहीं। तदनन्तर प्रसन्नचित्त हुए महेश्वरने अपनी पत्नीके साथ मिष्टान्न भोजन और आचमन करके कपूर डाला हुआ पान खाया।

इसी अवसरपर अनुकूल समय जान प्रसन्न हुई रतिने दीनवत्सल भगवान् शंकरसे कहा—'भगवन्! पार्वतीका पाणिग्रहण करके आपने अत्यन्त दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त किया है। बताइये, मेरे प्राणनाथको, जो सर्वथा स्वार्थरहित थे, आपने क्यों भस्म कर डाला? अब यहाँ मेरे पतिको जीवित कीजिये और अपने अन्तःकरणमें काम-सम्बन्धी व्यापारको जगाइये। आपको और मुझको जो समानरूपसे वियोगजनित संताप प्राप्त हुआ है, उसे दूर कीजिये। महेश्वर! आपके इस विवाहोत्सवमें सब लोग सुखी हुए हैं। केवल मैं ही अपने पतिके बिना दुःखमें डूबी हुई हूँ। देव! शंकर! प्रसन्न होइये और मुझे सनाथ कीजिये। दीनबन्धो! परम प्रभो! अपनी कही हुई बातको सत्य कीजिये। चराचर प्राणियोंसहित तीनों लोकोंमें आपके सिवा दूसरा कौन है, जो मेरे दुःखका नाश करनेमें समर्थ हो? ऐसा जानकर आप मुझपर दया कीजिये। दीनोंपर दया करनेवाले नाथ! सबको आनन्द प्रदान करनेवाले अपने इस विवाहोत्सवमें मुझे भी उत्सवसम्पन्न बनाइये। मेरे प्राणनाथके

जीवित होनेपर ही आपनी प्रिया पार्वतीके साथ आपका सुन्दर विहार परिपूर्ण होगा। इसमें संशय नहीं है। सर्वेश्वर! आप सब कुछ करनेमें समर्थ हैं; क्योंकि आप ही परमेश्वर हैं। यहाँ अधिक कहनेसे क्या लाभ? सर्वेश्वर! आप शीघ्र मेरे पतिको जीवित कीजिये।'

ऐसा कहकर रतिने गाँठमें बँधा हुआ कामदेवके शरीरका भस्म शम्भुको दे दिया और उनके सामने 'हा नाथ! हा नाथ!' कहकर रोने लगी। रतिका रोदन सुनकर सरस्वती आदि सभी देवियाँ रोने लगीं और अत्यन्त दीन वाणीमें बोलीं—'प्रभो! आपका नाम भक्तवत्सल है। आप दीनबन्धु और दयाके सागर हैं। अतः कामको जीवनदान दीजिये और रतिको उत्साहित कीजिये। आपको नमस्कार है।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! उन सबकी यह बात सुनकर महेश्वर प्रसन्न हो गये। उन करुणासागर प्रभुने तत्काल ही रतिपर कृपा की। भगवान् शूलपाणिकी अमृतमयी दृष्टि पड़ते ही पहले-जैसे रूप, वेष और चिह्नसे युक्त अद्भुत मूर्तिधारी सुन्दर कामदेव उस भस्मसे प्रकट हो गया। अपने पतिको वैसे ही रूप, आकृति, मन्द मुस्कान और धनुष-बाणसे युक्त देख रतिने महेश्वरको प्रणाम किया। वह कृतार्थ हो गयी। उसने प्राणनाथकी प्राप्ति करानेवाले भगवान् शिवका अपने जीवित पतिके साथ हाथ जोड़कर बारंबार स्तवन किया। पत्नीसहित कामकी की हुई स्तुतिको सुनकर दयार्द्रहृदय भगवान् शंकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और इस प्रकार बोले।

शंकरने कहा—मनोभव! पत्नीसहित तुमने जो स्तुति की है, उससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। स्वयं प्रकट होनेवाले काम! तुम वर पाओ। मैं तुम्हें मनोवाञ्छित वस्तु दूँगा।

शम्भुका यह वचन सुनकर कामदेव महान् आनन्दमें निमग्न हो गया और हाथ जोड़ मस्तक झुकाकर गद्गद वाणीमें बोला।

कामदेवने कहा—देवदेव महादेव! करुणासागर प्रभो! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मेरे लिये आनन्ददायक होइये। प्रभो! पूर्वकालमें मैंने जो अपराध किया था, उसे क्षमा कीजिये। स्वजनोंके प्रति परम प्रेम और अपने चरणोंकी भक्ति दीजिये।

कामदेवका यह कथन सुनकर परमेश्वर शिव प्रसन्न हो बोले—'बहुत अच्छा!' इसके बाद उन करुणानिधिने हँसकर कहा—'महामते कामदेव! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम अपने मनसे भयको निकाल दो। भगवान् विष्णुके पास जाओ और इस घरसे बाहर ही रहो।'

तदनन्तर काम शिवजीको प्रणाम करके बाहर आ गया। विष्णु आदि देवताओंने उसे आशीर्वाद दिया। इसके बाद भगवान् शंकरने उस वासभवनमें पार्वतीको बायें बिठाकर मिष्टान्न भोजन कराया और पार्वतीने भी प्रसन्नतापूर्वक उनका मुँह मीठा किया। तदनन्तर वहाँ लोकाचारका पालन करते हुए आवश्यक कृत्य करके मेना और हिमवान्‌की आज्ञा ले भगवान् शिव जनवासेमें चले गये। मुने! उस समय महान् उत्सव हुआ और वेदमन्त्रोंकी ध्वनि होने लगी। लोग चारों प्रकारके[1] बाजे बजाने लगे। जनवासेमें अपने

---

१. अमरकोशमें जो चार प्रकारके बाजे बताये गये हैं, संसारके सभी प्राचीन अथवा अर्वाचीन बाजे उन्हींके अन्तर्गत हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—तत, आनद्ध, सुषिर और घन। 'तत' वह बाजा है, जिसमें

स्थानपर पहुँचकर शिवने लोकाचारवश मुनियोंको प्रणाम किया। श्रीहरिको और मुझे भी मस्तक झुकाया। फिर सब देवता आदिने उनकी वन्दना की। उस समय वहाँ जय-जयकार, नमस्कार तथा समस्त विघ्नोंका विनाश करनेवाली शुभदायिनी वेदध्वनि भी होने लगी। इसके बाद मैंने, भगवान् विष्णुने तथा इन्द्र, ऋषि और सिद्ध आदिने भी शंकरजीकी स्तुति की। गिरिजानायक महेश्वरकी स्तुति करके वे विष्णु आदि देवता प्रसन्नतापूर्वक उनकी यथोचित सेवामें लग गये। तत्पश्चात् लीलापूर्वक शरीर धारण करनेवाले महेश्वर शम्भुने उन सबको सम्मान दिया। फिर उन परमेश्वरकी आज्ञा पाकर वे विष्णु आदि देवता अत्यन्त प्रसन्न हो अपने-अपने विश्रामस्थानको गये।

(अध्याय ४९—५१)

☆

रातको परम सुन्दर सजे हुए वासगृहमें शयन करके प्रातःकाल भगवान् शिवका जनवासेमें आगमन

ब्रह्माजी कहते हैं—तात! तदनन्तर भाग्यवानोंमें श्रेष्ठ और चतुर गिरिराज हिमवान्‌ने बारातियोंको भोजन करानेके लिये अपने आँगनको सुन्दर ढंगसे सजाया तथा अपने पुत्रों एवं अन्यान्य पर्वतोंको भेजकर शिवसहित सब देवताओंको भोजनके लिये बुलाया। जब सब लोग आ गये, तब उनको बड़े आदरके साथ उत्तमोत्तम भोज्य पदार्थोंका भोजन कराया। भोजनके पश्चात् हाथ-मुँह धो, कुल्ला करके विष्णु आदि सब देवता विश्रामके लिये प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने डेरेमें गये। मेनाकी आज्ञासे साध्वी स्त्रियोंने भगवान् शिवसे भक्तिपूर्वक प्रार्थना करके उन्हें महान् उत्सवसे परिपूर्ण सुन्दर वासभवनमें ठहराया। मेनाके दिये हुए मनोहर रत्न-सिंहासनपर बैठकर आनन्दित हुए शम्भुने उस वासमन्दिरका निरीक्षण किया। वह भवन प्रज्वलित हुए सैकड़ों रत्नमय प्रदीपोंके कारण अद्भुत प्रभासे उद्भासित हो रहा था। वहाँ रत्नमय पात्र तथा रत्नोंके ही कलश रखे गये थे। मोती और मणियोंसे सारा भवन जगमगा रहा था। रत्नमय दर्पणकी शोभासे सम्पन्न तथा श्वेत चँवरोंसे अलंकृत था। मुक्तामणियोंकी सुन्दर मालाओं (बंदनवारों) से आवेष्टित हुआ वह वासभवन बड़ा समृद्धिशाली दिखायी देता था। उसकी कहीं उपमा नहीं थी। वह महादिव्य, अतिविचित्र, परम मनोहर तथा मनको आह्लाद प्रदान करनेवाला था। उसके फर्शपर नाना प्रकारकी रचनाएँ की गयी थीं—बेल-बूटे निकाले गये थे। शिवजीके दिये हुए वरका ही महान् एवं अनुपम प्रभाव

तारका विस्तार हो—जैसे वीणा, सितार आदि। जिसे चमड़ेसे मढ़कर कसा गया हो, वह 'आनद्ध' कहलाता है—जैसे ढोल, मृदंग, नगारा आदि। जिसमें छेद हो और उसमें हवा भरकर स्वर निकाला जाता हो, उसे 'सुषिर' कहते हैं—जैसे वंशी, शङ्ख, बिगुल, हारमोनियम आदि। काँसेके झाँझ आदिको 'घन' कहते हैं।

दिखाता हुआ वह शोभाशाली भवन शिवलोकके नामसे प्रसिद्ध किया गया था। नाना प्रकारके सुगन्धित श्रेष्ठ द्रव्योंसे सुवासित तथा सुन्दर प्रकाशसे परिपूर्ण था। वहाँ चन्दन और अगरकी सम्मिलित गन्ध फैल रही थी। उस भवनमें फूलोंकी सेज बिछी हुई थी। विश्वकर्माका बनाया हुआ वह भवन नाना प्रकारके विचित्र चित्रोंसे सुसज्जित था। श्रेष्ठ रत्नोंकी सारभूत मणियोंसे निर्मित सुन्दर हारोंद्वारा उस वासगृहको अलंकृत किया गया था। उसमें विश्वकर्माद्वारा निर्मित कृत्रिम वैकुण्ठ, ब्रह्मलोक, कैलास, इन्द्रभवन तथा शिवलोक आदि दीख रहे थे। ऐसे आश्चर्यजनक शोभासे सम्पन्न उस वासभवनको देखकर गिरिराज हिमालयकी प्रशंसा करते हुए भगवान् महेश्वर बहुत संतुष्ट हुए। वहाँ अति रमणीय रत्नजटित उत्तम पलंगपर परमेश्वर शिव बड़ी प्रसन्नतासे लीलापूर्वक सोये। इधर हिमालयने बड़ी प्रसन्नतासे अपने समस्त भाई-बन्धुओं एवं दूसरे लोगोंको भी भोजन कराया तथा जो कार्य शेष रह गये थे, उन्हें भी पूर्ण किया।

शैलराज हिमालय इस प्रकार आवश्यक कार्योंमें लगे हुए थे और प्रियतम परमेश्वर शिव शयन कर रहे थे। इतनेमें ही सारी रात बीत गयी और प्रातःकाल हो गया। प्रभातकाल होनेपर धैर्यवान् और उत्साही पुरुष नाना प्रकारके बाजे बजाने लगे। उस समय श्रीविष्णु आदि सब देवता सानन्द उठे और अपने इष्टदेव देवेश्वर शिवका स्मरण करके वहाँसे कैलासको चलनेके लिये जल्दी-जल्दी तैयार हो गये। उन्होंने अपने वाहन भी सुसज्जित कर लिये। तत्पश्चात् धर्मको शिवके समीप भेजा। योगशक्तिसे सम्पन्न धर्म नारायणकी आज्ञासे वासगृहमें पहुँचकर योगीश्वर शंकरसे समयोचित बात बोले—'प्रमथगणोंके स्वामी महेश्वर! उठिये, उठिये; आपका कल्याण हो। आप हमारे लिये भी कल्याणकारी होइये; जनवासेमें चलिये और वहाँ सब देवताओंको कृतार्थ कीजिये।'

धर्मकी यह बात सुनकर भगवान् महेश्वर हँसे। उन्होंने धर्मको कृपादृष्टिसे देखा और शय्या त्याग दी। इसके बाद धर्मसे हँसते हुए कहा—'तुम आगे चलो। मैं भी वहाँ शीघ्र ही आऊँगा, इसमें संशय नहीं है।'

भगवान् शिवके ऐसा कहनेपर धर्म जनवासेमें गये। तत्पश्चात् शम्भु भी स्वयं वहाँ जानेको उद्यत हुए। यह जानकर महान् उत्सव मनाती हुई स्त्रियाँ वहाँ आयीं और भगवान् शम्भुके युगल चरणारविन्दोंका दर्शन करती हुई मङ्गलगान करने लगीं। तदनन्तर लोकाचारका पालन करते हुए शम्भु प्रातःकालिक कृत्य करके मेना और हिमालयकी आज्ञा ले जनवासेको गये। मुने! उस समय बड़ा भारी उत्सव हुआ। वेदमन्त्रोंकी ध्वनि होने लगी और लोग चारों प्रकारके बाजे बजाने लगे। अपने स्थानपर आकर शम्भुने लोकाचारवश मुनियोंको, विष्णुको और मुझको प्रणाम किया। फिर देवता आदिने उनकी वन्दना की। उस समय जय-जयकार, नमस्कार तथा वेदमन्त्रोच्चारणकी मङ्गलदायिनी ध्वनि होने लगी। इससे सब ओर कोलाहल छा गया। (अध्याय ५२)

☆

चतुर्थीकर्म, बारातका कई दिनोंतक ठहरना, सप्तर्षियोंके समझानेसे हिमालयका बारातको विदा करनेके लिये राजी होना, मेनाका शिवको अपनी कन्या सौंपना तथा बारातका पुरीके बाहर जाकर ठहरना

ब्रह्माजी कहते हैं—तदनन्तर विष्णु आदि देवता तथा ऋषि कैलास लौटनेका विचार करने लगे। तब हिमालयने जनवासेमें आकर सबको भोजनके लिये निमन्त्रित किया। तत्पश्चात् देवेश्वर शिवको आमन्त्रित करके हिमाचल अपने घरको गये और नाना प्रकारके विधानसे भोजनोत्सवकी तैयारी करने लगे। उन्होंने प्रसन्नता और उत्कण्ठाके साथ भोजनके लिये परिवारसहित भगवान् शिवको यथोचित रीतिसे अपने घर बुलवाया। शम्भुके, विष्णुके, मेरे, अन्य सब देवताओंके, मुनियोंके तथा वहाँ आये हुए अन्य सब लोगोंके भी चरणोंको बड़े आदरके साथ धोकर उन सबको गिरिराजने मण्डपके भीतर सुन्दर आसनोंपर बिठाया। फिर अपने भाई-बन्धुओंको साथ लेकर उनके सहयोगसे उन सब अतिथियोंको नाना प्रकारके सरस पदार्थोंद्वारा पूर्णतया तृप्त किया। मेरे, विष्णुके तथा शम्भुके साथ सब लोगोंने अच्छी तरह भोजन किया। नारद! विधिवत् भोजन और आचमन करके तृप्त और प्रसन्न हुए सब लोग हिमालयसे आज्ञा ले अपने-अपने डेरेपर गये। मुने! इसी प्रकार तीसरे दिन भी गिरिराजने विधिवत् दान, मान और आदर आदिके द्वारा उन सबका सत्कार किया। चौथा दिन आनेपर शुद्धतापूर्वक सविधि चतुर्थीकर्म हुआ, जिसके बिना विवाह-यज्ञ अधूरा ही रह जाता है। उस समय नाना प्रकारका उत्सव हुआ। साधुवाद और जय-जयकारकी ध्वनि हुई। बहुत-से सुन्दर दान दिये गये। भाँति-भाँतिके सुन्दर गान और नृत्य हुए। पाँचवें दिन सब देवताओंने बड़े हर्ष और अत्यन्त प्रेमके साथ शैलराजको सूचित किया कि 'अब हमलोग यहाँसे जाना चाहते हैं। आप आज्ञा प्रदान करें।' उनकी यह बात सुन गिरिराज हिमवान् हाथ जोड़कर बोले—'देवगण! आपलोग कुछ दिन और ठहरें तथा मुझपर कृपा करें।' यों कहकर उन्होंने स्नेहके साथ उन देवताओंको, भगवान् शिवको, विष्णुको, मुझको तथा अन्य लोगोंको बहुत दिनोंतक ठहराया और प्रतिदिन विशेष आदर-सत्कार किया।

इस प्रकार देवताओंके वहाँ रहते हुए बहुत दिन बीत गये, तब उन सबने गिरिराजके पास सप्तर्षियोंको भेजा। सप्तर्षियोंने हिमवान् और मेनासे समयोचित बात कहकर उन्हें समझाया, परम शिवतत्त्वका वर्णन किया तथा प्रसन्नतापूर्वक उनके सौभाग्यकी सराहना की। मुने! उनके समझानेसे गिरिराजने बारातको विदा करना स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् भगवान् शम्भु यात्राके लिये उद्यत हो देवता आदिके साथ शैलराजके पास आये। देवेश्वर शिव देवताओंसहित कैलासकी यात्राके लिये जब उद्यत हुए, उस समय मेना उच्च स्वरसे रोने लगीं और उन कृपानिधानसे बोलीं।

मेनाने कहा—कृपानिधे! कृपा करके मेरी शिवाका भलीभाँति लालन-पालन कीजियेगा। आप आशुतोष हैं। पार्वतीके

सहस्रों अपराधोंको भी क्षमा कीजियेगा। मेरी बुद्धी जन्म-जन्ममें आपके चरणारविन्दोंकी भक्त रही है और रहेगी। उसे सोते और जागते समय भी अपने स्वामी महादेवके सिवा दूसरी किसी वस्तुकी सुध नहीं रहती। मृत्युञ्जय! आपके प्रति भक्ति-भावकी बातें सुनते ही यह हर्षके आँसू बहाती हुई पुलकित हो उठती है और आपकी निन्दा सुनकर ऐसा मौन साध लेती है, मानो मर ही गयी हो!

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! ऐसा कहकर मेनकाने अपनी बेटी शिवको सौंप दी और उन दोनोंके सामने ही उच्चस्वरसे रोती हुई वह मूर्च्छित हो गयी। तब महादेवजीने मेनाको समझाकर सचेत किया और उनसे विदा ले देवताओंके साथ महान् उत्सवपूर्वक यात्रा की। वे सब देवता अपने स्वामी शिव तथा सेवकगणोंके साथ चुपचाप कैलास पर्वतकी ओर प्रस्थित हुए। वे मन-ही-मन शिवका चिन्तन कर रहे थे। हिमाचलपुरीके बाहरी बगीचेमें आकर शिवसहित सब देवता हर्ष और उत्साहके साथ ठहर गये और शिवाके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे। मुनीश्वर! इस प्रकार देवताओंसहित शिवकी श्रेष्ठ यात्राका वर्णन किया गया। अब शिवाकी यात्राका वर्णन सुनो, जो विरहव्यथा और आनन्द दोनोंसे संयुक्त है।

(अध्याय ५३)

☆

मेनाकी इच्छाके अनुसार एक ब्राह्मण-पत्नीका पार्वतीको पतिव्रतधर्मका उपदेश देना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! तदनन्तर सप्तर्षियोंने हिमालयसे कहा—'गिरिराज! अब आप अपनी पुत्री पार्वतीदेवीकी यात्राका उचित प्रबन्ध करें।' मुनीश्वर! यह सुनकर पार्वतीके भावी विरहका अनुभव करके गिरिराज कुछ कालतक अधिक प्रेमके कारण विषादमें डूबे रह गये। कुछ देर बाद सचेत हो शैलराजने 'तथास्तु' कहकर मेनाको संदेश दिया। मुने! हिमवान्का संदेश पाकर हर्ष और शोकके वशीभूत हुई मेना पार्वतीको विदा करनेके लिये उद्यत हुई। शैलराजकी प्यारी पत्नी मेनाने विधिपूर्वक वैदिक एवं लौकिक कुलाचारका पालन किया और उस समय नाना प्रकारके उत्सव मनाये। फिर उन्होंने नाना प्रकारके रत्नजटित सुन्दर वस्त्रों और बारह आभूषणोंद्वारा राजोचित शृङ्गार करके पार्वतीको विभूषित किया। तत्पश्चात् मेनाके मनोभावको जानकर एक सती-साध्वी ब्राह्मणपत्नीने गिरिजाको उत्तम पातिव्रत्यकी शिक्षा दी।

ब्राह्मण-पत्नी बोली—गिरिराज-किशोरी! तुम प्रेमपूर्वक मेरा यह वचन सुनो। यह धर्मको बढ़ानेवाला, इहलोक और परलोकमें भी आनन्द देनेवाला तथा श्रोताओंको भी सुखकी प्राप्ति करानेवाला है। संसारमें पतिव्रता नारी ही धन्य है, दूसरी नहीं। वही विशेषरूपसे पूजनीय है। पतिव्रता सब लोगोंको पवित्र करनेवाली और समस्त पापराशिको नष्ट कर देनेवाली है। शिवे! जो पतिको परमेश्वरके समान मानकर प्रेमसे उसकी सेवा करती है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण भोगोंका उपभोग करके अन्तमें

कल्याणमयी गतिको पाती है।* सावित्री, लोपामुद्रा, अरुन्धती, शाण्डिली, शतरूपा, अनसूया, लक्ष्मी, स्वधा, सती, संज्ञा, सुमति, श्रद्धा, मेना और स्वाहा—ये तथा और भी बहुत-सी स्त्रियाँ साध्वी कही गयी हैं। यहाँ विस्तारभयसे उनका नाम नहीं लिया गया। वे अपने पातिव्रत्यके बलसे ही सब लोगोंकी पूजनीया तथा ब्रह्मा, विष्णु, शिव एवं मुनीश्वरोंकी भी माननीया हो गयी हैं। इसलिये तुम्हें अपने पति भगवान् शंकरकी सदा सेवा करनी चाहिये। वे दीनदयालु, सबके सेवनीय और सत्पुरुषोंके आश्रय हैं। श्रुतियों और स्मृतियोंमें पतिव्रता-धर्मको महान् बताया गया है। इसको जैसा श्रेष्ठ बताया जाता है, वैसा दूसरा धर्म नहीं है—यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है।

पातिव्रत्य-धर्ममें तत्पर रहनेवाली स्त्री अपने प्रिय पतिके भोजन कर लेनेपर ही भोजन करे। शिवे ! जब पति खड़ा हो, तब साध्वी स्त्रीको भी खड़ी ही रहनी चाहिये। शुद्धबुद्धिवाली साध्वी स्त्री प्रतिदिन अपने पतिके सो जानेपर सोये और उसके जागनेसे पहले ही जग जाय। वह छल-कपट छोड़कर सदा उसके लिये हितकर कार्य ही करे। शिवे ! साध्वी स्त्रीको चाहिये कि जबतक वस्त्राभूषणोंसे विभूषित न हो ले तबतक वह अपनेको पतिकी दृष्टिके सम्मुख न लाये। यदि पति किसी कार्यसे परदेशमें गया हो तो उन दिनों उसे कदापि शृङ्गार नहीं करना चाहिये। पतिव्रता स्त्री कभी पतिका नाम न ले। पतिके कटुवचन कहनेपर भी वह बदलेमें कड़ी बात न कहे। पतिके बुलानेपर वह घरके सारे कार्य छोड़कर तुरंत उसके पास चली जाय और हाथ जोड़ प्रेमसे मस्तक झुकाकर पूछे—'नाथ ! किसलिये इस दासीको बुलाया है ? मुझे सेवाके लिये आदेश देकर अपनी कृपासे अनुगृहीत कीजिये।' फिर पति जो आदेश दे, उसका वह प्रसन्न हृदयसे पालन करे। वह घरके दरवाजेपर देरतक खड़ी न रहे। दूसरेके घर न जाय। कोई गोपनीय बात जानकर हर एकके सामने उसे प्रकाशित न करे। पतिके बिना कहे ही उनके लिये पूजन-सामग्री स्वयं जुटा दे तथा उनके हित-साधनके यथोचित अवसर-की प्रतीक्षा करती रहे। पतिकी आज्ञा लिये बिना कहीं तीर्थयात्राके लिये भी न जाय। लोगोंकी भीड़से भरी हुई सभा या मेले आदिके उत्सवोंका देखना वह दूरसे ही त्याग दे। जिस नारीको तीर्थयात्राका फल पानेकी इच्छा हो, उसे अपने पतिका चरणोदक पीना चाहिये। उसके लिये उसीमें सारे तीर्थ और क्षेत्र हैं, इसमें संशय नहीं है।†

पतिव्रता नारी पतिके उच्छिष्ट अन्न आदिको परम प्रिय भोजन मानकर ग्रहण करे और पति जो कुछ दे, उसे महाप्रसाद मानकर शिरोधार्य करे। देवता, पितर, अतिथि, सेवकवर्ग, गौ तथा

---

* धन्या पतिव्रता नारी नान्या पूज्या विशेषतः। पावनी सर्वलोकानां सर्वपापौघनाशिनी॥
सेवते या पतिं प्रेम्णा परमेश्वरवच्छिवे। इह भुक्त्वाखिलान्भोगानन्ते पत्या शिवां गतिम्॥
(शि० पु० रु० सं० पा० खं० ५४। ९-१०)

† तीर्थार्थिनी तु या नारी पतिपादोदकं पिबेत्। तस्मिन् सर्वाणि तीर्थानि क्षेत्राणि च न संशयः॥
(शि० पु० रु० सं० पा० खं० ५४। २५)

भिक्षुसमुदायके लिये अन्नका भाग दिये बिना कदापि भोजन न करे। पातिव्रत-धर्ममें तत्पर रहनेवाली गृहदेवीको चाहिये कि वह घरकी सामग्रीको संयत एवं सुरक्षित रखे। गृहकार्यमें कुशल हो, सदा प्रसन्न रहे और खर्चकी ओरसे हाथ खींचे रहे। पतिकी आज्ञा लिये बिना उपवास-व्रत आदि न करे, अन्यथा उसे उसका कोई फल नहीं मिलता और वह परलोकमें नरकगामिनी होती है। पति सुखपूर्वक बैठा हो या इच्छानुसार क्रीडाविनोद अथवा मनोरञ्जनमें लगा हो, उस अवस्थामें कोई आन्तरिक कार्य आ पड़े तो भी पतिव्रता स्त्री अपने पतिको कदापि न उठाये। पति नपुंसक हो गया हो, दुर्गतिमें पड़ा हो, रोगी हो, बूढ़ा हो, सुखी हो अथवा दुःखी हो, किसी भी दशामें नारी अपने उस एकमात्र पतिका उल्लङ्घन न करे। रजस्वला होनेपर वह तीन रात्रितक पतिको अपना मुँह न दिखाये अर्थात् उससे अलग रहे। जबतक स्नान करके शुद्ध न हो जाय, तबतक अपनी कोई बात भी वह पतिके कानोंमें न पड़ने दे। अच्छी तरह स्नान करनेके पश्चात् सबसे पहले वह अपने पतिके मुखका दर्शन करे, दूसरे किसीका मुँह कदापि न देखे अथवा मन-ही-मन पतिका चिन्तन करके सूर्यका दर्शन करे। पतिकी आयु बढ़नेकी अभिलाषा रखनेवाली पतिव्रता नारी हल्दी, रोली, सिन्दूर, काजल आदि; चोली, पान, माङ्गलिक आभूषण आदि; केशोंका सँवारना, चोटी गूँथना तथा हाथ-कानके आभूषण—इन सबको अपने शरीरसे दूर न करे। धोबिन, छिनाल या कुलटा, संन्यासिनी और भाग्यहीना स्त्रियोंको वह कभी अपनी सखी न बनाये। पतिसे द्वेष रखनेवाली स्त्रीका वह कभी आदर न करे। कहीं अकेली न खड़ी हो। कभी नंगी होकर न नहाये। सती स्त्री ओखली, मूसल, झाड़ू, सिल, जाँत और द्वारके चौखटके नीचेवाली लकड़ीपर कभी न बैठे। मैथुनकालके सिवा और किसी समयमें वह पतिके सामने धृष्टता न करे। जिस-जिस वस्तुमें पतिकी रुचि हो, उससे वह स्वयं भी प्रेम करे। पतिव्रता देवी सदा पतिका हित चाहनेवाली होती है। वह पतिके हर्षमें हर्ष माने। पतिके मुखपर विषादकी छाया देख स्वयं भी विषादमें डूब जाय तथा वह प्रियतम पतिके प्रति ऐसा बर्ताव करे, जिससे वह उन्हें प्यारी लगे। पुण्यात्मा पतिव्रता स्त्री सम्पत्ति और विपत्तिमें भी पतिके लिये एक-सी रहे। अपने मनमें कभी विकार न आने दे और सदा धैर्य धारण किये रहे। घी, नमक, तेल आदिके समाप्त हो जानेपर भी पतिव्रता स्त्री पतिसे सहसा यह न कहे कि अमुक वस्तु नहीं है। वह पतिको कष्ट या चिन्तामें न डाले। देवेश्वरि! पतिव्रता नारीके लिये एकमात्र पति ही ब्रह्मा, विष्णु और शिवसे भी अधिक माना गया है। उसके लिये अपना पति शिवरूप ही है*। जो पतिकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके व्रत और उपवास आदिके नियमका पालन करती है, वह पतिकी आयु हर लेती है और मरनेपर नरकमें जाती है। जो स्त्री पतिके कुछ

---

* विधेर्विष्णोर्हरस्यापि पतिरेकोऽधिको मतः। पतिव्रतायाः देवेशि स्वपतिः शिव एव च॥
(शि० पु० रु० सं० पा० खं० ५४। ४३)

कहनेपर क्रोधपूर्वक कठोर उत्तर देती है वह गाँवमें कुतिया और निर्जन वनमें सियारिन होती है। नारी पतिसे ऊँचे आसनपर न बैठे, दुष्ट पुरुषके निकट न जाय और पतिसे कभी कातर वचन न बोले। किसीकी निन्दा न करे। कलहको दूरसे ही त्याग दे। गुरुजनोंके निकट न तो उच्चस्वरसे बोले और न हँसे। जो बाहरसे पतिको आते देख तुरंत अन्न, जल, भोज्य वस्तु, पान और वस्त्र आदिसे उनकी सेवा करती है, उनके दोनों चरण दबाती है, उनसे मीठे वचन बोलती है तथा प्रियतमके खेदको दूर करनेवाले अन्यान्य उपायोंसे प्रसन्नतापूर्वक उन्हें संतुष्ट करती है, उसने मानो तीनों लोकोंको तृप्त एवं संतुष्ट कर दिया। पिता, भाई और पुत्र परिमित सुख देते हैं, परंतु पति असीम सुख देता है। अतः नारीको सदा अपने पतिका पूजन—आदर-सत्कार करना चाहिये। पति ही देवता है, पति ही गुरु है और पति ही धर्म, तीर्थ एवं व्रत है; इसलिये सबको छोड़कर एकमात्र पतिकी ही आराधना करनी चाहिये।*

जो दुर्बुद्धि नारी अपने पतिको त्यागकर एकान्तमें विचरती है (या व्यभिचार करती है), वह वृक्षके खोखलेमें शयन करनेवाली क्रूर उलूकी होती है। जो पराये पुरुषको कटाक्षपूर्ण दृष्टिसे देखती है, वह ऐंचातानी देखनेवाली होती है। जो पतिको छोड़कर अकेले मिठाई खाती है, वह गाँवमें सूअरी होती है अथवा बकरी होकर अपनी ही विष्ठा खाती है। जो पतिको तू कहकर बोलती है, वह गूँगी होती है। जो सौतसे सदा ईर्ष्या रखती है, वह दुर्भाग्यवती होती है। जो पतिकी आँख बचाकर किसी दूसरे पुरुषपर दृष्टि डालती है, वह कानी, टेढ़े मुँहवाली तथा कुरूपा होती है। जैसे निर्जीव शरीर तत्काल अपवित्र हो जाता है, उसी तरह पतिहीना नारी भलीभाँति स्नान करनेपर भी सदा अपवित्र ही रहती है। लोकमें वह माता धन्य है, वह जन्मदाता पिता धन्य है तथा वह पति भी धन्य है, जिसके घरमें पतिव्रता देवी वास करती है। पतिव्रताके पुण्यसे पिता, माता और पतिके कुलोंकी तीन-तीन पीढ़ियोंके लोग स्वर्गलोकमें सुख भोगते हैं।† जो दुराचारिणी स्त्रियाँ अपना शील भङ्ग कर देती हैं, वे अपने माता-पिता और पति तीनोंके कुलोंको नीचे गिराती हैं तथा इस लोक और परलोकमें भी दुःख भोगती हैं। पतिव्रताका पैर जहाँ-जहाँ पृथ्वीका स्पर्श करता है, वहाँ-वहाँकी भूमि पापहारिणी तथा परम पावन बन जाती है।‡ भगवान् सूर्य, चन्द्रमा तथा वायुदेव भी अपने-आपको पवित्र करनेके लिये ही पतिव्रताका

---

* भर्ता देवो गुरुर्भर्ता धर्मतीर्थव्रतानि च। तस्मात्सर्वं परित्यज्य पतिमेकं समर्चयेत्॥
(शि० पु० रु० सं० पा० खं० ५४। ५१)

† सा धन्या जननी लोके स धन्यो जनकः पिता। धन्यः स च पतिर्यस्य गृहे देवी पतिव्रता॥
पितृवंश्या मातृवंश्याः पतिवंश्यास्त्रयस्त्रयः। पतिव्रतायाः पुण्येन स्वर्गे सौख्यानि भुञ्जते॥
(शि० पु० रु० सं० पा० खं० ५४। ५८-५९)

‡ पतिव्रतायाश्चरणो यत्र यत्र स्पृशेद्भुवम्। तत्र तत्र भवेत् सा हि पापहन्त्री सुपावनी॥
(शि० पु० रु० सं० पा० खं० ५४। ६१)

स्पर्श करते हैं और किसी दृष्टिसे नहीं। जल भी सदा पतिव्रताका स्पर्श करना चाहता है और उसका स्पर्श करके वह अनुभव करता है कि आज मेरी जडताका नाश हो गया तथा आज मैं दूसरोंको पवित्र करनेवाला बन गया। भार्या ही गृहस्थ-आश्रमकी जड़ है, भार्या ही सुखका मूल है, भार्यासे ही धर्मके फलकी प्राप्ति होती है तथा भार्या ही संतानकी वृद्धिमें कारण है।*

क्या घर-घरमें अपने रूप और लावण्यपर गर्व करनेवाली स्त्रियाँ नहीं हैं? परंतु पतिव्रता स्त्री तो विश्वनाथ शिवके

प्रति भक्ति होनेसे ही प्राप्त होती है। भार्यासे इस लोक और परलोक दोनोंपर विजय पायी जा सकती है। भार्याहीन पुरुष देवयज्ञ, पितृयज्ञ और अतिथियज्ञ करनेका अधिकारी नहीं होता। वास्तवमें गृहस्थ वही है, जिसके घरमें पतिव्रता स्त्री है। दूसरी स्त्री तो पुरुषको उसी तरह अपना ग्रास (भोग्य) बनाती है, जैसे जरावस्था एवं राक्षसी। जैसे गङ्गास्नान करनेसे शरीर पवित्र होता है, उसी प्रकार पतिव्रता स्त्रीका दर्शन करनेपर सब कुछ पावन हो जाता है।† पतिको ही इष्टदेव माननेवाली सती नारी और गङ्गामें कोई भेद नहीं है। पतिव्रता और उसके पतिदेव उमा और महेश्वरके समान हैं, अतः विद्वान् मनुष्य उन दोनोंका पूजन करे। पति प्रणव है और नारी वेदकी ऋचा; पति तप है और स्त्री क्षमा; नारी सत्कर्म है और पति उसका फल। शिवे! सती नारी और उसके पति—दोनों दम्पती धन्य हैं‡।

गिरिराजकुमारी! इस प्रकार मैंने तुमसे पतिव्रताधर्मका वर्णन किया है। अब तुम सावधान हो आज मुझसे प्रसन्नतापूर्वक पतिव्रताके भेदोंका वर्णन सुनो। देवि! पतिव्रता नारियाँ उत्तमा आदि भेदसे चार प्रकारकी बतायी गयी हैं, जो अपना स्मरण करनेवाले पुरुषोंका सारा पाप हर लेती हैं। उत्तमा, मध्यमा, निकृष्टा और

---

* भार्या मूलं गृहस्थस्य भार्या मूलं सुखस्य च। भार्या धर्मफलावाप्तौ भार्या संतानवृद्धये॥
(शि० पु० रु० सं० पा० खं० ५४। ६४)

† उमा गङ्गावगाहेव शरीरं पावनं भवेत्। तत्र पतिव्रता दृष्टा सकलं पावनं भवेत्॥
(शि० पु० रु० सं० पा० खं० ५४। ६८)

‡ तारः पतिः श्रुतिर्नारी क्षमा सा स स्वयं तपः। फलं पतिः सत्क्रिया सा धन्यौ तौ दम्पती शिवे॥
(शि० पु० रु० सं० पा० खं० ५४। ७०)

अतिनिकृष्टा—ये पतिव्रताके चार भेद हैं। अब मैं इनके लक्षण बताती हूँ। ध्यान देकर सुनो। भद्रे ! जिसका मन सदा स्वप्नमें भी अपने पतिको ही देखता है, दूसरे किसी परपुरुषको नहीं, वह स्त्री उत्तमा या उत्तम श्रेणीकी पतिव्रता कही गयी है। शैलजे ! जो दूसरे पुरुषको उत्तम बुद्धिसे पिता, भाई एवं पुत्रके समान देखती है, उसे मध्यम श्रेणीकी पतिव्रता कहा गया है। पार्वती ! जो मनसे अपने धर्मका विचार करके व्यभिचार नहीं करती, सदाचारमें ही स्थित रहती है, उसे निकृष्टा अथवा निम्नश्रेणीकी पतिव्रता कहा गया है। जो पतिके भयसे तथा कुलमें कलङ्क लगनेके डरसे व्यभिचारसे बचनेका प्रयत्न करती है, उसे पूर्वकालके विद्वानोंने अतिनिकृष्टा अथवा निम्नतम कोटिकी पतिव्रता बताया है। शिवे ! ये चारों प्रकारकी पतिव्रताएँ समस्त लोकोंका पाप नाश करनेवाली और उन्हें पवित्र बनानेवाली हैं। अत्रिकी स्त्री अनसूयाने ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीनों देवताओंकी प्रार्थनासे पातिव्रत्यके प्रभावका उपभोग करके वाराहके शापसे मरे हुए एक ब्राह्मणको जीवित कर दिया था। शैलकुमारी शिवे ! ऐसा जानकर तुम्हें नित्य प्रसन्नतापूर्वक पतिकी सेवा करनी चाहिये। पतिसेवन सदा समस्त अभीष्ट फलोंको देनेवाला है। तुम साक्षात् जगदम्बा महेश्वरी हो और तुम्हारे पति साक्षात् भगवान् शिव हैं। तुम्हारा तो चिन्तनमात्र करनेसे स्त्रियाँ पतिव्रता हो जायँगी। देवि ! यद्यपि तुम्हारे आगे यह सब कहनेका कोई प्रयोजन नहीं है, तथापि आज लोकाचारका आश्रय ले मैंने तुम्हें सती-धर्मका उपदेश दिया है।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ऐसा कहकर वह ब्राह्मण-पत्नी शिवादेवीको मस्तक झुका चुप हो गयी। इस उपदेशको सुनकर शंकरप्रिया पार्वतीदेवीको बड़ा हर्ष हुआ।

(अध्याय ५४)

☆

शिव-पार्वती तथा उनकी बारातकी बिदाई, भगवान् शिवका समस्त देवताओंको बिदा करके कैलासपर रहना और पार्वतीखण्डके श्रवणकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ब्राह्मणीने देवी पार्वतीको पतिव्रत-धर्मकी शिक्षा देनेके पश्चात् मेनाको बुलाकर कहा—'महारानीजी ! अब अपनी पुत्रीकी यात्रा कराइये—इसे बिदा कीजिये।' तब 'बहुत अच्छा' कहकर वे प्रेमके वशीभूत हो गयीं। फिर धैर्य धारण करके उन्होंने कालीको बुलाया और उसके वियोगके भयसे व्याकुल हो वे बेटीको बारंबार गलेसे लगाकर अत्यन्त उच्चस्वरसे रोने लगीं। फिर पार्वती भी करुणाजनक बात कहती हुई जोर-जोरसे रो पड़ीं। मेना और शिवा दोनों ही विरह-शोकसे पीड़ित हो मूर्च्छित हो गयीं। पार्वतीके रोनेसे देवपत्नियाँ भी अपनी सुध-बुध खो बैठीं। सारी स्त्रियाँ वहाँ रोने लगीं। वे सब-की-सब अचेत-सी हो गयीं। उस यात्राके समय परम प्रभु साक्षात् योगीश्वर शिव भी रो पड़े, फिर दूसरा कौन

चुप रह सकता था ? इसी समय अपने समस्त पुत्रों, मन्त्रियों और उत्तम ब्राह्मणोंके साथ हिमालय शीघ्र वहाँ आ पहुँचे और मोहवश अपनी बच्चीको हृदयसे लगाकर रोने लगे। 'बेटी ! तुम मुझे छोड़कर कहाँ चली जा रही हो ?' ऐसा कहकर सारे जगत्‌को सूना मानते हुए वे बारंबार विलाप करने लगे। तब ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ पुरोहितने अन्य ब्राह्मणोंके सहयोगसे कृपापूर्वक अध्यात्मविद्याका उपदेश देते हुए सबको सुखद रीतिसे समझाया। पार्वतीने भक्ति-भावसे माता-पिता तथा गुरुको प्रणाम किया। वे महामाया होकर भी लोकाचारवश बार-बार रो उठती थीं। पार्वतीके रोनेसे ही सब स्त्रियाँ रोने लगती थीं। माता मेना तो बहुत रोयीं। भौजाइयाँ भी रोने लगीं। यही दशा भाइयोंकी थी। शिवाकी माँ, भाभियाँ तथा अन्य युवतियाँ बार-बार रोदन करने लगीं। भाई और पिता भी प्रेम और सौहार्दवश रोये बिना न रह सके। उस समय ब्राह्मणोंने मिलकर सबको आदरपूर्वक समझाया और यह सूचित किया कि यात्राके लिये यही सबसे उत्तम तथा सुखद लग्न है।

तब हिमालय और मेनाने विवेकपूर्वक धैर्य धारण करके शिवाके बैठनेके लिये पालकी मँगवायी, ब्राह्मणोंकी पत्नियोंने शिवाको उसपर चढ़ाया और सबने मिलकर आशीर्वाद दिया। पिता-माता और ब्राह्मणोंने भी अपनी शुभ कामना प्रकट की। मेना और हिमालयने पार्वतीको ऐसे-ऐसे सामान दिये, जो पहाड़ीके योग्य थे। नाना प्रकारके द्रव्योंकी शुभ राशि भेंट की, जो दूसरोंके लिये परम दुर्लभ थी। शिवाने समस्त गुरुजनोंको, माता-पिताको, पुरोहित और ब्राह्मणोंको तथा भौजाइयों और दूसरी स्त्रियोंको प्रणाम करके यात्रा की। पुत्रोंसहित बुद्धिमान् हिमाचल भी स्नेहके वशीभूत हो पीछे-पीछे गये और उस स्थानपर पहुँचे, जहाँ देवताओंसहित भगवान् शिव प्रसन्नतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे थे। वहाँ सब लोग बड़े प्रेम और आनन्दसे परस्पर मिले। उन सबने भगवान्‌को प्रणाम किया और उनकी प्रशंसा करते हुए वे पुरीको लौट गये।

तदनन्तर कैलास पहुँचकर भगवान् शिवने पार्वतीसे कहा—'देवेश्वरि ! तुम सदासे ही मेरी प्राणप्रिया हो। तुम्हें लीलापूर्वक इस बातकी याद दिला रहा हूँ। तुम्हें पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण है। अतः मेरे और अपने नित्य सम्बन्धका यदि तुम्हें स्मरण हो तो बताओ।' अपने प्राणनाथ महेश्वरकी यह बात सुनकर शंकरकी नित्य प्रिया पार्वती मुस्कराती हुई बोलीं—'प्राणेश्वर ! मुझे सब बातोंका स्मरण है, किंतु इस समय आप चुप रहिये और इस अवसरके अनुरूप जो कार्य हो, उसीको शीघ्र पूर्ण कीजिये।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! प्रिया पार्वतीके सैकड़ों सुधा-धाराओंके समान मधुर वचनको सुनकर लोकाचार-परायण भगवान् विश्वनाथ बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने बहुत-सी सामग्रियाँ एकत्र करके नारायण आदि देवताओंको भाँति-भाँतिकी मनोहर भोज्य वस्तुएँ खिलायीं। इसी तरह अपने विवाहमें पधारे हुए दूसरे लोगोंको भी भगवान् शंकरने प्रेमपूर्वक सुमधुर रससे युक्त नाना प्रकारका अन्न भोजन कराया। भोजन करनेके पश्चात् उन सब देवताओंने

नाना रत्नोंसे विभूषित हो अपनी स्त्रियों और सेवकगणोंके साथ आकर प्रभु चन्द्रशेखरको प्रणाम किया। फिर प्रिय वचनोंद्वारा प्रसन्नतापूर्वक उनकी स्तुति एवं परिक्रमा करके शिव-विवाहकी प्रशंसा करते हुए वे सब लोग अपने-अपने धामको चले गये। मुने! साक्षात् भगवान् शिवने लोकाचारवश भगवान् विष्णुको और मुझको भी प्रणाम किया—ठीक उसी तरह, जैसे वामनरूपधारी श्रीहरिने महर्षि कश्यपको नमस्कार किया था। तब मैंने और श्रीविष्णुने शिवको हृदयसे लगाकर उनको आशीर्वाद दिया। तदनन्तर श्रीहरिने उन्हें परब्रह्म परमात्मा मानकर उनकी उत्तम स्तुति की। इसके बाद मेरेसहित भगवान् विष्णु शिवसे विदा ले शिवा और शिवको प्रसन्नतापूर्वक हाथ जोड़ उनके विवाहकी प्रशंसा करते हुए अपने उत्तम धामको गये। भगवान् शिव भी पार्वतीके साथ सानन्द विहार करते हुए अपने निवासभूत कैलास पर्वतपर रहने लगे। समस्त शिवगणोंको इस विवाहसे बड़ा सुख मिला। वे अत्यन्त भक्तिपूर्वक शिवा और शिवकी आराधना करने लगे।

तात! इस प्रकार मैंने परम मङ्गलमय शिव-विवाहका वर्णन किया। यह शोकनाशक, आनन्ददायक तथा धन और आयुकी वृद्धि करनेवाला है। जो पुरुष भगवान् शिव और शिवामें मन लगाकर पवित्र हो प्रतिदिन इस प्रसङ्गको सुनता अथवा नियमपूर्वक दूसरोंको सुनाता है, वह शिवलोक प्राप्त कर लेता है। यह अद्भुत आख्यान कहा गया, जो मङ्गलका आवासस्थान है। यह सम्पूर्ण विघ्नोंको शान्त करके समस्त रोगोंका नाश करनेवाला है। इसके द्वारा स्वर्ग, यश, आयु तथा पुत्र और पौत्रोंकी प्राप्ति होती है। यह सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करता, इस लोकमें भोग देता और परलोकमें मोक्ष प्रदान करता है। इस शुभ प्रसङ्गको सुननेसे अपमृत्युका शमन होता है और परम शान्तिकी प्राप्ति होती है। यह समस्त दुःस्वप्नोंका नाशक तथा बुद्धि एवं विवेक आदिका साधक है। अपने शुभकी इच्छा रखनेवाले लोगोंको शिव-सम्बन्धी सभी उत्सवोंमें प्रसन्नताके साथ प्रयत्नपूर्वक इसका पाठ करना चाहिये। यह भगवान् शिवको संतोष प्रदान करनेवाला है। विशेषतः देवता आदिकी प्रतिष्ठाके समय तथा शिवसम्बन्धी सभी कार्योंके प्रसङ्गमें प्रसन्नतापूर्वक इसका पाठ करना चाहिये अथवा पवित्र हो शिव-पार्वतीके इस कल्याणकारी चरित्रका श्रवण करना चाहिये। ऐसा करनेसे समस्त कार्य सिद्ध होते हैं। यह सत्य है, सत्य है। इसमें संशय नहीं है।

(अध्याय ५५)

☆

॥ रुद्रसंहिताका पार्वतीखण्ड सम्पूर्ण ॥

☆

रुद्रसंहिता, चतुर्थ (कुमार) खण्ड

देवताओंद्वारा स्कन्दका शिव-पार्वतीके पास लाया जाना, उनका लाड़-प्यार, देवोंके माँगनेपर शिवजीका उन्हें तारक-वधके लिये स्वामी कार्तिकको देना, कुमारकी अध्यक्षतामें देवसेनाका प्रस्थान, महीसागर-संगमपर तारकासुरका आना और दोनों सेनाओंमें मुठभेड़, वीरभद्रका तारकके साथ घोर संग्राम, पुनः श्रीहरि और तारकमें भयानक युद्ध

वन्दे वन्दनतुष्टमानसमतिप्रेमप्रियं प्रेमदं
पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलैश्वर्यैकवासं शिवम्।
सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं
विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयेपात्ताकृतिं शंकरम्॥

वन्दना करनेसे जिनका मन प्रसन्न हो जाता है, जिन्हें प्रेम अत्यन्त प्यारा है, जो प्रेम प्रदान करनेवाले, पूर्णानन्दमय, भक्तोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाले, सम्पूर्ण ऐश्वर्योंके एकमात्र आवासस्थान और कल्याणस्वरूप हैं, सत्य जिनका श्रीविग्रह है, जो सत्यमय हैं, जिनका ऐश्वर्य त्रिकालाबाधित है, जो सत्यप्रिय एवं सत्य-प्रदाता हैं, ब्रह्मा और विष्णु जिनकी स्तुति करते हैं, स्वेच्छानुसार शरीर धारण करनेवाले उन भगवान् शंकरकी मैं वन्दना करता हूँ।

श्रीनारदजीने पूछा—देवताओंका मङ्गल करनेवाले देव! परमात्मा शिव तो सर्वसमर्थ हैं। आत्माराम होकर भी उन्होंने जिस पुत्रकी उत्पत्तिके लिये पार्वतीके साथ विवाह किया था, उनके वह पुत्र किस प्रकार उत्पन्न हुआ? तथा तारकासुरका वध कैसे हुआ? ब्रह्मन्! मुझपर कृपा करके यह सारा वृत्तान्त पूर्णरूपसे वर्णन कीजिये।

इसके उत्तरमें ब्रह्माजीने कथाप्रसङ्ग सुनाकर कुमारके गङ्गासे उत्पन्न होने तथा कृत्तिका आदि छः स्त्रियोंके द्वारा उनके पाले जाने, उन छहोंकी संतुष्टिके लिये उनके छः मुख धारण करने और कृत्तिकाओंके द्वारा पाले जानेके कारण उनका 'कार्तिकेय' नाम होनेकी बात कही। तदनन्तर उनके शंकर-गिरिजाकी सेवामें लाये जानेकी कथा सुनायी। फिर ब्रह्माजीने कहा—भगवान् शंकरने कुमारको गोदमें बैठाकर अत्यन्त स्नेह किया। देवताओंने उन्हें नाना प्रकारके पदार्थ, विद्याएँ, शक्ति और अस्त्र-शस्त्रादि प्रदान किये। पार्वतीके हृदयमें प्रेम समाता नहीं था, उन्होंने हर्षपूर्वक मुसकराकर कुमारको परमोत्तम ऐश्वर्य प्रदान किया, साथ ही चिरंजीवी भी बना दिया। लक्ष्मीने दिव्य सम्पत् तथा एक विशाल एवं मनोहर हार अर्पित किया। सावित्रीने प्रसन्न होकर सारी सिद्धविद्याएँ प्रदान कीं। मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार वहाँ महोत्सव मनाया गया। सभीके मन प्रसन्न थे। विशेषतः शिव और पार्वतीके आनन्दका पार नहीं था। इसी बीच देवताओंने भगवान् शंकरसे कहा—प्रभो! यह तारकासुर कुमारके हाथों ही मारा जानेवाला है, इसीलिये ही यह (पार्वती-परिणय तथा कुमारोत्पत्ति आदि) उत्तम चरित घटित हुआ है। अतः हमलोगोंके सुखार्थ उसका काम तमाम

करनेके हेतु कुमारको आज्ञा दीजिये। हमलोग आज ही अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित होकर तारकको मारनेके लिये रण-यात्रा करेंगे।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! यह सुनकर भगवान् शंकरका हृदय दयार्द्र हो गया। उन्होंने उनकी प्रार्थना स्वीकार करके उसी समय तारकका वध करनेके लिये अपने पुत्र कुमारको देवताओंको सौंप दिया। फिर तो शिवजीकी आज्ञा मिल जानेपर ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवता एकत्र होकर गुहको आगे करके तुरंत ही उस पर्वतसे चल दिये। उस समय श्रीहरि आदि देवताओंके मनमें पूर्ण विश्वास था (कि ये अवश्य तारकका वध कर डालेंगे); वे भगवान् शंकरके तेजसे भावित हो कुमारके सेनापतित्वमें तारकका संहार करनेके लिये (रणक्षेत्रमें) आये। उधर महाबली तारकने जब देवताओंके इस युद्धोद्योगको सुना, तब वह भी एक विशाल सेनाके साथ देवोंसे युद्ध करनेके लिये तत्काल ही चल पड़ा। उसकी उस विशाल वाहिनीको आती देख देवताओंको परम विस्मय हुआ। फिर तो वे बलपूर्वक बारंबार सिंहनाद करने लगे। उसी समय तुरंत ही भगवान् शंकरकी प्रेरणासे विष्णु आदि सम्पूर्ण देवताओंके प्रति आकाशवाणी हुई।

आकाशवाणीने कहा—देवगण! तुमलोग जो कुमारके अधिनायकत्वमें युद्ध करनेके लिये उद्यत हुए हो, इससे तुम संग्राममें दैत्योंको जीतकर विजयी होओगे।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! उस आकाशवाणीको सुनकर सभी देवताओंका उत्साह बढ़ गया। उनका भय जाता रहा और वे वीरोचित गर्जना करने लगे। उनकी युद्ध-कामना बलवती हो उठी और वे सब-के-सब कुमारको अग्रणी बनाकर बड़ी उतावलीके साथ महीसागर-संगमको गये। उधर बहुसंख्यक असुरोंसे घिरा हुआ वह तारक भी बहुत बड़ी सेनाके साथ शीघ्र ही वहाँ आ धमका, जहाँ वे सभी देवता खड़े थे। उस असुरके आगमन-कालमें प्रलयकालीन मेघोंके समान गर्जना करनेवाली रणभेरियाँ तथा अन्यान्य कर्कश शब्द करनेवाले रणवाद्य बज रहे थे। उस समय तारकासुरके साथ आनेवाले दैत्य ताल ठोंकते हुए गर्जना कर रहे थे। उनके पदाघातसे पृथ्वी काँप उठती थी। उस अत्यन्त भयंकर कोलाहलको सुनकर भी सभी देवता निर्भय ही बने रहे। वे एक साथ मिलकर तारकासुरसे लोहा लेनेके लिये डटकर खड़े हो गये। उस समय देवराज इन्द्र कुमारको गजराजपर बैठाकर सबसे आगे खड़े हुए। वे लोकपालोंसे घिरे हुए थे और उनके साथ देवताओंकी महती सेना थी। तत्पश्चात् कुमारने उस गजराजको तो महेन्द्रको ही दे दिया और वे स्वयं एक ऐसे विमानपर आरूढ़ हुए, जो परमाश्चर्यजनक तथा नाना प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित था। उस समय उस विमानपर सवार होनेसे सर्वगुणसम्पन्न महायशस्वी शंकर-पुत्र कुमार उत्कृष्ट शोभासे संयुक्त होकर सुशोभित हो रहे थे। उनपर परम प्रकाशमान चँवर डुलाये जा रहे थे। इसी बीच बलाभिमानी एवं महावीर देवता और दैत्य क्रोधसे विह्वल होकर परस्पर युद्ध करने लगे। उस समय देवताओं और दैत्योंमें बड़ा घमासान युद्ध हुआ। क्षणभरमें ही सारी रणभूमि रुण्ड-मुण्डोंसे व्याप्त हो गयी।

तब महाबली तारकासुर बहुत बड़ी सेनाके साथ देवताओंसे युद्ध करनेके लिये वेगपूर्वक आगे बढ़ा। उस रणदुर्मद तारकको युद्धकी कामनासे आगे बढ़ते देखकर इन्द्र आदि देवता तुरंत ही उसके सामने आये। फिर तो दोनों सेनाओंमें महान् कोलाहल होने लगा। तत्पश्चात् देवों तथा असुरोंका विनाश करनेवाला ऐसा द्वन्द्वयुद्ध प्रारम्भ हुआ, जिसे देखकर वीरलोग हर्षोत्फुल्ल हो गये और कायरोंके मनमें भय समा गया। इसी समय वीरभद्र कुपित होकर महाबली प्रमथगणोंके साथ वीराभिमानी तारकके समीप आ पहुँचे। ये बलवान् गणनायक भगवान् शिवके कोपसे उत्पन्न हुए थे, अतः समस्त देवताओंको पीछे करके युद्धकी अभिलाषासे तारकके सम्मुख डट गये। उस समय प्रमथगणों तथा सारे असुरोंके मनमें परमोल्लास था, अतः वे उस महासमरमें परस्पर गुत्थमगुत्थ होकर जूझने लगे। तदनन्तर वीरभद्रसे तारकका भयानक युद्ध हुआ। इसी बीच असुरोंकी सेना रणसे विमुख हो भाग चली। इस प्रकार अपनी सेनाको तितर-बितर हुई देख उसका नायक तारकासुर क्रोधसे भर गया और दस हजार भुजाएँ धारण करके सिंहपर सवार हो देवगणोंको मार डालनेके लिये वेगपूर्वक उनकी ओर झपटा। वह युद्धके मुहानेपर देवों तथा प्रमथगणोंको मार-मारकर गिराने लगा। तब प्रमथगणोंके नेता महाबली वीरभद्र उसके उस कर्मको देखकर उसका वध करनेके लिये अत्यन्त कुपित हो उठे। फिर तो उन्होंने भगवान् शिवके चरण-कमलका ध्यान करके एक ऐसा श्रेष्ठ त्रिशूल हाथमें लिया, जिसके तेजसे सारी दिशाएँ और आकाश प्रकाशित हो उठे। इसी अवसरपर महान् कौतुक प्रदर्शन करनेवाले स्वामिकार्तिकने तुरंत ही वीरबाहुद्वारा कहलाकर उस युद्धको रोक दिया। तब स्वामीकी आज्ञासे वीरभद्र उस युद्धसे हट गये। यह देखकर असुर-सेनापति महावीर तारक कुपित हो उठा। वह युद्ध-कुशल तथा नाना प्रकारके अस्त्रोंका जानकार था, अतः देवताओंको ललकार-ललकारकर उनपर बाणोंकी वृष्टि करने लगा। उस समय बलवानोंमें श्रेष्ठ असुरराज तारकने ऐसा महान् कर्म किया कि सारे देवता मिलकर भी उसका सामना न कर सके। उन भयभीत देवताओंको यों पिटते हुए देखकर भगवान् अच्युतको क्रोध हो आया और वे शीघ्र ही युद्ध करनेके लिये तैयार हो गये। उन भगवान् श्रीहरिने अपने आयुध सुदर्शनचक्र और शार्ङ्गधनुषको लेकर युद्धस्थलमें महादैत्य तारकपर आक्रमण किया। मुने! तदनन्तर सबके देखते-देखते श्रीहरि और तारकासुरमें अत्यन्त भयंकर एवं रोमाञ्चकारी महायुद्ध छिड़ गया। इसी बीच अच्युतने कुपित होकर महान् सिंहनाद किया और धधकती हुई ज्वालाओंके-से प्रकाशवाले अपने चक्रको उठाया। फिर तो श्रीहरिने उसी चक्रसे दैत्यराज तारकपर प्रहार किया। उसकी चोटसे अत्यन्त व्यथित होकर वह असुर पृथ्वीपर गिर पड़ा। परंतु वह असुरनायक तारक अत्यन्त बलवान् था, अतः तुरंत ही उठकर उस दैत्यराजने अपनी शक्तिसे चक्रके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। मुने! भगवान् विष्णु और तारकासुर दोनों बलवान् थे और दोनोंमें अगाध बल था, अतः युद्धस्थलमें वे परस्पर जूझने लगे।

(अध्याय १—८)

☆

ब्रह्माजीकी आज्ञासे कुमारका युद्धके लिये जाना, तारकके साथ उनका भीषण संग्राम और उनके द्वारा तारकका वध, तत्पश्चात् देवोंद्वारा कुमारका अभिनन्दन और स्तवन, कुमारका उन्हें वरदान देकर कैलासपर जा शिव-पार्वतीके पास निवास करना

तब ब्रह्माजीने कहा—शंकरसुवन स्वामी कार्तिक ! तुम तो देवाधिदेव हो। पार्वती-सुत ! विष्णु और तारकासुरका यह व्यर्थ युद्ध शोभा नहीं दे रहा है, क्योंकि विष्णुके हाथों इस तारककी मृत्यु नहीं होगी। यह मुझसे वरदान पाकर अत्यन्त बलवान् हो गया है। यह मैं बिलकुल सत्य बात कह रहा हूँ। पार्वती-नन्दन ! तुम्हारे अतिरिक्त इस पापीको मारनेवाला दूसरा कोई नहीं है, इसलिये महाप्रभो ! तुम्हें मेरे कथनानुसार ही करना चाहिये। परंतप ! तुम शीघ्र ही उस दैत्यका वध करनेके लिये तैयार हो जाओ; क्योंकि पार्वती-पुत्र ! तारकका संहार करनेके निमित्त ही तुम शंकरसे उत्पन्न हुए हो।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! यों मेरा कथन सुनकर शंकरनन्दन कुमार कार्तिकेय ठठाकर हँस पड़े और प्रसन्नतापूर्वक बोले—'तथास्तु—ऐसा ही होगा।' तब महान् ऐश्वर्यशाली शंकरसुवन कुमार तारकासुरके वधका निश्चय करके विमानसे उतर पड़े और पैदल हो गये। जिस समय महाबली शिव-पुत्र कुमार अपनी अत्यन्त चमकीली शक्तिको, जो लपटोंसे दमकती हुई एक बड़ी उल्का-सी जान पड़ती थी, हाथमें लेकर पैदल ही दौड़ रहे थे, उस समय उनकी अद्भुत शोभा हो रही थी। उनके मनमें तनिक भी व्याकुलता नहीं थी। वे परम प्रचण्ड और अप्रमेय बलशाली थे। उन षण्मुखको अपनी ओर आते देखकर तारक सुरश्रेष्ठोंसे

बोला—'क्या शत्रुओंका संहार करनेवाला कुमार यही है ? मैं अकेला वीर इसके साथ युद्ध करूँगा और मैं ही समस्त वीरों, प्रमथगणों, लोकपालों तथा श्रीहरि जिनके नायक हैं, उन देवोंको भी मार डालूँगा।'

तदनन्तर देवताओंको दुर्वचन कहकर वह असुर तारक भीषण युद्ध करने लगा। उस समय बड़ा विकट संग्राम हुआ। तब शत्रु-वीरोंका संहार करनेवाले कुमारने शिवजीके चरण-कमलोंका स्मरण करके तारकके वधका विचार किया। फिर तो

महातेजस्वी एवं महाबली कुमार रोषावेशमें आकर गर्जना करने लगे और बहुत बड़ी सेनाके साथ युद्धके लिये डटकर खड़े हो गये। उस समय समस्त देवताओंने जय-जयकारका शब्द किया और देवर्षियोंने इष्ट वाणीद्वारा उनकी स्तुति की। तब तारक और कुमारका संग्राम प्रारम्भ हुआ, जो अत्यन्त दुस्सह, महान् भयंकर और सम्पूर्ण प्राणियोंको भयभीत करनेवाला था। कुमार और तारक दोनों ही शक्ति-युद्धमें परम प्रवीण थे, अतः अत्यन्त रोषावेशमें वे परस्पर एक-दूसरेपर प्रहार करने लगे। परम पराक्रमी वे दोनों नाना प्रकारके पैंतरे बदलते हुए गर्जना कर रहे थे और अनेक प्रकारसे दाव-पेंचसे एक-दूसरेपर आघात कर रहे थे। उस समय देवता, गन्धर्व और किन्नर—सभी चुपचाप खड़े होकर वह दृश्य देखते रहे। उन्हें परम विस्मय हुआ—यहाँतक कि वायुका चलना बंद हो गया, सूर्यकी प्रभा फीकी पड़ गयी और पर्वत एवं वन-काननोंसहित सारी पृथ्वी काँप उठी। इसी अवसरपर हिमालय आदि पर्वत स्नेहाभिभूत होकर कुमारकी रक्षाके लिये वहाँ आये। तब उन सभी पर्वतोंको भयभीत देखकर शंकर एवं गिरिजाके पुत्र कुमार उन्हें सान्त्वना देते हुए बोले।

कुमारने कहा—'महाभाग पर्वतो! तुमलोग खेद मत करो। तुम्हें किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। मैं आज तुम सब लोगोंकी आँखोंके सामने ही इस पापीका काम तमाम कर दूँगा।' यों उन पर्वतों तथा देवगणोंको ढाढ़स बँधाकर कुमारने गिरिजा और शम्भुको प्रणाम किया तथा अपनी कान्तिमती शक्तिको हाथमें लिया। शम्भुपुत्र कुमार महाबली तथा महान् ऐश्वर्यशाली तो थे ही। जब उन्होंने तारकका वध करनेकी इच्छासे शक्ति हाथमें ली, उस समय उनकी अद्भुत शोभा हुई। तदनन्तर शंकरजीके तेजसे सम्पन्न कुमारने उस शक्तिसे तारकासुरपर, जो समस्त लोकोंको कष्ट देनेवाला था, प्रहार किया। उस शक्तिके आघातसे तारकासुरके सभी अङ्ग छिन्न-भिन्न हो गये और सम्पूर्ण असुरगणोंका अधिपति वह महावीर सहसा धराशायी हो गया। मुने! सबके देखते-देखते वहीं कुमारद्वारा मारे गये तारकके प्राणपखेरू उड़ गये। उस उत्कृष्ट वीर तारकको महासमरमें प्राणरहित होकर गिरा हुआ देखकर वीरवर कुमारने पुनः उसपर वार नहीं किया। उस महाबली दैत्यराज तारकके मारे जानेपर देवताओंने बहुत-से असुरोंको मौतके घाट उतार दिया। उस युद्धमें कुछ असुरोंने भयभीत होकर हाथ जोड़ लिये, कुछके शरीर छिन्न-भिन्न हो गये और हजारों दैत्य मृत्युके अतिथि बन गये। कुछ शरणार्थी दैत्य अञ्जलि बाँधकर 'पाहि-पाहि—रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये' यों पुकारते हुए कुमारके शरणापन्न हो गये। कुछ मार डाले गये और कुछ मैदान छोड़कर भाग गये। सहस्रों दैत्य जीवनकी आशासे भागकर पातालमें घुस गये। उन सबकी आशाएँ भग्न हो गयी थीं और मुखपर दीनता छायी हुई थी।

मुनीश्वर! इस प्रकार वह सारी दैत्यसेना विनष्ट हो गयी। देवगणोंके भयसे कोई भी वहाँ ठहर न सका। उस दुरात्मा तारकके मारे जानेपर सभी लोक निष्कण्टक हो गये और इन्द्र आदि सभी देवता

आनन्दमग्न हो गये। यों कुमारको विजयी देखकर एक साथ ही सम्पूर्ण देवताओं तथा त्रिलोकीके समस्त प्राणियोंको महान् आनन्द प्राप्त हुआ। उस समय भगवान् शंकर भी कार्तिकेयकी विजयका समाचार पाकर प्रसन्नतासे भर गये और पार्वतीजीके साथ गणोंसे घिरे हुए वहाँ पधारे। तब जिनके हृदयमें स्नेह समाता नहीं था, वे पार्वतीजी परम प्रेमपूर्वक सूर्यके समान तेजस्वी अपने पुत्र कुमारको अपनी गोदमें लेकर लाड़-प्यार करने लगीं। उसी अवसरपर अपने पुत्रोंसे घिरे हुए हिमालयने बन्धु-बान्धवों तथा अनुयायियोंके साथ आकर शम्भु, पार्वती और गुहका स्तवन किया। तत्पश्चात् सम्पूर्ण देवगण, मुनि, सिद्ध और चारणोंने शिवनन्दन कुमार, शम्भु और परम प्रसन्न हुई पार्वतीकी स्तुति की। उस समय उपदेवोंने बहुत बड़ी पुष्प-वर्षा की। सभी प्रकारके बाजे बजने लगे। विशेषरूपसे जयकार और नमस्कारके शब्द बारंबार उच्चस्वरसे गूँजने लगे। उस समय वहाँ एक महान् विजयोत्सव मनाया गया, जिसमें कीर्तनकी विशेषता थी और वह स्थान गाने-बजानेके शब्द तथा अधिकाधिक ब्रह्मघोषसे व्याप्त था। मुने! समस्त देवगणोंने प्रसन्नतापूर्वक गा-बजाकर तथा हाथ जोड़कर भगवान् जगन्नाथकी स्तुति की। तत्पश्चात् सबसे प्रशंसित तथा अपने गणोंसे घिरे हुए भगवान् रुद्र जगज्जननी भवानीके साथ अपने निवास-स्थान कैलास पर्वतको चले गये।

इधर तारकको मारा गया देखकर सभी देवताओं तथा अन्य समस्त प्राणियोंके चेहरेपर हँसी खेलने लगी। वे भक्तिपूर्वक शंकरसुवन कुमारकी स्तुति करने लगे—'देव! तुम दानवश्रेष्ठ तारकका हनन करनेवाले हो, तुम्हें नमस्कार है। शंकरनन्दन! तुम बाणासुरके प्राणोंका अपहरण करनेवाले तथा प्रलम्बासुरके विनाशक हो। तुम्हारा स्वरूप परम पवित्र है, तुम्हें हमारा अभिवादन है।'

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! जब विष्णु आदि देवताओंने इस प्रकार कुमारका स्तवन किया, तब उन प्रभुने सभी देवोंको क्रमशः नया-नया वर प्रदान किया। तत्पश्चात् पर्वतोंको स्तुति करते देखकर वे शंकर-तनय परम प्रसन्न हुए और उन्हें वर देते हुए बोले।

स्कन्दने कहा—भूधरो! तुम सभी पर्वत तपस्वियोंद्वारा पूजनीय तथा कर्मठ और ज्ञानियोंके लिये सेवनीय होओगे। ये जो मेरे मातामह (नाना) पर्वतश्रेष्ठ हिमवान् हैं, ये महाभाग आजसे तपस्वियोंके लिये फलदाता होंगे।

तब देवता बोले—कुमार! यों

असुरराज तारकको मारकर तथा देवोंको वर प्रदान करके तुमने हम सबको तथा चराचर जगत्‌को सुखी कर दिया। अब तुम्हें परम प्रसन्नतापूर्वक अपने माता-पिता पार्वती और शंकरका दर्शन करनेके लिये शिवके निवासभूत कैलासपर चलना चाहिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! तदनन्तर सब देवताओंके साथ विमानपर चढ़कर कुमार स्कन्द शिवजीके समीप कैलास पहुँच गये। उस समय शिव-शिवाने बड़ा आनन्द मनाया। देवताओंने शिवजीकी स्तुति की। शिवजीने उन्हें वरदान तथा अभयदान देकर विदा किया। मुने! उस अवसरपर देवताओंको परम आनन्द प्राप्त हुआ। वे शिव, पार्वती तथा शंकरनन्दन कुमारके रमणीय यशका बखान करते हुए अपने-अपने लोकको चले गये। इधर परमेश्वर शिव भी शिवा, कुमार तथा गणोंके साथ आनन्दपूर्वक उस पर्वतपर निवास करने लगे। मुने! इस प्रकार जो शिव-भक्तिसे ओतप्रोत, सुखदायक एवं दिव्य है, कुमारका वह सारा चरित्र मैंने तुमसे वर्णन कर दिया; अब और क्या सुनना चाहते हो?

(अध्याय ९—१२)

☆

शिवाका अपनी मैलसे गणेशको उत्पन्न करके द्वारपाल-पदपर नियुक्त करना, गणेशद्वारा शिवजीके रोके जानेपर उनका शिवगणोंके साथ भयंकर संग्राम, शिवजीद्वारा गणेशका शिरश्छेदन, कुपित हुई शिवाका शक्तियोंको उत्पन्न करना और उनके द्वारा प्रलय मचाया जाना, देवताओं और ऋषियोंका स्तवनद्वारा पार्वतीको प्रसन्न करना, उनके द्वारा पुत्रको जिलाये जानेकी बात कही जानेपर शिवजीके आज्ञानुसार हाथीका सिर लाया जाना और उसे गणेशके धड़से जोड़कर उन्हें जीवित करना

सूतजी कहते हैं—तारकारि कुमारके उत्तम एवं अद्भुत वृत्तान्तको सुनकर नारदजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने पुनः प्रेमपूर्वक ब्रह्माजीसे पूछा।

नारदजी बोले—देवदेव! आप तो शिव-सम्बन्धी ज्ञानके अथाह सागर हैं। प्रजानाथ! मैंने स्वामी कार्तिकके सद्वृत्तान्तको जो अमृतसे भी उत्तम है, सुन लिया। अब गणेशका उत्तम चरित्र सुनना चाहता हूँ। आप उनका जन्म-वृत्तान्त तथा दिव्य चरित्र, जो सम्पूर्ण मङ्गलोंके लिये भी मङ्गलस्वरूप है, वर्णन कीजिये।

सूतजी कहते हैं—महामुनि नारदका ऐसा वचन सुनकर ब्रह्माजीका मन हर्षसे गद्गद हो गया। वे शिवजीका स्मरण करके बोले।

ब्रह्माजीने कहा—नारद! पहले जो मैंने विधिपूर्वक गणेशकी उत्पत्तिका वर्णन किया था कि शनिकी दृष्टि पड़नेसे गणेशका मस्तक कट गया था, तब उसपर हाथीका

मुख लगा दिया गया था, वह कल्पान्तरकी कथा है! अब श्वेतकल्पमें घटित हुई गणेशकी जन्म-कथाका वर्णन करता हूँ, जिसमें कृपालु शंकरने ही उनका मस्तक काट लिया था। मुने! इस विषयमें तुम्हें संदेह नहीं करना चाहिये; क्योंकि भगवान् शम्भु कल्याणकारी, सृष्टिकर्ता और सबके स्वामी हैं। वे ही सगुण और निर्गुण भी हैं। उन्हींकी लीलासे सारे विश्वकी सृष्टि, रक्षा और विनाश होता है। मुनिश्रेष्ठ! अब प्रस्तुत विषयको आदरपूर्वक श्रवण करो।

एक समय पार्वतीजीकी जया-विजया नामवाली सखियाँ उनके पास आकर विचार करने लगीं—'सखी! सभी गण रुद्रके ही हैं। नन्दी, भृङ्गी आदि जो हमारे हैं, वे भी शिवके ही आज्ञापालनमें तत्पर रहते हैं। जो असंख्य प्रमथगण हैं, उनमें भी हमारा कोई नहीं है। वे सभी शिवाज्ञा-परायण होकर द्वारपर खड़े रहते हैं। यद्यपि वे सभी हमारे भी हैं, तथापि उनसे हमारा मन नहीं मिलता; अतः पापरहिते! आपको भी हमारे लिये एक गणकी रचना करनी चाहिये।'

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! जब सखियोंने पार्वतीजीसे ऐसा सुन्दर वचन कहा, तब उन्होंने उसे हितकारक माना और वैसा करनेका विचार भी किया। तदनन्तर किसी समय जब पार्वतीजी स्नान कर रही थीं, तब सदाशिव नन्दीको डरा-धमकाकर घरके भीतर चले आये। शंकरजीको आते देखकर स्नान करती हुई जगज्जननी पार्वती उठकर खड़ी हो गयीं। उस समय उनको बड़ी लज्जा आयी। वे आश्चर्यचकित हो गयीं। उस अवसरपर उन्होंने सखियोंके वचनको हितकारक तथा सुखप्रद माना। उस समय ऐसी घटना घटित होनेपर परमाया परमेश्वरी शिवपत्नी पार्वतीने मनमें ऐसा विचार किया कि मेरा कोई एक ऐसा सेवक होना चाहिये, जो परम शुभ, कार्यकुशल और मेरी ही आज्ञामें तत्पर रहनेवाला हो, उससे तनिक भी विचलित होनेवाला न हो। यों विचारकर पार्वतीदेवीने अपने शरीरकी मैलसे एक ऐसे चेतन पुरुषका निर्माण किया, जो सम्पूर्ण शुभलक्षणोंसे संयुक्त था। उसके सभी अङ्ग सुन्दर एवं दोषरहित थे। उसका वह शरीर विशाल, परम शोभायमान और महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न था। देवीने उसे अनेक प्रकारके वस्त्र, नाना प्रकारके आभूषण और बहुत-सा उत्तम आशीर्वाद देकर कहा—'तुम मेरे पुत्र हो। मेरे अपने ही हो। तुम्हारे समान प्यारा मेरा यहाँ कोई दूसरा नहीं है।' पार्वतीके ऐसा कहनेपर वह पुरुष उन्हें नमस्कार करके बोला।

गणेशने कहा—'माँ! आज आपको कौन-सा कार्य आ पड़ा है? मैं आपके कथनानुसार उसे पूर्ण करूँगा।' गणेशके यों पूछनेपर पार्वतीजी अपने पुत्रको उत्तर देते हुए बोलीं।

शिवाने कहा—तात! तुम मेरे पुत्र हो, मेरे अपने हो। अतः तुम मेरी बात सुनो। आजसे तुम मेरे द्वारपाल हो जाओ। सत्पुत्र! मेरी आज्ञाके बिना कोई भी हठपूर्वक मेरे महलके भीतर प्रवेश न करने पाये, चाहे वह कहींसे भी आये, कोई भी हो। बेटा! यह मैंने तुमसे बिलकुल सत्य बात कही है।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! यों कहकर पार्वतीने गणेशके हाथमें एक सुदृढ़ छड़ी दे

दी। उस समय उनके सुन्दर रूपको

निहारकर पार्वती हर्षमग्न हो गयीं। उन्होंने परम प्रेमपूर्वक अपने पुत्रका मुख चूमा और कृपापरवश हो छातीसे लगा लिया। फिर दण्डधारी गणराजको अपने द्वारपर स्थापित कर दिया। बेटा नारद! तदनन्तर पार्वतीनन्दन महावीर गणेश पार्वतीकी हित-कामनासे हाथमें छड़ी लेकर गृह-द्वारपर पहरा देने लगे। उधर शिवा अपने पुत्र गणेशको अपने दरवाजेपर नियुक्त करके स्वयं सखियोंके साथ स्नान करने लगीं। मुनिश्रेष्ठ! इसी समय भगवान् शिव, जो परम कौतुकी तथा नाना प्रकारकी लीलाएँ रचनेमें निपुण हैं, द्वारपर आ पहुँचे। गणेश उन पार्वतीपतिको पहचानते तो थे नहीं, अतः बोल उठे— 'देव! माताकी आज्ञाके बिना तुम अभी भीतर न जाओ। माता स्नान करने बैठ गयी हैं। तुम कहाँ जाना चाहते हो? इस समय यहाँसे हट जाओ।' यों कहकर गणेशने उन्हें रोकनेके लिये छड़ी हाथमें ले ली। उन्हें ऐसा करते देख शिवजी बोले—'मूर्ख! तू किसे रोक रहा है? दुर्बुद्धे! क्या तू मुझे नहीं जानता? मैं शिवके अतिरिक्त और कोई नहीं हूँ।'

फिर महेश्वरके गण उसे समझाकर हटानेके लिये वहाँ आये और गणेशसे बोले—सुनो, हम मुख्य शिवगण ही द्वारपाल हैं और सर्वव्यापी भगवान् शंकरकी आज्ञासे तुम्हें हटानेके लिये यहाँ आये हैं। तुम्हें भी गण समझकर हमलोगोंने मारा नहीं है, अन्यथा तुम कबके मारे गये होते। अब कुशल इसीमें है कि तुम स्वतः ही दूर हट जाओ। क्यों व्यर्थ अपनी मृत्यु बुला रहे हो?

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! यों कहे जानेपर भी गिरिजानन्दन गणेश निर्भय ही बने रहे। उन्होंने शिवगणोंको फटकारा और दरवाजेको नहीं छोड़ा। तब उन सभी शिवगणोंने शिवजीके पास जाकर सारा वृत्तान्त उन्हें सुनाया। मुने! उनसे सब बातें सुनकर संसारके गतिस्वरूप अद्भुत लीला-विहारी महेश्वर अपने उन गणोंको डाँटकर कहने लगे।

महेश्वरने कहा—'गणो! यह कौन है, जो इतना उच्छृङ्खल होकर शत्रुकी भाँति बक रहा है? इस नवीन द्वारपालको दूर भगा दो। तुमलोग नपुंसककी तरह खड़े होकर उसका वृत्तान्त मुझे क्यों सुना रहे हो।' विचित्र लीला रचनेवाले अपने स्वामी शंकरके यों कहनेपर वे गण पुनः वहीं लौट आये। तदनन्तर गणेशद्वारा पुनः रोके जानेपर शिवजीने गणोंको आज्ञा दी कि 'तुम पता लगाओ, यह कौन है और क्यों

ऐसा कर रहा है ?' गणोंने पता लगाकर बताया कि 'ये श्रीगिरिजाके पुत्र हैं तथा द्वारपालके रूपमें बैठे हैं।' तब लीलारूप शंकरने विचित्र लीला करनी चाही तथा अपने गणोंका गर्व भी गलित करना चाहा। इसलिये गणोंको तथा देवताओंको बुलाकर गणेशजीसे भीषण युद्ध करवाया। पर वे कोई भी गणेशको पराजित न कर सके। तब स्वयं शूलपाणि महेश्वर आये।

गणेशजीने माताके चरणोंका स्मरण किया, तब शक्तिने उन्हें बल प्रदान कर दिया। सभी देवता शिवजीके पक्षमें आ गये, घोर युद्ध हुआ। अन्ततोगत्वा स्वयं शूलपाणि महेश्वरने आकर त्रिशूलसे गणेशजीका सिर काट दिया। जब यह समाचार पार्वतीजीको मिला, तब वे क्रुद्ध हो गयीं और बहुत-सी शक्तियोंको उत्पन्न करके उन्होंने बिना विचारे उन्हें प्रलय करनेकी आज्ञा दे दी। फिर तो शक्तियोंके द्वारा प्रलय मचायी जाने लगी। उन शक्तियोंका वह जाज्वल्यमान तेज सभी दिशाओंको दग्ध-सा किये डालता था। उसे देखकर वे सभी शिवगण भयभीत हो गये और भागकर दूर जा खड़े हुए।

मुने ! इसी समय तुम दिव्यदर्शन नारद वहाँ आ पहुँचे। तुम्हारा वहाँ आनेका अभिप्राय देवगणोंको सुख पहुँचाना था। तब तुमने मुझ देवताओंसहित शंकरको प्रणाम करके कहा कि इस विषयमें सबको मिलकर विचार करना चाहिये। तब वे सभी देवता तुझ महामनाके साथ सलाह करने लगे कि इस दुःखका शमन कैसे हो सकता है। फिर उन्होंने यही निश्चय किया कि जबतक गिरिजादेवी कृपा नहीं करेंगी तबतक सुख नहीं प्राप्त हो सकेगा। अब इस विषयमें और विचार करना व्यर्थ है। ऐसी धारणा करके तुम्हारे सहित सभी देवता और ऋषि भगवती शिवाके निकट गये और क्रोधकी शान्तिके लिये उन्हें प्रसन्न करने लगे। उन्होंने प्रेमपूर्वक उन्हें प्रसन्न करते हुए अनेकों स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुति करके बारंबार उनके चरणोंमें अभिवादन किया। फिर देवगणकी आज्ञासे ऋषि बोले।

देवर्षियोंने कहा—जगदम्बे ! तुम्हें नमस्कार है। शिवपत्नि ! तुम्हें प्रणाम है। चण्डिके ! तुम्हें हमारा अभिवादन प्राप्त हो। कल्याणि ! तुम्हें बारंबार प्रणाम है। अम्बे ! तुम्हीं आदिशक्ति हो। तुम्हीं सदा सारी सृष्टिकी निर्माणकर्त्री, पालिकाशक्ति और संहार करनेवाली हो। देवेशि ! तुम्हारे कोपसे सारी त्रिलोकी विकल हो रही है, अतः अब प्रसन्न हो जाओ और क्रोधको शान्त करो। देवि ! हमलोग तुम्हारे

चरणोंमें मस्तक झुकाते हैं।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! यों तुम सभी ऋषियोंद्वारा स्तुति किये जानेपर भी परादेवी पार्वतीने उनकी ओर क्रोधभरी दृष्टिसे ही देखा, किंतु कुछ कहा नहीं। तब उन ऋषियोंने पुनः उनके चरणकमलोंमें सिर झुकाया और भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर पार्वतीजीसे निवेदन किया।

ऋषियोंने कहा—देवि! अभी संहार होना चाहता है; अतः क्षमा करो, क्षमा करो। अम्बिके! तुम्हारे स्वामी शिव भी तो यहीं स्थित हैं, तनिक उनकी ओर तो दृष्टिपात करो। हमलोग, ये ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता तथा सारी प्रजा—सब तुम्हारे ही हैं और व्याकुल होकर अञ्जलि बाँधे तुम्हारे सामने खड़े हैं। परमेश्वरि! इन सबका अपराध क्षमा करो। शिवे! अब इन्हें शान्ति प्रदान करो।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! सभी देवर्षि यों कहकर अत्यन्त दीनभावसे व्याकुल हो हाथ जोड़कर चण्डिकाके सम्मुख खड़े हो गये। उनका ऐसा कथन सुनकर चण्डिका प्रसन्न हो गयीं। उनके हृदयमें करुणाका संचार हो आया। तब वे ऋषियोंसे बोलीं।

देवीने कहा—ऋषियो! यदि मेरा पुत्र जीवित हो जाय और वह तुमलोगोंके मध्य पूजनीय मान लिया जाय तो संहार नहीं होगा। जब तुमलोग उसे 'सर्वाध्यक्ष'का पद प्रदान कर दोगे तभी लोकमें शान्ति हो सकती है, अन्यथा तुम्हें सुख नहीं प्राप्त हो सकता।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! पार्वतीके यों कहनेपर तुम सभी ऋषियोंने उन देवताओंके पास आकर सारा वृत्तान्त कह सुनाया। उसे सुनकर इन्द्र आदि सभी देवताओंके चेहरेपर उदासी छा गयी। वे शंकरजीके पास गये और हाथ जोड़कर उनके चरणोंमें नमस्कार करके सारा समाचार निवेदन कर दिया। देवताओंका कथन सुनकर शिवजीने कहा—'ठीक है, जिस प्रकार सारी त्रिलोकीको सुख मिल सके वही करना चाहिये। अतः अब उत्तर दिशाकी ओर जाना चाहिये और जो जीव पहले मिले, उसका सिर काटकर उस बालकके शरीरपर जोड़ देना चाहिये।'

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! तदनन्तर शिवजीकी आज्ञाका पालन करनेवाले उन देवताओंने वह सारा कार्य सम्पन्न किया। उन्होंने उस शिशु-शरीरको धो-पोंछकर विधिवत् उसकी पूजा की। फिर वे उत्तर दिशाकी ओर गये। वहाँ उन्हें पहले-पहल एक दाँतवाला एक हाथी मिला। उन्होंने उसका सिर लाकर उस शरीरपर जोड़ दिया। हाथीके उस सिरको संयुक्त कर देनेके पश्चात् सभी देवताओंने भगवान् शिव आदिको प्रणाम करके कहा कि हमलोगोंने अपना काम पूरा कर दिया। अब जो करना शेष है, उसे आपलोग पूर्ण करें।

ब्रह्माजी कहते हैं—तब शिवाज्ञा-पालनसम्बन्धिनी देवताओंकी बात सुनकर सभी देवों और पार्षदोंको महान् आनन्द हुआ। तत्पश्चात् ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवता अपने स्वामी निर्गुणस्वरूप भगवान् शंकरको प्रणाम करके बोले—'स्वामिन्! आप महात्माके जिस तेजसे हम सभी उत्पन्न हुए हैं, आपका वही तेज वेदमन्त्रके अभियोगसे इस बालकमें प्रवेश करे।' इस प्रकार सभी देवताओंने मिलकर वेदमन्त्रद्वारा

जलको अभिमन्त्रित किया, फिर शिवजीका

स्मरण करके उस उत्तम जलको बालकके शरीरपर छिड़क दिया। उस जलका स्पर्श होते ही वह बालक शिवेच्छासे शीघ्र ही चेतनायुक्त होकर जीवित हो गया और सोये हुएकी तरह उठ बैठा। वह सौभाग्यशाली बालक अत्यन्त सुन्दर था। उसका मुख हाथीका-सा था। शरीरका रंग हरा-लाल था। चेहरेपर प्रसन्नता खेल रही थी। उसकी आकृति कमनीय थी और उसकी सुन्दर प्रभा फैल रही थी। मुनीश्वर! पार्वतीनन्दन उस बालकको जीवित देखकर वहाँ उपस्थित सभी लोग आनन्दमग्न हो गये और सारा दुःख विलीन हो गया। तब हर्ष-विभोर होकर सभी लोगोंने उस बालकको पार्वतीजीको दिखाया। अपने पुत्रको जीवित देखकर पार्वतीजी परम प्रसन्न हुईं।

(अध्याय १३—१८)

☆

पार्वतीद्वारा गणेशजीको वरदान, देवोंद्वारा उन्हें अग्रपूज्य माना जाना, शिवजीद्वारा गणेशको सर्वाध्यक्षपद प्रदान और गणेश-चतुर्थीव्रतका वर्णन, तत्पश्चात् सभी देवताओंका उनकी स्तुति करके हर्षपूर्वक अपने-अपने स्थानको लौट जाना

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! जब विकृत स्वरूपवाले गिरिजा-पुत्र गजानन व्यग्रतारहित होकर जीवित हो उठे, तब गणनायक देवोंने उनका अभिषेक किया। अपने पुत्रको देखकर पार्वतीदेवी आनन्दमग्न हो गयीं और उन्होंने हर्षातिरेकसे उस बालकको दोनों हाथोंसे पकड़कर छातीसे लगा लिया। फिर अम्बिकाने प्रसन्न होकर अपने पुत्र गणेशको अनेक प्रकारके वस्त्र और आभूषण प्रदान किये। तदनन्तर सिद्धियोंने अनेकों विधि-विधानसे उनका पूजन किया और माताने अपने सर्वदुःखहारी हाथसे उनके अङ्गोंका स्पर्श किया। इस प्रकार शिव-पत्नी पार्वतीदेवीने अपने पुत्रका सत्कार करके उसका मुख चूमा और प्रेम-पूर्वक उसे वरदान देते हुए कहा—'बेटा! इस समय तुझे बड़ा कष्ट झेलना पड़ा है। किंतु अब तू कृतकृत्य हो गया है। तू धन्य है। अबसे सम्पूर्ण देवताओंमें तेरी अग्रपूजा होती रहेगी और तुझे कभी दुःखका सामना

नहीं करना पड़ेगा। चूँकि इस समय तेरे मुखपर सिन्दूर दीख रहा है। इसलिये मनुष्योंको सदा सिन्दूरसे तेरी पूजा करनी चाहिये। जो मनुष्य पुष्प, चन्दन, सुन्दर गन्ध, नैवेद्य, रमणीय आरती, ताम्बूल और दानसे तथा परिक्रमा और नमस्कार करके विधि-पूर्वक तेरी पूजा करेगा, उसे सारी सिद्धियाँ हस्तगत हो जायँगी और उसके सभी प्रकारके विघ्न नष्ट हो जायँगे—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है।'

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! महेश्वरीदेवीने अपने पुत्र गणेशसे यों कहकर उसे नाना प्रकारकी वस्तुएँ प्रदान करके पुनः उसका अभिनन्दन किया। विप्र! तब गिरिजाकी कृपासे उसी क्षण देवताओं और शिवगणोंका मन विशेषरूपसे शान्त हो गया। तदनन्तर इन्द्र आदि देवताओंने हर्षातिरेकसे शिवाकी स्तुति की और उन्हें प्रसन्न करके वे भक्तिभावित चित्तसे गणेशदेवको लेकर शिवजीके समीप चले। वहाँ पहुँचकर उन्होंने त्रिलोकीकी कल्याण-कामनासे भवानीके उस बालकको शिवजीकी गोदमें बैठा दिया। तब शिवजी भी उस बालकके मस्तकपर अपना कर-कमल फेरते हुए देवताओंसे बोले—'यह मेरा दूसरा पुत्र है।' तत्पश्चात् गणेशने भी उठकर शिवजीके चरणोंमें अभिवादन किया। फिर पार्वतीको, मुझको, विष्णुको और नारद आदि सभी ऋषियोंको प्रणाम करके आगे खड़े होकर उन्होंने कहा—'यों अभिमान करना मनुष्योंका स्वभाव ही है, अतः आपलोग मेरा अपराध क्षमा करें।' तब मैं, शंकर और विष्णु—इन तीनों देवताओंने एक साथ ही प्रेमपूर्वक उन्हें उत्तम वर प्रदान करते हुए कहा—'सुरवरो! जैसे त्रिलोकीमें हम तीनों देवोंकी पूजा होती है, उसी तरह तुम सबको इन गणेशका भी पूजन करना चाहिये। मनुष्योंको चाहिये कि पहले इनकी पूजा करके तत्पश्चात् हमलोगोंका पूजन करें। ऐसा करनेसे हमलोगोंकी पूजा सम्पन्न हो जायगी। देवगणो! यदि कहीं इनकी पूजा पहले न करके अन्य देवका पूजन किया गया तो उस पूजनका फल नष्ट हो जायगा—उसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।'

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! तदनन्तर ब्रह्मा, विष्णु और शंकर आदि सभी देवताओंने मिलकर पार्वतीको प्रसन्न करनेके लिये वहीं गणेशको 'सर्वाध्यक्ष' घोषित कर दिया। उसी समय शिवजी परम प्रसन्न चित्तसे पुनः गणेशको लोकमें

सर्वदा सुख देनेवाले अनेकों वर प्रदान करते हुए बोले—

शिवजीने कहा—गिरिजानन्दन ! निस्संदेह मैं तुझपर परम प्रसन्न हूँ। मेरे प्रसन्न हो जानेपर अब तू सारे जगत्‌को ही प्रसन्न हुआ समझ। अब कोई भी तेरा विरोध नहीं कर सकता। तू शक्तिका पुत्र है, अतः अत्यन्त तेजस्वी है। बालक होनेपर भी तूने महान् पराक्रम प्रकट किया है, इसलिये तू सदा सुखी रहेगा। विघ्ननाशके कार्यमें तेरा नाम सबसे श्रेष्ठ होगा। तू सबका पूज्य है, अतः अब मेरे सम्पूर्ण गणोंका अध्यक्ष हो जा।

इतना कहनेके पश्चात् महात्मा शंकर अत्यन्त प्रसन्नताके कारण गणेशको पुनः वरदान देते हुए बोले—'गणेश्वर ! तू भाद्रपद मासके कृष्णपक्षकी चतुर्थी तिथिको चन्द्रमाका शुभोदय होनेपर उत्पन्न हुआ है। जिस समय गिरिजाके सुन्दर चित्तसे तेरा रूप प्रकट हुआ, उस समय रात्रिका प्रथम प्रहर बीत रहा था। इसलिये उसी दिनसे आरम्भ करके उसी तिथिमें तेरा उत्तम व्रत करना चाहिये। यह व्रत परम शोभन तथा सम्पूर्ण सिद्धियोंका प्रदाता है। वर्षके अन्तमें जब पुनः वही चतुर्थी आ जाय तबतक मेरे कथनानुसार तेरे व्रतका पालन करना चाहिये। जिन्हें संसारमें अनेकों प्रकारके अनुपम सुखोंकी कामना हो, उन्हें चतुर्थीके दिन भक्तिपूर्वक विधिसहित तेरा पूजन करना चाहिये। जब मार्गशीर्षमासके कृष्णपक्षकी चतुर्थी आये तब उस दिन प्रातःकाल स्नान करके व्रतके लिये ब्राह्मणोंसे निवेदन करे। पूर्वोक्त विधिसे उपवास करे। फिर धातुकी, मूँगेकी, श्वेत मदारकी अथवा मिट्टीकी मूर्ति बनाकर उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करे और भक्तिभावसे नाना प्रकारके दिव्य गन्धों, चन्दनों और पुष्पोंसे उसकी पूजा करे। पुनः रात्रिका प्रथम प्रहर बीत जानेपर स्नान करके दूर्वादलोंसे पूजन करना चाहिये। यह दूर्वा जड़रहित, बारह अंगुल लम्बी और तीन गाँठोंवाली होनी चाहिये। ऐसी एक सौ एक अथवा इक्कीस दूर्वासे उस स्थापित प्रतिमाकी पूजा करे। तत्पश्चात् धूप, दीप, अनेक प्रकारके नैवेद्य, ताम्बूल, अर्घ्य और उत्तम-उत्तम पदार्थोंद्वारा गणेशकी पूजा करे और स्तवन करके उसके आगे प्रणिपात करे। यों गणेशकी पूजा करनेके पश्चात् बालचन्द्रमाका पूजन करे। तत्पश्चात् हर्षपूर्वक ब्राह्मणोंकी पूजा करके उन्हें मिष्टान्नका भोजन कराये। उनके भोजन कर लेनेके बाद स्वयं भी नमकरहित मिष्टान्नका ही प्रसाद पाये। फिर गणेशका स्मरण करके अपने सभी नियमोंका विसर्जन कर दे। इस प्रकार करनेसे यह शुभव्रत पूर्ण होता है।

'बेटा ! यों व्रत करते-करते जब वर्ष पूरा हो जाय, तब व्रती मनुष्यको चाहिये कि वह व्रतकी पूर्तिके लिये व्रतोद्यापनका कार्य भी सम्पन्न करे। इसमें मेरे आज्ञानुसार बारह ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। व्रतीको चाहिये कि वह एक कलश स्थापित करके उसपर तेरी मूर्तिकी पूजा करे। तत्पश्चात् वेदविधिके अनुसार वेदीका निर्माण करके उसपर अष्टदल कमल बनाये, फिर उसीपर उनकी कंचुसी छोड़कर हवन करे। पुनः मूर्तिके सामने दो स्त्रियों और दो बालकोंको बिठाकर विधिपूर्वक उनकी पूजा करे और सादर उन्हें भोजन कराये। रातमें जागरण

करे। प्रातःकाल पुनः पूजन करके पुनरागमनके लिये विसर्जन कर दे। बालकोंसे आशीर्वाद ग्रहण करे, स्वस्तिवाचन कराये और व्रतकी पूर्तिके लिये पुष्पाञ्जलि निवेदित करे। फिर नमस्कार करके नाना प्रकारके कार्योंकी कल्पना करे। इस प्रकार जो इस व्रतको पूर्ण करता है, उसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। गणेश! जो श्रद्धासहित अपनी शक्तिके अनुसार नित्य तेरी पूजा करेगा, उसके सभी मनोरथ सफल हो जायँगे। मनुष्योंको सिन्दूर, चन्दन, चावल, केतकी-पुष्प आदि अनेकों उपचारोंद्वारा गणेश्वरका पूजन करना चाहिये। यों जो लोग नाना प्रकारके उपचारोंसे भक्तिपूर्वक तेरी पूजा करेंगे, उनके विघ्नोंका सदाके लिये नाश हो जायगा और उनकी कार्यसिद्धि होती रहेगी। सभी वर्णके लोगोंको, विशेषकर स्त्रियोंको यह पूजा अवश्य करनी चाहिये तथा अभ्युदयकी कामना करनेवाले राजाओंके लिये भी यह व्रत अवश्यकर्तव्य है। व्रती मनुष्य जिस-जिस वस्तुकी कामना करता है, उसे निश्चय वह वस्तु प्राप्त हो जाती है; अतः जिसे किसी वस्तुकी अभिलाषा हो, उसे अवश्य तेरी सेवा करनी चाहिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! जब शिवजीने महात्मा गणेशको इस प्रकार वर प्रदान किया, तब सम्पूर्ण देवताओं, श्रेष्ठ ऋषियों और शिवके प्यारे समस्त गणोंने 'तथास्तु' कहकर उसका समर्थन किया और अत्यन्त विधिपूर्वक गणाधीशका पूजन किया। तत्पश्चात् शिवगणोंने आदरपूर्वक नाना प्रकारकी पूजनसामग्रीसे गणेश्वरकी विशेषरूपसे अर्चना की और उनके चरणोंमें प्रणाम किया। मुनीश्वर! उस समय गिरिजादेवीको जो आनन्द प्राप्त हुआ, उसका वर्णन मेरे चारों मुखोंसे भी नहीं हो सकता; तब फिर मैं उसे कैसे बताऊँ। उस अवसरपर देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं। अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। गन्धर्वश्रेष्ठ गान करने लगे और पुष्पोंकी वर्षा होने लगी। इस प्रकार गणेशके गणाधीशपदपर प्रतिष्ठित होनेपर वहाँ महान् उत्सव मनाया गया। सारे जगत्में शान्ति स्थापित हो गयी और सारा दुःख जाता रहा। नारद! शिव और पार्वतीको तो विशेष आनन्द प्राप्त हुआ और सर्वत्र अनेक प्रकारके सुखदायक मङ्गल होने लगे। तदनन्तर सम्पूर्ण देवगण और ऋषिगण जो वहाँ पधारे हुए थे, वे सभी शिवकी आज्ञासे अपने-अपने स्थानको चले। उस समय वे शिवजीकी स्तुति करके गणेश और पार्वतीकी बारंबार प्रशंसा कर रहे थे और 'कैसा अद्भुत युद्ध हुआ' यों परस्पर वार्तालाप करते हुए चले जा रहे थे। इधर जब गिरिजादेवीका क्रोध शान्त हो गया, तब शिवजी भी, जो स्वात्माराम होते हुए भी सदा भक्तोंका कार्य सिद्ध करनेके लिये उद्यत रहते हैं, गिरिजाके संनिकट गये और लोकोंकी हितकामनासे पूर्ववत् नाना प्रकारके सुखदायक कार्य करने लगे। तब मैं ब्रह्मा और विष्णु दोनों भक्तिपूर्वक शिव-शिवाकी सेवा करके शिवकी आज्ञा ले अपने-अपने धामको लौट आये। जो मनुष्य जितेन्द्रिय होकर इस परम माङ्गलिक आख्यानको श्रवण करता है, वह सम्पूर्ण मङ्गलोंका भागी होकर मङ्गल-भवन हो जाता है। इसके श्रवणसे पुत्रहीनको पुत्रकी, निर्धनको धनकी, भार्यार्थीको भार्याकी,

प्रजार्थीको प्रजाकी, रोगीको आरोग्यकी और अभागेको सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। जिस स्त्रीका पुत्र और धन नष्ट हो गया हो और पति परदेश चला गया हो, उसे उसका पति मिल जाता है। जो शोक-सागरमें डूब रहा हो, वह इसके श्रवणसे निस्संदेह शोकरहित हो जाता है। यह गणेश-चरित्रसम्बन्धी ग्रन्थ जिसके घरमें सदा वर्तमान रहता है, वह मङ्गलसम्पन्न होता है—इसमें तनिक भी संशयकी गुंजाइश नहीं है। जो यात्राके अवसरपर अथवा किसी भी पुण्यपर्वपर इसे मन लगाकर सुनता है, वह श्रीगणेशजीकी कृपासे सम्पूर्ण अभीष्ट फल प्राप्त कर लेता है।

(अध्याय १९)

☆

स्वामिकार्तिक और गणेशकी बाल-लीला, दोनोंका परस्पर विवाहके विषयमें विवाद, शिवजीद्वारा पृथ्वी-परिक्रमाका आदेश, कार्तिकेयका प्रस्थान, गणेशका माता-पिताकी परिक्रमा करके उनसे पृथ्वीपरिक्रमा स्वीकृत कराना, विश्वरूपकी सिद्धि और बुद्धि नामक दोनों कन्याओंके साथ गणेशका विवाह और उनसे क्षेम तथा लाभ नामक दो पुत्रोंकी उत्पत्ति, कुमारका पृथ्वीपरिक्रमा करके लौटना और क्षुब्ध होकर क्रौंचपर्वतपर चला जाना, कुमारखण्डके श्रवणकी महिमा

नारदजीने पूछा—तात! मैंने गणेशके जन्मसम्बन्धी अनुपम वृत्तान्त तथा परम पराक्रमसे विभूषित उनका दिव्य चरित्र भी सुन लिया। सुरेश्वर! उसके बाद कौन-सी घटना घटी, उसका वर्णन कीजिये; क्योंकि पिताजी! शिव और पार्वतीका उज्ज्वल यश महान् आनन्द प्रदान करनेवाला है।

ब्रह्माजीने कहा—मुनिश्रेष्ठ! तुम तो बड़े कारुणिक हो। तुमने बड़ी उत्तम बात पूछी है। ऋषिसत्तम! अच्छा, अब मैं उसका वर्णन करता हूँ, तुम ध्यान लगाकर सुनो। विप्रेन्द्र! शिव और पार्वती अपने दोनों पुत्रोंकी बाललीला देख-देखकर महान् प्रेममें मग्न रहने लगे। पुत्रोंका लाड़-प्यार करनेके कारण माता-पिताका सुख दिनों-दिन बढ़ता जाता था और वे दोनों कुमार प्रीतिपूर्वक आनन्दके साथ तरह-तरहकी लीलाएँ करते थे। मुनीश्वर! वे दोनों बालक स्वामिकार्तिक और गणेश भक्ति-पूरित चित्तसे सदा माता-पिताकी परिचर्या किया करते थे। इससे माता-पिताका महान् स्नेह षण्मुख और गणेशपर शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी भाँति दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया। एक समय शिव और शिवा दोनों प्रेमपूर्वक एकान्तमें बैठकर यों विचार करने लगे कि 'हमारे ये दोनों पुत्र विवाहके योग्य हो गये, अब इन दोनोंका शुभ विवाह कैसे सम्पन्न हो। हमें तो जैसे षडानन प्यारा है, वैसे ही गणेश भी है।' ऐसी चिन्तामें पड़कर वे दोनों लीलावश आनन्दमग्न हो गये।

मुने ! माता-पिताके विचारको जानकर उन दोनों पुत्रोंके मनमें भी विवाहकी इच्छा जाग उठी। वे दोनों 'पहले मैं विवाह करूँगा, पहले मैं विवाह करूँगा'—यों बारंबार कहते हुए परस्पर विवाद करने लगे। तब जगत्‌के अधीश्वर वे दोनों दम्पति पुत्रोंकी बात सुनकर लौकिक आचारका आश्रय ले परम विस्मयको प्राप्त हुए। कुछ समय बाद उन्होंने अपने दोनों पुत्रोंको बुलाया और उनसे इस प्रकार कहा।

शिव-पार्वती बोले—सुपुत्रो ! हमलोगोंने पहलेसे ही एक ऐसा नियम बना रखा है, जो तुम दोनोंके लिये सुखदायक होगा। अब हम यथार्थरूपसे उसका वर्णन करते हैं, तुमलोग प्रेमपूर्वक सुनो। प्यारे बच्चो ! हमें तो तुम दोनों पुत्र समान ही प्यारे हो; किसीपर विशेष प्रेम हो—ऐसी बात नहीं है; अतः हमने तुमलोगोंके विवाहके विषयमें एक ऐसी शर्त बनायी है, जो दोनोंके लिये कल्याणकारिणी है, (वह शर्त यह है कि) जो सारी पृथ्वीकी परिक्रमा करके पहले लौट आयेगा, उसीका शुभ विवाह पहले किया जायगा।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! माता-पिताकी यह बात सुनकर शरजन्मा महाबली कार्तिकेय तुरंत ही अपने स्थानसे पृथ्वीकी परिक्रमा करनेके लिये चल दिये। परंतु अगाध-बुद्धि-सम्पन्न गणेश वहीं खड़े रह गये। वे अपनी उत्तम बुद्धिका आश्रय ले बारंबार मनमें विचार करने लगे कि 'अब मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? परिक्रमा तो मुझसे हो नहीं सकेगी; क्योंकि कोसभर चलनेके बाद आगे मुझसे चला जायगा नहीं। फिर सारी पृथ्वीकी परिक्रमा करके मैं कैसे सुख प्राप्त कर सकूँगा ?' ऐसा विचारकर गणेशने जो कुछ किया, उसे सुनो। उन्होंने अपने घर लौटकर विधिपूर्वक स्नान किया और माता-पितासे इस प्रकार कहा।

गणेशजी बोले—पिताजी एवं माताजी ! मैंने आपलोगोंकी पूजा करनेके लिये यहाँ दो आसन स्थापित किये हैं। आप दोनों इसपर विराजिये और मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! गणेशकी बात सुनकर पार्वती और परमेश्वर उनकी पूजा ग्रहण करनेके लिये आसनपर विराजमान हो गये। तब गणेशने उनकी विधिपूर्वक पूजा की और बारंबार प्रणाम करते हुए उनकी सात बार प्रदक्षिणा की। बेटा नारद ! गणेश तो बुद्धिसागर थे ही, वे हाथ जोड़कर प्रेममग्न माता-पिताकी बहुत

प्रकारसे स्तुति करके बोले।

गणेशजीने कहा—हे माताजी ! तथा हे पिताजी ! आपलोग मेरी उत्तम बात सुनिये और शीघ्र ही मेरा शुभ विवाह कर दीजिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! महात्मा गणेशका ऐसा वचन सुनकर वे दोनों माता-पिता महाबुद्धिमान् गणेशसे बोले।

शिवा-शिवने कहा—बेटा ! तू पहले काननोंसहित इस सारी पृथ्वीकी परिक्रमा तो कर आ। कुमार गया हुआ है, तू भी जा और उससे पहले लौट आ (तब तेरा विवाह पहले कर दिया जायगा)।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! नियमपरायण गणेश माता-पिताकी ऐसी बात सुनकर कुपित हो तुरंत बोल उठे।

गणेशजीने कहा—हे माताजी ! तथा हे पिताजी ! आप दोनों सर्वश्रेष्ठ, धर्मरूप और महाबुद्धिमान् हैं, अतः धर्मानुसार मेरी बात सुनिये। मैंने सात बार पृथ्वीकी परिक्रमा की है, फिर आपलोग ऐसी बात क्यों कह रहे हैं ?

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! शिव-पार्वती तो बड़े लीलानन्दी ही ठहरे, वे गणेशका कथन सुन लौकिक गतिका आश्रय लेकर बोले।

शिव-पार्वतीने कहा—पुत्र ! तूने समुद्रपर्यन्त विस्तारवाली बड़े-बड़े काननोंसे युक्त इस सप्तद्वीपवती विशाल पृथ्वीकी परिक्रमा कब कर ली ?

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! जब शिव-पार्वतीने ऐसा कहा, तब उसे सुनकर महान् बुद्धिसम्पन्न गणेश बोले।

गणेशजीने कहा—माताजी एवं पिताजी ! मैंने अपनी बुद्धिसे आप दोनों शिव-पार्वतीकी पूजा करके प्रदक्षिणा कर ली है, अतः मेरी समुद्रपर्यन्त पृथ्वीकी परिक्रमा पूरी हो गयी। धर्मके संग्रहभूत वेदों और शास्त्रोंमें जो ऐसे वचन मिलते हैं, वे सत्य हैं अथवा असत्य ? (वे वचन हैं कि) जो पुत्र माता-पिताकी पूजा करके उनकी प्रदक्षिणा करता है, उसे पृथ्वी-परिक्रमाजनित फल सुलभ हो जाता है। जो माता-पिताको घरपर छोड़कर तीर्थ-यात्राके लिये जाता है, वह माता-पिताकी हत्यासे मिलनेवाले पापका भागी होता है; क्योंकि पुत्रके लिये माता-पिताका चरण-सरोज ही महान् तीर्थ है। अन्य तीर्थ तो दूर जानेपर प्राप्त होते हैं, परंतु धर्मका साधनभूत यह तीर्थ तो पासमें ही सुलभ है। पुत्रके लिये (माता-पिता) और स्त्रीके लिये (पति) ये दोनों सुन्दर तीर्थ घरमें ही वर्तमान हैं। ऐसा जो वेद-शास्त्र निरन्तर उद्घोषित करते रहते हैं, उसे फिर आपलोग असत्य कर दीजिये। (और यदि वह असत्य हो जायगा तो) निस्संदेह वेद भी असत्य हो जायगा और वेदद्वारा वर्णित आपका यह स्वरूप भी झूठा समझा जायगा। इसलिये या तो शीघ्र ही मेरा शुभ विवाह कर दीजिये अथवा यों कह दीजिये कि वेद-शास्त्र झूठे हैं। आप दोनों धर्मरूप हैं, अतः भली-भाँति विचार करके इन दोनोंमें जो परमोत्तम प्रतीत हो, उसे प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! तब जो बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ, उत्तम बुद्धिसम्पन्न तथा महान् ज्ञानी हैं, वे पार्वतीनन्दन गणेश इतना कहकर चुप हो गये। उधर वे दोनों पति-पत्नी जगदीश्वर शिव-पार्वती गणेशके वचन सुनकर परम विस्मित हुए। तदनन्तर वे यथार्थभाषी एवं अद्भुत बुद्धिवाले अपने पुत्र गणेशकी प्रशंसा करते हुए बोले।

शिवा-शिवने कहा—बेटा ! तू महान् आत्मबलसे सम्पन्न है, इसीसे तुझमें निर्मल बुद्धि उत्पन्न हुई है। तूने जो बात कही है, वह बिलकुल सत्य है, अन्यथा नहीं है। दुःखका अवसर आनेपर जिसकी बुद्धि विशिष्ट हो जाती है, उसका दुःख उसी प्रकार विनष्ट हो जाता है, जैसे सूर्यके उदय होते ही अन्धकार। जिसके पास बुद्धि है, वही बलवान् है; बुद्धिहीनके पास बल कहाँ। पुत्र ! वेद-शास्त्र और पुराणोंमें बालकके लिये धर्म-पालनकी जैसी बात कही गयी है, वह सब तूने पूरी कर ली। तूने जो बात की है, वह दूसरा कौन कर सकता है। हमने तेरी वह बात मान ली, अब इसके विपरीत नहीं करेंगे।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! यों कहकर

उन दोनोंने बुद्धिसागर गणेशको सान्त्वना दी और फिर वे उनके विवाहके सम्बन्धमें उत्तम विचार करने लगे। इसी समय जब प्रसन्न बुद्धिवाले प्रजापति विश्वरूपको शिवजीके उद्योगका पता चला, तब उसपर विचार करके उन्हें परम सुख प्राप्त हुआ। उन प्रजापति विश्वरूपके दिव्यरूप-सम्पन्न एवं सर्वाङ्गशोभना दो सुन्दरी कन्याएँ थीं, जिनका नाम 'सिद्धि' और 'बुद्धि' था। भगवान् शंकर और गिरिजाने उन दोनोंके साथ हर्षपूर्वक गणेशका विवाह-संस्कार सम्पन्न कराया। उस विवाहके अवसरपर सम्पूर्ण देवता प्रसन्न होकर पधारे। उस समय शिव और पार्वतीका जैसा मनोरथ था, उसीके अनुसार विश्वकर्माने वह विवाह किया। उसे देखकर ऋषियों तथा देवताओंको परम हर्ष प्राप्त हुआ। मुने ! गणेशको भी उन दोनों पत्नियोंके मिलनेसे जो सुख प्राप्त हुआ, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। कुछ कालके पश्चात् महात्मा गणेशके उन दोनों पत्नियोंसे दो दिव्य पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें गणेशपत्नी सिद्धिके गर्भसे 'क्षेम' नामक पुत्र पैदा हुआ और बुद्धिके गर्भसे जिस परम सुन्दर पुत्रने जन्म लिया, उसका नाम 'लाभ' हुआ। इस प्रकार जब गणेश अचिन्त्य सुखका भोग करते हुए निवास करने लगे, तब दूसरे पुत्र स्वामिकार्तिक पृथ्वीकी परिक्रमा करके लौटे। उस समय नारदजीने आकर कुमार स्कन्दको सब समाचार सुनाये। उन्हें सुनकर कुमारके मनमें बड़ा क्षोभ हुआ और वे माता-पिता शिवा-शिवके द्वारा रोके जानेपर भी न रुककर क्रौञ्चपर्वतकी ओर चले गये।

देवर्षे ! उसी दिनसे शिव-पुत्र स्वामि-कार्तिकका कुमारत्व (कुँआरपना) प्रसिद्ध

हो गया। उनका नाम त्रिलोकीमें विख्यात हो गया। वह शुभदायक, सर्वपापहारी, पुण्यमय और उत्कृष्ट ब्रह्मचर्यकी शक्ति प्रदान करनेवाला है। कार्तिककी पूर्णिमाको सभी देवता, ऋषि, तीर्थ और मुनीश्वर सदा कुमारका दर्शन करनेके लिये (क्रौञ्च-पर्वतपर) जाते हैं। जो मनुष्य कार्तिकी पूर्णिमाके दिन कृत्तिका नक्षत्रका योग होनेपर स्वामिकार्तिकका दर्शन करता है, उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं और उसे मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है। इधर स्कन्दका बिछोह हो जानेपर उमाको महान् दुःख हुआ। उन्होंने दीनभावसे अपने स्वामी शिवजीसे कहा—'प्रभो! आप मुझे साथ लेकर वहाँ चलिये।' तब प्रियाको सुख देनेके निमित्त स्वयं भगवान् शंकर अपने एक अंशसे उस पर्वतपर गये और सुख-दायक मल्लिकार्जुन नामक ज्योतिर्लिङ्गके रूपमें वहाँ प्रतिष्ठित हो गये। वे सत्पुरुषोंकी गति तथा अपने सभी भक्तोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाले हैं। वे आज भी शिवाके सहित उस पर्वतपर विराजमान हैं।

बेटा नारद! वे दोनों शिवा-शिव भी पुत्र-स्नेहसे विह्वल होकर प्रत्येक पर्वपर कुमारको देखनेके लिये जाते हैं। अमावास्याके दिन वहाँ स्वयं शम्भु पधारते हैं और पूर्णिमाके दिन पार्वतीजी जाती हैं। मुनीश्वर! तुमने स्वामिकार्तिक और गणेशका जो-जो वृत्तान्त मुझसे पूछा था, वह सब मैंने तुम्हें कह सुनाया। इसे सुनकर बुद्धिमान् मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है और उसकी सभी शुभ कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। जो मनुष्य इस चरित्रको पढ़ता अथवा पढ़ाता है एवं सुनता अथवा सुनाता है, निस्संदेह उसके सभी मनोरथ सफल हो जाते हैं। यह अनुपम आख्यान पापनाशक, कीर्तिप्रद, सुखवर्धक, आयु बढ़ानेवाला, स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला, पुत्र-पौत्रकी वृद्धि करनेवाला, मोक्षप्रद, शिवजीके उत्तम ज्ञानका प्रदाता, शिव-पार्वतीमें प्रेम उत्पन्न करनेवाला और शिवभक्तिवर्धक है। यह कल्याणकारक, शिवजीके अद्वैत ज्ञानका दाता और सदा शिवमय है; अतः मोक्षकामी एवं निष्काम भक्तोंको सदा इसका श्रवण करना चाहिये।

(अध्याय २०)

☆

॥ रुद्रसंहिताका कुमारखण्ड सम्पूर्ण ॥

☆

रुद्रसंहिता, पञ्चम (युद्ध) खण्ड

तारकपुत्र तारकाक्ष, विद्युन्माली और कमलाक्षकी तपस्या, ब्रह्माद्वारा उन्हें वर-प्रदान, मयद्वारा उनके लिये तीन पुरोंका निर्माण और उनकी सजावट-शोभाका वर्णन

नारदजीने कहा—पिताजी ! जो गणेश और स्वामिकार्तिककी उत्तम कथाओंसे ओतप्रोत तथा आनन्द प्रदान करनेवाला है, भगवान् शंकरके गृहस्थ-सम्बन्धी उस उत्तम चरित्रको हमने सुन लिया। अब आप कृपा करके उस परमोत्तम चरित्रका वर्णन कीजिये, जिसमें रुद्रदेवने खेल-ही-खेलमें दुष्टोंका वध किया था। महान् वीर्यशाली भगवान् शंकरने देव-द्रोहियोंके तीनों नगरोंको एक ही साथ एक ही बाणसे किस कारण एवं कैसे भस्म कर डाला था? भगवन्! जिनके भालमें बालचन्द्रमा सुशोभित है तथा जो सदा मायाके साथ विहार करनेवाले हैं, उन भगवान् शंकरका चरित तो देवर्षियोंको आनन्द प्रदान करनेवाला है। आप वह सारा चरित विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।

ब्रह्माजी बोले—ऋषिश्रेष्ठ ! पहले किसी समय व्यासने सनत्कुमारसे ऐसा ही प्रश्न किया था। उस समय सनत्कुमारने जो कुछ उत्तर दिया था, वही मैं वर्णन करता हूँ।

उस समय सनत्कुमारने कहा था—महाबुद्धिमान् व्यासजी ! विश्वका संहार करनेवाले चन्द्रमौलि शिवने जिस प्रकार एक ही बाणसे त्रिपुरको भस्म किया था, वह चरित्र कहता हूँ; सुनो। मुनीश्वर ! जब शिवकुमार स्कन्दने तारकासुरको मार डाला, तब उसके तीनों पुत्रोंको महान् संताप हुआ। उनमें तारकाक्ष सबसे ज्येष्ठ था, विद्युन्माली मझला था और छोटेका नाम कमलाक्ष था। उन तीनोंमें समान बल था। वे जितेन्द्रिय, सदा कार्यके लिये उद्यत, संयमी, सत्यवादी, दृढ़चित्त, महान् वीर और देवोंसे द्रोह करनेवाले थे। उन तीनोंने सभी उत्तमोत्तम एवं मनोहर भोगोंका परित्याग करके मेरुपर्वतकी एक कन्दरामें जाकर परम अद्भुत तपस्या आरम्भ की। वहाँ उन्होंने हजारों वर्षोंतक ब्रह्माजीकी प्रसन्नताके लिये अत्यन्त उग्र तप किया। तब सुर और असुरोंके गुरु महायशस्वी ब्रह्माजी उनकी तपस्यासे अत्यन्त संतुष्ट होकर उन्हें वर देनेके लिये प्रकट हुए।

ब्रह्माजीने कहा—महादैत्यो ! मैं तुम-लोगोंके तपसे प्रसन्न हो गया हूँ, अतः

तुम्हारी कामनाके अनुसार तुम्हें सभी वर प्रदान करूँगा। देवद्रोहियो ! मैं सबकी तपस्याके फलदाता और सर्वदा सब कुछ करनेमें समर्थ हूँ; अतः बताओ, तुमलोगोंने

इतना घोर तप किसलिये किया है ?

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने ! ब्रह्माजीकी वह बात सुनकर उन सबने अञ्जलि बाँधकर पितामहके चरणोंमें प्रणिपात किया और फिर धीरे-धीरे अपने मनकी बात कहना आरम्भ किया।

दैत्य बोले—देवेश ! यदि आप हमपर प्रसन्न हैं और हमें वर देना चाहते हैं तो यह वर दीजिये कि समस्त प्राणियोंमें हम सबके लिये अवध्य हो जायँ। जगन्नाथ ! आप हमें स्थिर कर दें और हमारे जरा, रोग आदि सभी शत्रु नष्ट हो जायँ तथा कभी भी मृत्यु हमारे समीप न फटके। हमलोगोंका ऐसा विचार है कि हमलोग अजर-अमर हो जायँ और त्रिलोकीमें अन्य सभी प्राणियोंको मौतके घाट उतारते रहें; क्योंकि ब्रह्मन् ! यदि पाँच ही दिनोंमें कालके गालमें चला जाना निश्चित ही है तो अतुल लक्ष्मी, उत्तमोत्तम नगर, अन्यान्य भोग-सामग्री, उत्कृष्ट पद और ऐश्वर्यसे क्या प्रयोजन है। मेरे विचारसे तो उस प्राणीके लिये ये सभी व्यर्थ हैं।

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे ! उन तपस्वी दैत्योंकी यह बात सुनकर ब्रह्मा अपने स्वामी गिरिशायी भगवान् शंकरका ध्यान करके बोले।

ब्रह्माजीने कहा—असुरो ! अमरत्व सभीको नहीं मिल सकता, अतः तुमलोग अपना यह विचार छोड़ दो। इसके अतिरिक्त अन्य कोई वर जो तुम्हें रुचता हो, माँग लो। क्योंकि दैत्यो ! इस भूतलपर जहाँ कहीं भी जो प्राणी जन्मा है अथवा जन्म लेगा, वह जगत्में अजर-अमर नहीं हो सकता। इसलिये पापरहित असुरो ! तुमलोग स्वयं अपनी बुद्धिसे विचारकर मृत्युकी वञ्चना करते हुए कोई ऐसा दुर्लभ एवं दुस्साध्य वर माँग लो, जो देवता और असुरोंके लिये अशक्य हो। उस प्रसङ्गमें तुमलोग अपने बलका आश्रय लेकर पृथक्-पृथक् अपने मरणमें किसी हेतुको माँग लो, जिससे तुम्हारी रक्षा हो जाय और मृत्यु तुम्हें वरण न कर सके।

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे ! ब्रह्माजीके ऐसे वचन सुनकर वे दो घड़ीतक ध्यानस्थ हो गये, फिर कुछ सोच-विचारकर सर्वलोकपितामह ब्रह्माजीसे बोले।

दैत्योंने कहा—भगवन् ! यद्यपि हमलोग प्रबल पराक्रमी हैं तथापि हमारे पास कोई ऐसा घर नहीं है, जहाँ हम शत्रुओंसे सुरक्षित रहकर सुखपूर्वक निवास कर सकें; अतः आप हमारे लिये ऐसे तीन नगरोंका निर्माण करा दीजिये, जो अत्यन्त अद्भुत और सम्पूर्ण सम्पत्तियोंसे सम्पन्न हों तथा देवता जिनका प्रधर्षण न कर सकें। लोकेश ! आप तो जगद्गुरु हैं। हमलोग आपकी कृपासे ऐसे तीनों पुरोंमें अधिष्ठित होकर इस पृथ्वीपर विचरण करेंगे। इसी बीच तारकाक्षने कहा कि विश्वकर्मा मेरे लिये जिस नगरका निर्माण करें, वह स्वर्णमय हो और देवता भी उसका भेदन न कर सकें। तत्पश्चात् कमलाक्षने चाँदीके बने हुए अत्यन्त विशाल नगरकी याचना की और विद्युन्मालीने प्रसन्न होकर वज्रके समान कठोर लोहेका बना हुआ बड़ा नगर माँगा। ब्रह्मन् ! ये तीनों पुर मध्याह्नके समय अभिजित् मुहूर्तमें चन्द्रमाके पुष्य नक्षत्रपर स्थित होनेपर एक स्थानपर मिला करें और आकाशमें नीले बादलोंपर स्थित होकर ये

क्रमशः एकके ऊपर एक रहते हुए लोगोंकी दृष्टिसे ओझल रहें। फिर पुष्करावर्त नामक कालमेघोंके वर्षा करते समय एक सहस्र वर्षके बाद ये तीनों नगर परस्पर मिलें और एकीभावको प्राप्त हों, अन्यथा नहीं। उस समय कृत्तिवासा भगवान् शंकर, जो वैरभावसे रहित, सर्वदेवमय और सबके देव हैं। लीलापूर्वक सम्पूर्ण सामग्रियोंसे युक्त एक असम्भव रथपर बैठकर एक अनोखे बाणसे हमारे पुरोंका भेदन करें। किंतु भगवान् शंकर सदा हमलोगोंके वन्दनीय, पूज्य और अभिवादनके पात्र हैं; अतः वे हमलोगोंको कैसे भस्म करेंगे—मनमें ऐसी धारणा करके हम ऐसे दुर्लभ वरको माँग रहे हैं।

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी! उन दैत्योंका कथन सुनकर सृष्टिकर्ता लोकपितामह ब्रह्माने शिवजीका स्मरण करके उनसे कहा कि 'अच्छा, ऐसा ही होगा।' फिर मयको भी आज्ञा देते हुए उन्होंने कहा—'हे मय! तुम सोने, चाँदी और लोहेके तीन नगर बना दो।' यों मयको आदेश देकर ब्रह्माजी उन तारक-पुत्रोंके देखते-देखते अपने धाम स्वर्गको चले गये। तदनन्तर धैर्यशाली मयने अपने तपोबलसे नगरोंका निर्माण करना आरम्भ किया। उसने तारकाक्षके लिये स्वर्णमय, कमलाक्षके लिये रजतमय और विद्युन्मालीके लिये लौहमय—यों तीन प्रकारके उत्तम दुर्ग तैयार किये। वे पुर क्रमशः स्वर्ग, अन्तरिक्ष और भूतलपर निर्मित हुए थे। असुरोंके हितमें तत्पर रहनेवाला मय इन तीनों पुरोंको तारकाक्ष आदि असुरोंके हवाले करके स्वयं भी उसीमें प्रवेश कर गया। इस प्रकार उन तीनों पुरोंको पाकर महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न वे तारकासुरके लड़के उनमें प्रविष्ट हुए और समस्त भोगोंका उपभोग करने लगे। वे नगर कल्पवृक्षोंसे व्याप्त तथा हाथी-घोड़ोंसे सम्पन्न थे। उनमें मणिनिर्मित जालियोंसे आच्छादित बहुतेरे महल बने हुए थे। वे पद्मरागके बने हुए एवं सूर्य-मण्डलके समान चमकीले विमानोंसे, जिनमें चारों ओर दरवाजे लगे थे, शोभायमान थे। कैलास-शिखरके समान ऊँचे तथा चन्द्रमाके समान उज्ज्वल दिव्य प्रासादों तथा गोपुरोंसे उनकी अद्भुत शोभा हो रही थी। वे अप्सराओं, गन्धर्वों, सिद्धों तथा चारणोंसे खचाखच भरे थे। प्रत्येक महलमें शिवालय तथा अग्निहोत्रशालाकी प्रतिष्ठा हुई थी। उनमें शिवभक्ति-परायण शास्त्रज्ञ ब्राह्मण सदा निवास करते थे। वे बावली, कूप, तालाब और बड़ी-बड़ी तलैयोंसे तथा समूह-के-समूह स्वर्गसे च्युत हुए वृक्षोंसे युक्त उद्यानों और वनोंमें सुशोभित थे। बड़ी-बड़ी नदियों, नदों और छोटी-छोटी सरिताओंसे, जिनमें कमल खिले हुए थे, उनकी शोभा और बढ़ गयी थी। उनमें सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाले अनेकों फलोंके भारसे लदे हुए वृक्ष लगे थे, जिनसे वे नगर विशेष मनोहर लगते थे। वे झुंड-के-झुंड मदमत्त गजराजोंसे, सुन्दर-सुन्दर घोड़ोंसे, नाना प्रकारके आकार-प्रकारवाले रथों एवं शिबिकाओंसे अलंकृत थे। उनमें समयानुसार पृथक्-पृथक् क्रीडास्थल बने थे और वेदाध्ययनकी पाठशालाएँ भी भिन्न-भिन्न निर्मित हुई थीं। वे पापी पुरुषोंके लिये मन-वाणीसे भी अगोचर थे। उन्हें सदाचारी

पुण्यशील महात्मा ही देख सकते थे। पति-सेवापरायण तथा कुधर्मसे विमुख रहनेवाली पतिव्रता नारियोंने उन नगरोंके उत्तम स्थलोंको सर्वत्र पवित्र कर रखा था। उनमें महाभाग शूरवीर दैत्य और श्रुति-स्मृतिके अर्थके तत्त्वज्ञ एवं स्वधर्मपरायण ब्राह्मण अपनी स्त्रियों तथा पुत्रोंके साथ निवास करते थे। उनमें मयद्वारा सुरक्षित ऐसे सुदृढ़ पराक्रमी वीर भरे हुए थे, जिनके केश नील कमलके समान नीले और घुँघराले थे। वे सभी सुशिक्षित थे, जिससे उनमें सदा युद्धकी लालसा भरी रहती थी। वे बड़े-बड़े समरोंसे प्रेम करनेवाले थे, ब्रह्मा और शिवका पूजन करनेसे उनके पराक्रम विशुद्ध थे; वे सूर्य, मरुद्गण और महेन्द्रके समान बली थे और देवताओंके मथन करनेवाले थे। वेदों, शास्त्रों और पुराणोंमें जिन-जिन धर्मोंका वर्णन किया गया है, वे सभी धर्म और शिवके प्रेमी देवता वहाँ चारों ओर व्याप्त थे। उन नगरोंमें प्रवेश करके वे दैत्य सदा शिवभक्तिनिरत होकर सारी त्रिलोकीको बाधित करके विशाल राज्यका उपभोग करने लगे। मुने! इस प्रकार वहाँ निवास करनेवाले उन पुण्यात्माओंके सुख एवं प्रीतिपूर्वक उत्तम राज्यका पालन करते हुए बहुत लंबा काल व्यतीत हो गया।

(अध्याय १)

☆

तारक-पुत्रोंके प्रभावसे संतप्त हुए देवोंकी ब्रह्माके पास करुण पुकार, ब्रह्माका उन्हें शिवके पास भेजना, शिवकी आज्ञासे देवोंका विष्णुकी शरणमें जाना और विष्णुका उन दैत्योंको मोहित करके उन्हें आचार-भ्रष्ट करना

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे! तदनन्तर तारक-पुत्रोंके प्रभावसे दग्ध हुए इन्द्र आदि सभी देवता दुःखी हो परस्पर सलाह करके ब्रह्माजीकी शरणमें गये। वहाँ सम्पूर्ण देवताओंने दीन होकर प्रेमपूर्वक पितामहको प्रणाम किया और अवसर देखकर उनसे अपना दुखड़ा सुनाते हुए कहा।

देवता बोले—तात:! त्रिपुरोंके स्वामी तारक-पुत्रोंने तथा मयासुरने समस्त स्वर्गवासियोंको संतप्त कर दिया है। ब्रह्मन्! इसीलिये हमलोग दुःखी होकर आपकी शरणमें आये हैं। आप उनके वधका कोई उपाय कीजिये, जिससे हमलोग सुखसे रह सकें।

ब्रह्माजीने कहा—देवगणो! तुम्हें उन दानवोंसे विशेष भय नहीं करना चाहिये। मैं उनके वधका उपाय बतलाता हूँ। भगवान् शिव तुम्हारा कल्याण करेंगे। मैंने ही इन दैत्योंको बढ़ाया है, अतः मेरे हाथों इनका वध होना उचित नहीं। साथ ही त्रिपुरमें इनका पुण्य भी बुद्धिंगत होता रहेगा। अतः इन्द्रसहित सभी देवता शिवजीसे प्रार्थना करें। वे सर्वाधीश यदि प्रसन्न हो जायँगे तो वे ही तुमलोगोंका कार्य पूर्ण करेंगे।

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी! ब्रह्माजीकी यह वाणी सुनकर इन्द्रसहित सभी देवता दुःखी हो उस स्थानपर गये, जहाँ वृषभध्वज शिव आसीन थे। तब उन सबने

अञ्जलि बाँधकर देवेश्वर शिवको भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और कंधा झुकाकर लोकोंके कल्याणकर्ता शंकरका स्तवन किया। मुने! इस प्रकार नाना प्रकारके दिव्य स्तोत्रोंद्वारा त्रिशूलधारी परमेश्वरकी स्तुति करके स्वार्थ-साधनमें निपुण इन्द्र आदि देवताओंने दीनभावसे कंधा झुकाये हुए हाथ जोड़कर प्रस्तुत स्वार्थको निवेदन करना आरम्भ किया।

देवताओंने कहा—महादेव! तारकके पुत्र तीनों भाइयोंने मिलकर इन्द्रसहित समस्त देवताओंको परास्त कर दिया है। भगवन्! उन्होंने त्रिलोकीको तथा मुनीश्वरोंको अपने अधीन कर लिया है और सम्पूर्ण सिद्ध स्थानोंको नष्ट-भ्रष्ट करके सारे जगत्‌को उत्पीड़ित कर रखा है। वे दारुण दैत्य समस्त यज्ञभागोंको स्वयं ग्रहण करते हैं। उन्होंने ऋषि-धर्मका निवारण करके अधर्मका विस्तार कर रखा है। शंकर! निश्चय ही ये तारक-पुत्र समस्त प्राणियोंके लिये अवध्य हैं, इसीलिये वे स्वेच्छानुसार सभी कार्य करते रहते हैं। प्रभो! वे त्रिपुरनिवासी दारुण दैत्य जबतक जगत्‌का विनाश न कर डालें, उसके पहले ही आप किसी ऐसी नीतिका विधान करें, जिससे इसकी रक्षा हो सके।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! यों भाषण करते हुए उन स्वर्गवासी इन्द्रादि देवोंकी बात सुनकर शिवजी उत्तर देते हुए बोले।

शिवजीने कहा—देवगण! इस समय वे त्रिपुराधीश महान् पुण्य-कार्योंमें लगे हुए हैं; और ऐसा नियम है कि जो पुण्यात्मा हो, उसपर विद्वानोंको किसी प्रकार भी प्रहार नहीं करना चाहिये। मैं देवताओंके सारे महान् कष्टोंको जानता हूँ; फिर भी वे दैत्य बड़े प्रबल हैं, अतः देवता और असुर मिलकर भी उनका वध नहीं कर सकते। वे तारक-पुत्र सब-के-सब पुण्य-सम्पन्न हैं, इसलिये उन सभी त्रिपुरवासियोंका वध दुस्साध्य है। यद्यपि मैं रणकर्कश हूँ, तथापि जान-बूझकर मैं मित्र-द्रोह कैसे कर सकता हूँ; क्योंकि पहले किसी समय ब्रह्माजीने कहा था कि मित्रद्रोहसे बढ़कर दूसरा कोई बड़ा पाप नहीं है। सत्पुरुषोंने ब्रह्महत्यारे, शराबी, चोर तथा व्रत-भङ्ग करनेवालेके लिये प्रायश्चित्तका विधान किया है; परंतु कृतघ्नके उद्धारका कोई उपाय नहीं है।* देवताओ! तुमलोग भी तो धर्मज्ञ हो, अतः धर्मबुद्धिसे विचारकर तुम्हीं बताओ कि जब वे दैत्य मेरे भक्त हैं, तब मैं उन्हें कैसे मार सकता हूँ। इसलिये अमरो! जबतक वे दैत्य मेरी भक्तिमें तत्पर हैं, तबतक उनका वध असम्भव है। तथापि तुमलोग विष्णुके पास जाकर उनसे यह कारण निवेदन करो।

तदनन्तर देवगण भगवान् विष्णुके समीप गये और उनके द्वारा ऐसी व्यवस्था की गयी कि जिससे वे असुर दैत्य—सनातन धर्मसे विमुख होकर सर्वथा अनाचारपरायण हो गये। वैदिक धर्मका नाश होनेसे वहाँ स्त्रियोंने पातिव्रत-धर्म छोड़ दिया, पुरुष इन्द्रियोंके वश हो गये। यों

---

* ब्रह्मघ्ने च सुरापे च चौरे भग्नव्रते तथा। निष्कृतिर्विहिता सद्भिः कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः॥

(शि॰ पु॰ रु॰ सं॰ युद्ध खण्ड ३।१५)

स्त्री-पुरुष सभी दुराचारी हो गये। देवाराधन, श्राद्ध, यज्ञ, व्रत, तीर्थ, शिव-विष्णु-सूर्य-गणेश आदिका पूजन, स्नान, दान आदि सभी शुभ आचरण नष्ट हो गये। तब माया तथा अलक्ष्मी उन पुरोंमें जा पहुँची। तपसे प्राप्त लक्ष्मी वहाँसे चली गयीं। इस प्रकार वहाँ अधर्मका विस्तार हो गया। मुने! तब शिवेच्छासे भाइयोंसहित उस दैत्यराजकी तथा मयकी भी शक्ति कुण्ठित हो गयी।

(अध्याय २—५)

☆

देवोंका शिवजीके पास जाकर उनका स्तवन करना, शिवजीके त्रिपुर-वधके लिये उद्यत न होनेपर ब्रह्मा और विष्णुका उन्हें समझाना, विष्णुके बतलाये हुए शिव-मन्त्रका देवोंद्वारा तथा विष्णुद्वारा जप, शिवजीकी प्रसन्नता और उनके लिये विश्वकर्माद्वारा सर्वदेवमय रथका निर्माण

व्यासजीने पूछा—सनत्कुमारजी! जब भाइयों तथा पुरवासियोंसहित उस दैत्यराजकी बुद्धि विशेषरूपसे मोहाच्छन्न हो गयी, तब उसके बाद कौन-सी घटना घटी? विभो! वह सारा वृत्तान्त वर्णन कीजिये।

सनत्कुमारजीने कहा—महर्षे! जब तीनों पुरोंकी पूर्वोक्त दशा हो गयी, दैत्योंने शिवार्चनका परित्याग कर दिया, सम्पूर्ण स्त्री-धर्म नष्ट हो गया और चारों ओर दुराचार फैल गया, तब भगवान् विष्णु और ब्रह्माके साथ सब देवता कैलास पर्वतपर गये और सुन्दर शब्दोंमें शिवकी स्तुति करने लगे—'महेश्वर देव! आप परमोत्कृष्ट आत्मबलसे सम्पन्न हैं; आप ही सृष्टिके कर्ता ब्रह्मा, पालक विष्णु और संहर्ता रुद्र हैं; परब्रह्मस्वरूप आपको नमस्कार है।' यों महादेवजीका स्तवन करके देवोंने उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। फिर भगवान् विष्णुने जलमें खड़े होकर अपने स्वामी परमेश्वर शिवका मन-ही-मन स्मरण करके तन्मय हो दक्षिणामूर्तिके द्वारा प्रकटित रुद्रमन्त्रका डेढ़ करोड़की संख्यातक जप किया। तबतक सभी देवता उन महेश्वरमें मन लगाकर यों उनकी स्तुति करते रहे।

देवोंने कहा—प्रभो! आप समस्त प्राणियोंके आत्मस्वरूप, कल्याणकर्ता और भक्तोंकी पीड़ा हरनेवाले हैं। आपके गलेमें नीला चिह्न है, जिससे आप नीलकण्ठ कहलाते हैं। आप त्रिरूप एवं प्रत्रेता हैं, आप रुद्रको हमारा प्रणाम है। असुरनिकन्दन! आप ही हमारी सारी आपत्तियोंके निवारण करनेवाले हैं, अतः सदासे आप ही हमारी गति हैं और आप ही सर्वदा हमलोगोंके वन्दनीय हैं। आप सबके आदि हैं और आप ही अनादि भी हैं। आप ही आनन्दस्वरूप, अव्यय, प्रभु, प्रकृति-पुरुषके भी साक्षात् स्रष्टा और जगदीश्वर हैं। आप ही रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुणके आश्रयसे ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र होकर जगत्के कर्ता, भर्ता और संहारक बनते हैं। आप ही इस भवसागरसे तारनेवाले हैं। आप समस्त प्राणियोंके स्वामी, अविनाशी, वरदाता, वाङ्मयस्वरूप, वेदप्रतिपाद्य और

वाच्य-वाचकतासे रहित हैं। योगवेत्ता योगी आप ईशानसे मुक्तिकी याचना करते हैं। आप योगियोंके हृदयकमलकी कर्णिकापर विराजमान रहते हैं। वेद और संतजन कहते हैं कि आप परब्रह्मस्वरूप, तत्त्वरूप, तेजोराशि और परात्पर हैं। शर्व! आप सर्वव्यापी, सर्वात्मा और त्रिलोकीके अधिपति हैं। भव! इस जगत्में जिसे परमात्मा कहा जाता है, वह आप ही हैं। जगद्गुरो! इस जगत्में जिसे देखने, सुनने, स्मरण करने तथा जानने योग्य बताया जाता है और जो अणुसे भी सूक्ष्म तथा महान्से भी महान् है, वह आप ही हैं। आप चारों ओर हाथ, पैर, नेत्र, सिर, मुख, कान और नाकवाले हैं; अतः आपको चारों ओरसे नमस्कार है। सर्वव्यापिन्! आप सर्वज्ञ, सर्वेश्वर, अनावृत और विश्वरूप हैं; आप विरूपाक्षको सब ओरसे अभिवादन है। आप सर्वेश्वर, भवाध्यक्ष, सत्यमय, कल्याणकर्ता, अनुपमेय और करोड़ों सूर्योंके समान प्रभावशाली हैं; आपको हम चारों ओरसे दण्डवत्-प्रणाम करते हैं। विश्वाराध्य, आदि-अन्तशून्य, छब्बीसवें तत्त्व, नियामकरहित तथा समस्त प्राणियोंको अपने-अपने कार्योंमें प्रवृत्त करनेवाले आपको हमारा सब ओरसे प्रणाम है। आप प्रकृतिके भी प्रवर्तक, सबके प्रपितामह और समस्त शरीरोंमें व्याप्त हैं; आप परमेश्वरको हमारा नमस्कार है। श्रुतियाँ तथा श्रुति-तत्त्वके ज्ञाता विज्ञजन आपको वरदायक, समस्त भूतोंमें निवास करनेवाला, स्वयम्भू और श्रुति-तत्त्वज्ञ बतलाते हैं। नाथ! आपने जगत्में अनेकों ऐसे कार्य किये हैं, जो हमारी समझसे परे हैं; इसीलिये देवता, असुर, ब्राह्मण और अन्यान्य स्थावर-जङ्गम भी आपकी ही स्तुति करते हैं। शम्भो! त्रिपुरवासी दैत्योंने हमें प्रायः नष्ट-सा कर डाला है, अतः आप शीघ्र ही उन असुरोंका विनाश करके हमारी रक्षा कीजिये; क्योंकि देववल्लभ! हम देवोंके एकमात्र आप ही गति हैं। परमेश्वर! इस समय वे आपकी मायासे मोहित हो गये हैं, अतः प्रभो! वे भगवान् विष्णुद्वारा बतायी हुई युक्तिके चक्रमें फँसकर सारा धर्म-कर्म छोड़ बैठे हैं। भक्तवत्सल! हमारे सौभाग्यवश इस समय उन दैत्योंने सम्पूर्ण धर्मोंका परित्याग कर दिया है और नास्तिक शास्त्रका आश्रय ले रखा है। शरणदाता! आप सदासे देवताओंका कार्य करते आये हैं, इसीलिये आज भी हमलोग आपके शरणापन्न हुए हैं। अब आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा कीजिये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनिवर! इस प्रकार महेश्वरका स्तवन करके देवगण दीनभावसे अञ्जलि बाँधकर सामने खड़े हो गये। उस समय उनके मस्तक झुके हुए थे।

इस प्रकार जब सुरेन्द्र आदि देवोंने महेश्वरकी स्तुति की और विष्णुने ईशान-सम्बन्धी मन्त्रका जप किया, तब सर्वेश्वर भगवान् शिव प्रसन्न हो गये और वृषपर सवार हो वहीं प्रकट हो गये। उस समय पार्वतीपति शिवका मन प्रसन्न था। उन्होंने नन्दीश्वरकी पीठसे उतरकर विष्णुका आलिङ्गन किया और फिर वे नन्दीपर हाथ टेककर खड़े हो गये और सम्पूर्ण देवताओंकी ओर कृपाभरी दृष्टिसे देखकर गम्भीर वाणीमें श्रीहरिसे बोले।

शिवजीने कहा—देवश्रेष्ठ! उन अधर्मनिष्ठ दैत्योंके तीनों पुरोंको मैं नष्ट कर डालूँगा—इसमें संशय नहीं है; परंतु वे महादैत्य मेरे भक्त थे और उनका मन सुदृढ़ रूपसे मुझमें लगा रहता था; अतः यद्यपि इस समय उन्होंने व्याजवश उत्तम धर्मका परित्याग कर दिया है, तथापि क्या वे मेरे ही द्वारा मारने योग्य हैं? इसलिये जिन्होंने त्रिपुरवासी सारे दैत्योंको धर्मभ्रष्ट करके मेरी भक्तिसे विमुख कर दिया है, वे विष्णु अथवा अन्य कोई ही उन्हें क्यों नहीं मारते? मुनीश्वर! शम्भुके ये वचन सुनकर उन समस्त देवताओंका तथा श्रीहरिका भी मन उदास हो गया। जब सृष्टिकर्ता ब्रह्माने देखा कि देवताओं और विष्णुके मुखपर उदासी छा गयी है, तब उन्होंने हाथ जोड़कर शम्भुसे कहना आरम्भ किया।

ब्रह्माजी बोले—परमेश्वर! आप योगवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, परब्रह्म तथा सदासे देवों और ऋषियोंकी रक्षामें तत्पर हैं; अतः पाप आपका स्पर्श नहीं कर सकता। साथ ही आपके आदेशसे ही तो उन्हें मोहमें डाला गया है। इसके प्रेरक तो आप ही हैं। इस समय अवश्य ही उन्होंने अपने धर्मका परित्याग कर दिया है और वे आपकी भक्तिसे विमुख हो गये हैं; तथापि आपके सिवा दूसरा कोई उनका वध नहीं कर सकता। देवों और ऋषियोंके प्राणरक्षक महादेव! साधुओंकी रक्षाके लिये आपके द्वारा उन म्लेच्छोंका वध उचित है। आप तो राजा हैं, अतः राजाको धर्मानुसार पापियोंका वध करनेसे पाप नहीं लगता; इसलिये इस काँटेको उखाड़कर साधु-ब्राह्मणोंकी रक्षा कीजिये। राजा यदि अपने राज्य तथा सर्वलोकाधिपत्यको स्थिर रखना चाहता हो तो उसे अपने राज्यमें एवं अन्यत्र भी ऐसा ही व्यवहार करना चाहिये। इसलिये आप देवगणोंकी रक्षाके लिये उद्यत हो जाइये, विलम्ब मत कीजिये। देवदेवेश! बड़े-बड़े मुनीश्वर, यज्ञ, सम्पूर्ण वेद, शास्त्र, मैं और विष्णु भी निश्चय ही आपकी प्रजा हैं। प्रभो! आप देवताओंके सार्वभौम सम्राट् हैं। ये श्रीहरि आदि देवगण तथा सारा जगत् आपका ही कुटुम्ब है। अजन्मा देव! श्रीहरि आपके युवराज हैं और मैं ब्रह्मा आपका पुरोहित हूँ तथा आपकी आज्ञाका पालन करनेवाले शक्र राजकार्य सँभालने-वाले मन्त्री हैं। सर्वेश! अन्य देवता भी आपके शासनके नियन्त्रणमें रहकर सदा अपने-अपने कार्यमें तत्पर रहते हैं। यह बिलकुल सत्य है।

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी! ब्रह्माकी यह बात सुनकर सुरपालक परमेश्वर शिवका मन प्रसन्न हो गया। तब उन्होंने ब्रह्माजीसे कहा।

शिवजी बोले—ब्रह्मन्! यदि आप मुझे देवताओंका सम्राट् बतला रहे हैं तो मेरे

पास उस पदके योग्य कोई ऐसी सामग्री तो है नहीं, जिससे मैं उस पदको ग्रहण कर सकूँ; क्योंकि न तो मेरे पास कोई महान् दिव्य रथ है, न उसके उपयुक्त सारथि है और न संग्राममें विजय दिलानेवाले वैसे धनुष-बाण ही हैं कि जिन्हें लेकर मैं मनोयोगपूर्वक संग्राममें उन प्रबल दैत्योंका वध कर सकूँ। यों कहकर वे चुप हो गये। परंतु शिवजीको शीघ्र प्रस्तुत होते न देखकर समस्त देवता, कश्यप आदि ऋषि अत्यन्त व्याकुल तथा दुःखी हो गये। तब भगवान् हरिने उनसे कहा।

भगवान् विष्णु बोले—"देवो तथा मुनियो! तुमलोग क्यों दुःखी हो रहे हो? तुम्हें अपने सारे दुःखका परित्याग कर देना चाहिये। अब तुम सब लोग आदरपूर्वक मेरी बात सुनो। देवगण! तुम्हीं लोग विचार करो कि महान् पुरुषोंकी आराधना सुखसाध्य नहीं होती। मैंने ऐसा सुना है कि महदाराधनमें पहले महान् कष्ट झेलना पड़ता है। पीछे भक्तकी दृढ़ता देखकर इष्टदेव अवश्य प्रसन्न होते हैं। परंतु शिव तो समस्त गणोंके अध्यक्ष तथा परमेश्वर हैं। ये तो आशुतोष ही ठहरे। अतः पहले 'ॐ' का उच्चारण करके फिर 'नमः' का प्रयोग करे। फिर 'शिवाय' कहकर दो बार 'शुभम्'का उच्चारण करे। उसके बाद दो बार 'कुरु'का प्रयोग करके फिर 'शिवाय नमः' 'ॐ' जोड़ दे। (ऐसा करनेसे 'ॐ नमः शिवाय शुभं शुभं कुरु कुरु शिवाय नमः ॐ' यह मन्त्र बनता है।) बुद्धिविशारदो! यदि तुमलोग शिवकी प्रसन्नताके लिये इस मन्त्रका पुनः एक करोड़ जप करोगे तो शिवजी अवश्य तुम्हारा कार्य पूर्ण करेंगे।" मुने! प्रभावशाली श्रीहरिने जब यों कहा, तब सभी देवता पुनः शिवाराधनमें लग गये। तत्पश्चात् श्रीहरि भी देवों तथा मुनियोंके कार्यकी सिद्धिके हेतु शिवमें मन लगाकर विशेषरूपसे विधिपूर्वक जपमें तत्पर हो गये। मुनिश्रेष्ठ! इधर देवगण धैर्यसम्पन्न हो बारंबार 'शिव'-'शिव' यों उच्चारण करते हुए एक करोड़ जप करके सामने खड़े हो गये। इसी समय स्वयं साक्षात् शिव पूर्वोक्त स्वरूप धारण करके प्रकट हो गये और यों कहने लगे।

श्रीशिवजी बोले—हरे! ब्रह्मन्! देवगण तथा उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मुनियो! मैं तुमलोगोंके इस जपसे प्रसन्न हो गया हूँ, अतः अब तुमलोग अपना मनोवाञ्छित वर माँग लो।

देवताओंने कहा—देवाधिदेव! कल्याणकर्ता जगदीश्वर! यदि आप हमपर प्रसन्न हैं तो देवोंकी विकलताका विचार करके शीघ्र ही त्रिपुरका संहार कर दीजिये। परमेश्वर! आप दीनबन्धु तथा कृपाकी खान हैं। आपने ही सदासे हम देवताओंकी बारंबार विपत्तियोंसे रक्षा की है, अतः इस समय भी आप हमारी रक्षा कीजिये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—ब्रह्मन्! तब ब्रह्मा और विष्णुसहित देवोंकी यह बात सुनकर शिवजी मन-ही-मन प्रसन्न हुए और पुनः इस प्रकार बोले।

महेश्वरने कहा—हरे! ब्रह्मन्! देवगण! तथा मुनियो! अब त्रिपुरको नष्ट हुआ ही समझो। तुमलोग आदरपूर्वक मेरी बात सुनो (और उसके अनुसार कार्य करो)। मैंने पहले जिस दिव्य रथ, सारथि, धनुष और उत्तम बाणको अङ्गीकार किया

है, वह सब शीघ्र ही तैयार करो। विष्णो तथा विधे ! निश्चय ही तुम दोनों त्रिलोकीके अधिपति हो; इसलिये तुम्हें चाहिये कि मेरे लिये प्रयत्नपूर्वक सम्राट्के योग्य सारा उपकरण प्रस्तुत कर दो। तुम दोनों सृष्टिके सृजन और पालन-कार्यमें नियुक्त हो, अतः त्रिपुरको नष्ट हुआ समझकर देवताओंकी सहायताके लिये यह कार्य अवश्य करो। यह शुभ मन्त्र (जिसका तुमलोगोंने जप किया है) महान् पुण्यमय तथा मुझे प्रसन्न करनेवाला है। यह भुक्ति-मुक्तिका दाता, सम्पूर्ण कामनाओंका पूरक और शिव-भक्तोंके लिये आनन्दप्रद है। यह स्वर्गकामी पुरुषोंके लिये धन, यश और आयुकी वृद्धि करनेवाला है। यह निष्कामके लिये मोक्ष तथा साधन करनेवाले पुरुषोंके लिये भुक्ति-मुक्तिका साधक है। जो मनुष्य पवित्र होकर सदा इस मन्त्रका कीर्तन करता है, सुनता है अथवा दूसरेको सुनाता है, उसकी सारी अभिलाषाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने ! परमात्मा शिवकी यह बात सुनकर सभी देवता परम प्रसन्न हुए और ब्रह्मा तथा विष्णुको तो विशेष आनन्द प्राप्त हुआ। उस समय विश्वकर्माने शिवके आज्ञानुसार विश्वके हितके लिये एक सर्वदेवमय तथा परम शोभन दिव्य रथका निर्माण किया।

(अध्याय ६—८)

☆

सर्वदेवमय रथका वर्णन, शिवजीका उस रथपर चढ़कर युद्धके लिये प्रस्थान, उनका पशुपति नाम पड़नेका कारण, शिवजीद्वारा गणेशका पूजन और त्रिपुर-दाह, मयदानवका त्रिपुरसे जीवित बच निकलना

व्यासजीने कहा—शैवप्रवर सनत्कुमारजी ! आपकी बुद्धि बड़ी उत्तम है, आप सर्वज्ञ हैं। तात ! आपने परमेश्वर शिवकी जो कथा सुनायी है, वह अत्यन्त अद्भुत है। अब बुद्धिमान् विश्वकर्माने शिवजीके लिये जिस देवमय एवं परमोत्कृष्ट दिव्य रथका निर्माण किया था, उसका वर्णन कीजिये।

सूतजी कहते हैं—मुने ! व्यासजीकी यह बात सुनकर मुनीश्वर सनत्कुमार शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण करके बोले।

सनत्कुमारजीने कहा—महाबुद्धिमान् मुनिवर व्यासजी ! मैं शिवजीके पादपद्मोंका स्मरण करके अपनी बुद्धिके अनुसार रथकी निर्माण-कथाका वर्णन करता हूँ, सुनो ! तदनन्तर विश्वकर्माने रुद्रदेवके लिये बड़े यत्नसे आदरपूर्वक सर्वलोकमय दिव्य रथकी रचना की। वह सर्वसम्मत तथा सर्वभूतमय रथ सुवर्णका बना हुआ था। उसके दाहिने चक्रमें सूर्य और वामचक्रमें चन्द्रमा विराजमान थे। दाहिने चक्रमें बारह अरे लगे हुए थे, जिनमें बारहों सूर्य प्रतिष्ठित थे और बायाँ पहिया सोलह अरोंसे युक्त था, जिनमें चन्द्रमाकी सोलह कलाएँ विराजमान थीं। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले विप्रेन्द्र ! अश्विनी आदि सभी सत्ताईसों नक्षत्र भी उस वामचक्रकी ही शोभा बढ़ा रहे थे। विप्रश्रेष्ठ ! छहों ऋतुएँ उन दोनों पहियोंकी नेमि बनीं। अन्तरिक्ष

रथका अग्रभाग हुआ और मन्दराचलने रथकी बैठकका स्थान ग्रहण किया। उदयाचल और अस्ताचल— ये दोनों उस रथके कूबर हुए। महामेरु अधिष्ठान हुआ और शाखापर्वत उसके आश्रयस्थान हुए। संवत्सर उस रथका वेग, उत्तरायण और दक्षिणायन— दोनों लोहधारक, मुहूर्त बन्धुर (रस्सा), कलाएँ उसकी कीलें हुईं। काष्ठाएँ उसका घोणा (नासिकारूप अग्रभाग), क्षण अक्षदण्ड, निमेष अनुकर्ष (नीचेका काष्ठ) और लव ईषादण्ड हुए। द्युलोक इस रथका वरूथ (ऊपरी पर्दा) तथा स्वर्ग और मोक्ष ध्वजाएँ हुईं। अभ्रमु (ऐरावतकी पत्नी) और कामधेनु जुएके अन्तिम छोरपर स्थित हुए। अव्यक्त (प्रकृति) उसका ईषादण्ड, बुद्धि नड्वल, अहंकार कोना और पञ्च महाभूत उसका बल थे। मुनिश्रेष्ठ! इन्द्रियाँ उसे चारों ओरसे विभूषित कर रही थीं और श्रद्धा उस रथकी चाल थी। उस समय वेदोंके छहों अङ्ग ही उसके भूषण और पुराण, न्याय, मीमांसा तथा धर्मशास्त्र उपभूषण हुए। सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे युक्त बलसम्पन्न श्रेष्ठ मन्त्र घण्टाके स्थानापन्न हुए और वर्ण तथा आश्रम उसके पाद बने। सहस्र फणोंसे सुशोभित शेषनाग बन्धनरज्जु हुए और दिशाएँ तथा उपदिशाएँ उसके पाद बनीं। पुष्कर आदि तीर्थोंने रत्नजटित स्वर्णमय पताकाओंका स्थान ग्रहण किया और चारों समुद्र उस रथके आच्छादन-वस्त्र बने। गङ्गा आदि सभी श्रेष्ठ सरिताओंने सुन्दरी स्त्रियोंका रूप धारण किया और समस्त आभूषणोंसे विभूषित हो हाथमें चँवर ले यत्र-तत्र स्थित होकर वे रथकी शोभा बढ़ाने लगीं। आवह आदि सातों वायुओंने स्वर्णमय उत्तम सोपानका काम सँभाला। लोकालोक पर्वत उसके चारों ओरका उपसोपान और मानस आदि सरोवर उसके सुन्दर बाहरी विषमस्थान हुए। सारे वर्षाचल उसके चारों ओरके पार्श्व बने और नीचेके लोकोंके निवासी उस रथका तल भाग हुए। देवाधिदेव भगवान् ब्रह्मा लगाम पकड़नेवाले सारथि हुए और ब्रह्मदैवत ओंकार उन ब्रह्मदेवका चाबुक हुआ। अकारने विशाल छत्रका रूप धारण किया। मन्दराचल पार्श्वभागका दण्ड हुआ। शैलराज हिमालय धनुष और स्वयं नागराज शेष उसकी प्रत्यञ्चा बने। श्रुतिरूपिणी सरस्वती देवी उस धनुषकी घण्टा हुईं और महातेजस्वी विष्णु बाण तथा अग्नि उस बाणके नोक बने। मुने! चारों वेद उस रथमें जुतनेवाले चार घोड़े कहे गये हैं। इसके बाद शेष बची हुई ज्योतियाँ उन अश्वोंकी आभूषण हुईं। विषसे उत्पन्न हुई वस्तुओंने सेनाका रूप धारण किया, वायु बाजा बजानेवाले और व्यास आदि मुख्य-मुख्य ऋषि वाहवाहक हुए। मुनीश्वर! अधिक कहनेसे क्या लाभ, मैं संक्षेपमें ही बतलाता हूँ कि ब्रह्माण्डमें जो कुछ वस्तु थी, वह सब उस रथमें विद्यमान थी। इस प्रकार बुद्धिमान् विश्वकर्माने ब्रह्मा और विष्णुकी आज्ञासे उस शुभ रथका तथा रथसामग्रीका निर्माण किया था।

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे! इस प्रकारके महान् दिव्य रथमें, जो अनेकविध आश्चर्योंसे युक्त था, वेदरूपी अश्वोंको जोतकर ब्रह्माने उसे शिवको समर्पित कर दिया। शम्भुको निवेदित करनेके पश्चात् जो विष्णु आदि देवोंके सम्माननीय एवं त्रिशूल धारण करनेवाले हैं, उन देवेश्वरकी प्रार्थना

करके ब्रह्माजी उन्हें उस रथपर चढ़ाने लगे। तब महान् ऐश्वर्यशाली सर्वदेवमय शम्भु रथ-सामग्रीसे युक्त उस दिव्य रथपर आरूढ़ हुए। उस समय ऋषि, देवता, गन्धर्व, नाग, लोकपाल और ब्रह्मा, विष्णु भी उनकी स्तुति कर रहे थे। गानविद्याविशारद अप्सराओंके गण उन्हें घेरे हुए थे। सारथिके स्थानपर ब्रह्माको देखकर उन वरदायक शम्भुकी विशेष शोभा हुई। लोककी सारी वस्तुओंसे कल्पित उस रथपर शिवजी चढ़ ही रहे थे कि वेदसम्भूत वे घोड़े सिरके बल भूमिपर गिर पड़े। पृथ्वीमें भूकम्प आ गया। सारे पर्वत डगमगाने लगे। सहसा शेषनाग शिवजीका भार न सह सकनेके कारण आतुर हो काँप उठे। तब उसी क्षण भगवान् धरणीधरने उठकर नन्दीश्वरका रूप धारण किया और रथके नीचे जाकर उसे ऊपरको उठाया; परंतु नन्दीश्वर भी रथारूढ़ महेशके उस उत्तम तेजको सहन न कर सके, अतः उन्होंने तत्काल ही पृथ्वीपर घुटने टेक दिये। तत्पश्चात् भगवान् ब्रह्माने शिवजीकी आज्ञासे हाथमें चाबुक ले घोड़ोंको उठाकर उस श्रेष्ठ रथको खड़ा किया। तदनन्तर महेशद्वारा अधिष्ठित उस उत्तम रथमें बैठे हुए ब्रह्माजीने रथमें जुते हुए मन और वायुके समान वेगशाली वेदमय अश्वोंको उन तपस्वी दानवोंके आकाशस्थित तीनों पुरोंको लक्ष्य करके आगे बढ़ाया। तत्पश्चात् लोकोंके कल्याणकर्ता भगवान् रुद्र देवोंकी ओर दृष्टिपात करके कहने लगे—'सुरश्रेष्ठो! यदि तुमलोग देवों तथा अन्य प्राणियोंके विषयमें पृथक्-पृथक् पशुत्वकी कल्पना करके उन पशुओंका आधिपत्य मुझे प्रदान करोगे, तभी मैं उन असुरोंका संहार करूँगा; क्योंकि वे दैत्यश्रेष्ठ तभी मारे जा सकते हैं, अन्यथा उनका वध असम्भव है।'

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! अगाध बुद्धिसम्पन्न देवाधिदेव भगवान् शंकरकी यह बात सुनकर सभी देवता पशुत्वके प्रति सशङ्कित हो उठे, जिससे उनका मन खिन्न हो गया। तब उनके भावको समझाकर देवदेव अम्बिकापति शम्भु करुणार्द्र हो गये। फिर वे हँसकर उन देवताओंसे इस प्रकार बोले।

शम्भुने कहा—देवश्रेष्ठो! पशुभाव प्राप्त होनेपर भी तुमलोगोंका पतन नहीं होगा। मैं उस पशुभावसे विमुक्त होनेका उपाय बतलाता हूँ, सुनो और वैसा ही करो। समाहित मनवाले देवताओ! मैं तुमलोगोंसे सच्ची प्रतिज्ञा करता हूँ कि जो इस दिव्य पाशुपत-व्रतका पालन करेगा, वह पशुत्वसे मुक्त हो जायगा। सुरश्रेष्ठो! तुम्हारे अतिरिक्त जो अन्य प्राणी भी मेरे पाशुपत-व्रतको करेंगे, वे भी निस्संदेह पशुत्वसे छूट जायँगे। जो नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए बारह वर्षतक, छः वर्षतक अथवा तीन वर्षतक मेरी सेवा करेगा अथवा करायेगा, वह पशुत्वसे विमुक्त हो जायगा। इसलिये श्रेष्ठ देवताओ! तुमलोग भी जब इस परमोत्कृष्ट दिव्य व्रतका पालन करोगे तो उसी समय पशुत्वसे मुक्त हो जाओगे—इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे! परमात्मा महेश्वरका वचन सुनकर विष्णु और ब्रह्मा आदि देवताओंने कहा—'तथेति'—बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा। इसीलिये बड़े-बड़े देवता तथा असुर भगवान् शंकरके पशु बने और पशुत्वरूपी पाशसे विमुक्त करनेवाले रुद्र पशुपति हुए।

तभीसे महेश्वरका 'पशुपति' यह नाम विश्वमें विख्यात हो गया। यह नाम समस्त लोकोंमें कल्याण प्रदान करनेवाला है। उस समय सम्पूर्ण देवता तथा ऋषि हर्षमग्न होकर जय-जयकार करने लगे और देवेश्वर ब्रह्मा, विष्णु तथा अन्यान्य प्राणी भी परमानन्दमग्न हो गये। उस अवसरपर महात्मा शिवका जैसा रूप प्रकट हुआ था, उसका वर्णन सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं हो सकता। तदनन्तर जो शिवा तथा सम्पूर्ण जगत्के स्वामी और समस्त प्राणियोंके सुख प्रदान करनेवाले हैं, वे महेश्वर यों सुसज्जित होकर त्रिपुरका संहार करनेके लिये प्रस्थित हुए। जिस समय देवदेव महादेव त्रिपुरका विनाश करनेके लिये चले, उस अवसरपर देवराज आदि सभी प्रधान-प्रधान देवता भी उनके साथ प्रस्थित हुए। पर्वतके समान विशालकाय उन सुरेश्वरोंका मन प्रसन्न था, वे सूर्यके समान प्रकाशित हो रहे थे। वे सभी हाथोंमें हल, शूल, मुसल, भुशुण्डि और नाना प्रकारके पर्वत-जैसे विशाल आयुधोंको धारण करके हाथी, घोड़े, सिंह, रथ और बैलोंपर सवार हो चल रहे थे। उस समय जिनके शरीर परम प्रकाशमान थे और मन महान् उत्साहसे सम्पन्न थे तथा जो नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित थे, वे इन्द्र, ब्रह्मा और विष्णु आदि देव शम्भुकी जय-जयकार बोलते हुए महेश्वरके आगे-आगे चले। सभी दण्डी एवं जटाधारी मुनि हर्ष मनाने लगे और आकाशचारी सिद्ध तथा चारण पुष्पोंकी वृष्टि करने लगे। विप्रेन्द्र! त्रिपुरकी यात्रा करते समय जितने गणेश्वर शिवजीके साथ थे, उनकी गणना करके कौन पार पा सकता है; तथापि मैं कुछका वर्णन करता हूँ। योगिन्! समस्त गणराजोंमें श्रेष्ठ भृङ्गी गणेश्वरों तथा देवगणोंसे घिरकर विमानपर आरूढ़ हो महेन्द्रकी भाँति त्रिपुरका विनाश करनेके लिये चले। उनके साथ-साथ केश, त्रिगतवास, महाकेश, महाज्वर, सोमवल्ली-सवर्ण, सोमप, सनक, सोमधृक्, सूर्यवर्चा, सूर्यप्रेक्षणक, सूर्याक्ष, सूरिनामा, सुर, सुन्दर, प्रस्कन्द, कुन्दर, चण्ड, कम्पन, अतिकम्पन, इन्द्र, इन्द्रजय, यन्ता, हिमकर, शताक्ष, पञ्चाक्ष, सहस्राक्ष, महोदर, सतीजाहु, शतास्य, रङ्कु, कर्पूरपूतन, द्विशिख, त्रिशिख, अहंकारकारक, अजवक्त्र, अष्टवक्त्र, हयवक्त्र, अर्धवक्त्र आदि बहुत-से अप्रमेय बलशाली वीर गणाध्यक्ष लक्ष्य-लक्षणकी परवाह न करते हुए महेश्वरको घेरकर चल रहे थे।

व्यासजी! तदनन्तर महादेव शम्भु सम्पूर्ण सामग्रियोंसहित उस रथपर स्थित हो उन सुरद्रोहियोंके तीनों पुरोंको पूर्णतया दग्ध करनेके लिये उद्यत हुए। उन्होंने रथके शीर्ष-स्थानपर स्थित हो उस महान् अद्भुत धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और उसपर उत्तम बाणका संधान करके वे रोषावेशसे होठको चाटने लगे। फिर धनुषकी मूठको दृढ़तापूर्वक पकड़कर और दृष्टिमें दृष्टि मिलाकर वे वहाँ अचलभावसे खड़े हो गये। परंतु उनके अँगूठेके अग्रभागमें स्थित होकर गणेश निरन्तर पीड़ा ही पहुँचाते रहे, जिससे वे तीनों पुर त्रिशूलधारी शंकरका लक्ष्य नहीं बन सके। तब धनुर्बाणधारी मुक्तकेश विरूपाक्ष शंकरने परम शोभन आकाशवाणी सुनी। (उस व्योमवाणीने कहा—) 'ऐश्वर्यशाली जगदीश्वर! जबतक आप

इन गणेशकी अर्चना नहीं कर लेंगे, तबतक इन तीनों पुरोंका संहार नहीं कर सकेंगे।' तब ऐसी बात सुनकर अन्धकासुरके निहन्ता भगवान् शिवने भद्रकालीको बुलाकर गजाननका पूजन किया। जब हर्षपूर्वक विधि-विधान-सहित अग्रभागमें स्थित उन विनायककी पूजा की गयी, तब वे प्रसन्न हो गये। फिर तो भगवान् शंकरको उन तारक-पुत्र महामनस्वी दैत्योंके तीनों नगर यथोक्तरूपसे आकाशमें स्थित दीख पड़े। इस विषयमें कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि जब शिवजी स्वयं स्वतन्त्र, परब्रह्म, सगुण, निर्गुण, सबके द्वारा अलक्ष्य, स्वामी, परमात्मा, निरञ्जन, पञ्चदेवमय, पञ्चदेवोंके उपास्य और परात्पर प्रभु हैं, वे ही सबके उपास्य हैं, उनका उपास्य कोई नहीं है, तब सबके वन्दनीय परब्रह्मस्वरूप उन देवेश्वर महेश्वरके विषयमें यह बात उचित नहीं जान पड़ती कि उनकी कार्यसिद्धि अन्यकी कृपापर अवलम्बित हो। परंतु मुने! उन देवाधिदेव वरदानी महेश्वरके चरित्रमें लीलावश सब कुछ घटित हो सकता है। अस्तु! इस प्रकार जब गणाधिपका पूजन करके महादेवजी स्थित हुए, तब वे तीनों पुर कालवश शीघ्र ही एकताको प्राप्त हो गये। मुने! उन त्रिपुरोंके परस्पर मिलकर एक हो जानेपर महान् आत्मबलसे सम्पन्न देवताओंको महान् हर्ष हुआ। तब सम्पूर्ण देवगण, सिद्ध और परमर्षि अष्टमूर्तिधारी शिवकी स्तुति करके उच्चस्वरसे जय-जयकार करने लगे। उस समय ब्रह्मा और जगदीश्वर विष्णुने कहा—'महेश्वर! तारकके पुत्र उन त्रिपुरनिवासी दैत्योंके वधका समय भी आ गया है। विभो! इसीलिये ये पुर एकताको प्राप्त हो गये हैं। अतः देवेश! जबतक ये त्रिपुर पुनः विलग हों उसके पहले ही आप बाण छोड़कर इन्हें भस्म कर डालिये और देवताओंका कार्य सिद्ध कीजिये।'

मुने! तदनन्तर शिवजीने धनुषकी डोरी चढ़ाकर उसपर पूज्य पाशुपतास्त्र नामक बाणका संधान किया और उसे वे त्रिपुरपर छोड़नेका विचार करने लगे। शंकरजीने जिस समय अपने अद्भुत धनुषको खींचा था, उस समय अभिजित् मुहूर्त चल रहा था। उन्होंने धनुषकी टंकार तथा दुस्सह सिंहनाद करके अपना नाम घोषित किया

और उन महासुरोंको ललकारकर करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान उस भीषण बाणको उनपर छोड़ दिया। तब जिसके नोकपर अग्निदेव प्रतिष्ठित थे और जो विशेषरूपसे पापका विनाशक तथा विष्णुमय था; उस महान् जाज्वल्यमान शीघ्रगामी बाणने उन त्रिपुरनिवासी दैत्योंको दग्ध कर दिया। तत्पश्चात् वे तीनों पुर भी भस्म हो गये और एक साथ ही चारों समुद्रोंरूपी मेखलावाली भूमिपर गिर पड़े।

उस समय शिवजीकी पूजाका अतिक्रमण कर देनेके कारण सैकड़ों दैत्य उस बाणस्थित अग्निसे जलकर हाहाकार मचा रहे थे। जब भाइयोंसहित तारकाक्ष जलने लगा, तब उसने अपने स्वामी भक्तवत्सल भगवान् शंकरका स्मरण किया और मन-ही-मन महादेवको देखकर परम भक्तिपूर्वक नाना प्रकारसे विलाप करता हुआ वह उनसे कहने लगा।

तारकाक्ष बोला—'भव ! आप हमपर प्रसन्न हैं, यह हमें ज्ञात हो गया है। इस सत्यके प्रभावसे आप फिर कब भाइयों-सहित हमको दग्ध करेंगे। भगवन् ! जो देवता और असुरोंके लिये अप्राप्य है, वह (आपके हाथसे मरणरूप) दुर्लभ लाभ हमें प्राप्त हो गया। अब जिस-जिस योनिमें हम जन्म धारण करें, वहाँ हमारी बुद्धि आपकी भक्तिसे भावित रहे।' मुने ! यों वे दैत्य विलाप कर ही रहे थे कि शिवजीकी आज्ञासे उस अग्निने उन्हें अद्भुत रीतिसे जलाकर राखकी ढेरी बना दिया। व्यासजी ! और भी जो बालक और वृद्ध दानव थे, वे शिवाज्ञानुसार उस अग्निद्वारा शीघ्र ही जलकर भस्म हो गये। यहाँतक कि उन त्रिपुरोंमें जितनी स्त्रियाँ और पुरुष थे, वे सब-के-सब उस अग्निसे उसी प्रकार दग्ध हो गये जैसे कल्पान्तमें जगत् भस्म हो जाता है। उस समय उस भीषण अग्निसे कोई भी स्थावर-जंगम बिना जले नहीं बचा, किंतु असुरोंका विश्वकर्मा अविनाशी मय बच गया; क्योंकि वह देवोंका अविरोधी, शम्भुके तेजसे सुरक्षित और सद्भक्त था। विपत्तिके अवसरपर भी वह महेश्वरका शरणागत बना रहता था। जिन दैत्यों तथा अन्य प्राणियोंका भाव-अभाव अथवा कृत-अकृतके प्राप्त होनेपर नाशकारक पतन नहीं होता, वे विनाशसे बचे रहते हैं। इसलिये सत्पुरुषोंको अत्यन्त सम्भावित—उत्तम कर्मके लिये ही प्रयत्न करना चाहिये; क्योंकि निन्दित कर्म करनेसे प्राणीका विनाश हो जाता है। अतः गर्हित कर्मका आचरण भूलकर भी न करे *। उस समय भी जो दैत्य बन्धु-बान्धवोंसहित शिवजीकी पूजामें तत्पर थे, वे सब-के-सब शिव-पूजाके प्रभावसे (दूसरे जन्ममें) गणोंके अधिपति हो गये। (अध्याय ९-१०)

☆

देवोंके स्तवनसे शिवजीका कोप शान्त होना और शिवजीका उन्हें वर देना, मय दानवका शिवजीके समीप आना और उनसे वर-याचना करना, शिवजीसे वर पाकर मयका वितललोकमें जाना

व्यासजीने पूछा—महाबुद्धिमान् सनत्कुमारजी ! आप तो ब्रह्माके पुत्र और शिवभक्तोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं, अतः आप धन्य हैं। अब यह बतलाइये कि त्रिपुरके दग्ध हो जानेपर सम्पूर्ण देवताओंने क्या किया ? मय कहाँ गया और उन त्रिपुराध्यक्षोंकी क्या

---

* तस्माद् यत्नः सुसम्भाव्यः सद्भिः कर्तव्य एव हि। गर्हणात् क्षीयते लोको न तत्कर्म समाचरेत्॥
(शि० पु० रु० सं० युद्धख० १०। ४२)

गति हुई ? यदि यह वृत्तान्त शम्भुकी कथासे सम्बन्ध रखनेवाला हो तो वह सब विस्तारपूर्वक मुझसे वर्णन कीजिये।

सूतजी कहते हैं—मुने ! व्यासजीका प्रश्न सुनकर सृष्टिकर्ता ब्रह्माके पुत्र भगवान् सनत्कुमार शिवजीके युगल चरणोंका स्मरण करके बोले।

सनत्कुमारजीने कहा—महाबुद्धिमान् व्यासजी ! जब महेश्वरने दैत्योंसे खचाखच भरे हुए सम्पूर्ण त्रिपुरको भस्म कर दिया, तब सभी देवताओंको महान् आश्चर्य हुआ। उस समय शंकरजीके महान् भयंकर रौद्र रूपको, जो करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान और प्रलयकालीन अग्निकी भाँति तेजस्वी था तथा जिसके तेजसे दसों दिशाएँ प्रज्वलित-सी दीख रही थीं, देखकर साथ ही हिमाचल-पुत्री पार्वतीदेवीकी ओर दृष्टिपात करके सम्पूर्ण देवता भयभीत हो गये। तब मुख्य-मुख्य देवता विनम्र होकर सामने खड़े हो गये। उस अवसरपर बड़े-बड़े ऋषि भी देवताओंकी वाहिनीको भयभीत देखकर खड़े ही रह गये, कुछ बोल न सके। वे चारों ओरसे शम्भुको प्रणाम करने लगे। तत्पश्चात् ब्रह्मा भी शिवजीके उस रूपको देखकर भयग्रस्त हो गये। तब उन्होंने डरे हुए विष्णु तथा देवगणोंके साथ प्रसन्न मनसे सावधानीपूर्वक उन गिरिजासहित महेश्वरका, जो देवोंके भी देव, भव तथा हरनामसे प्रसिद्ध, भक्तोंके अधीन रहनेवाले और त्रिपुरहन्ता हैं, स्तवन किया। तदनन्तर सभी प्रमुख देवताओंने भगवान् शिवकी स्तुति की। यों स्तुति किये जानेपर लोकोंके कल्याणकर्ता शंकर प्रसन्न होकर बोले।

शंकरजीने कहा—ब्रह्मा, विष्णु तथा देवगण ! मैं तुमलोगोंपर विशेषरूपसे प्रसन्न हूँ, अतः अब तुम सभी विचार करके अपना मनोवाञ्छित वर माँग लो।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ ! शिवद्वारा कहे हुए वचनको सुनकर सभी देवताओंका मन प्रसन्नतासे खिल उठा। फिर तो वे बोल उठे।

देवताओंने कहा—भगवन् ! देवदेवेश ! यदि आप हमपर प्रसन्न हैं और हम देवगणोंको अपना दास समझकर वर देना चाहते हैं तो देवसत्तम ! जब-जब देवताओंपर दुःखकी सम्भावना हो, तब-तब आप प्रकट होकर सदा उनके दुःखोंका विनाश करते रहें।

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे ! जब ब्रह्मा, विष्णु और देवताओंने भगवान् रुद्रसे ऐसी प्रार्थना की, तब वे शान्त तथा प्रसन्न होकर एक साथ ही सबसे बोले—'अच्छा, सदा ऐसा ही होगा।' ऐसा कहकर शंकरजीने, जो सदा देवोंका दुःख हरण करनेवाले हैं, प्रसन्नतापूर्वक देवोंको जो कुछ अभीष्ट था, वह सारा-का-सारा उन्हें प्रदान कर दिया। इसी समय मय दानव, जो शिवजीकी कृपाके बलसे जलनेसे बच गया था, शम्भुको प्रसन्न देखकर हर्षित मनसे वहाँ आया। उसने विनीत भावसे हाथ जोड़कर प्रेमपूर्वक हर तथा अन्यान्य देवोंको भी प्रणाम किया। फिर वह शिवजीके चरणोंमें लोट गया। तत्पश्चात् दानवश्रेष्ठ मयने उठकर शिवजीकी ओर देखा। उस समय प्रेमके

कारण उसका गला भर आया और वह भक्तिपूर्ण चित्तसे उनकी स्तुति करने लगा। द्विजश्रेष्ठ! मयद्वारा किये गये स्तवनको सुनकर परमेश्वर शिव प्रसन्न हो गये और आदरपूर्वक उससे बोले।

शिवजीने कहा—दानवश्रेष्ठ मय! मैं तुझपर प्रसन्न हूँ, अतः तू वर माँग ले। इस समय जो कुछ भी तेरे मनकी अभिलाषा होगी, उसे मैं अवश्य पूर्ण करूँगा।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! शम्भुके इस मङ्गलमय वचनको सुनकर दानवश्रेष्ठ मयने अञ्जलि बाँधकर विनम्र हो उन प्रभुके चरणोंमें नमस्कार करके कहा।

मय बोला—देवाधिदेव महादेव! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और मुझे वर पानेका अधिकारी समझते हैं तो अपनी शाश्वती भक्ति प्रदान कीजिये। परमेश्वर! मैं सदा अपने भक्तोंसे मित्रता रखूँ, दीनोंपर सदा मेरा दयाभाव बना रहे और अन्यान्य दुष्ट प्राणियोंकी मैं उपेक्षा करता रहूँ। महेश्वर! कभी भी मुझमें आसुर भावका उदय न हो। नाथ! निरन्तर आपके शुभ भजनमें तल्लीन रहकर निर्भय बना रहूँ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी! शंकर तो सबके स्वामी तथा भक्तवत्सल हैं। मयने जब इस प्रकार उन परमेश्वरकी प्रार्थना की, तब वे प्रसन्न होकर मयसे बोले।

महेश्वरने कहा—दानवसत्तम! तू मेरा भक्त है, तुझमें कोई भी विकार नहीं है; अतः तू धन्य है। अब मैं तेरा जो कुछ भी अभीष्ट वर है, वह सारा-का-सारा तुझे प्रदान करता हूँ। अब तू मेरी आज्ञासे अपने परिवारसहित वितललोकको चला जा। वह स्वर्गसे भी रमणीय है। तू वहाँ प्रसन्नचित्तसे मेरा भजन करते हुए निर्भय होकर निवास कर। मेरी आज्ञासे कभी भी तुझमें आसुर भावका प्राकट्य नहीं होगा।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! मयने महात्मा शंकरकी उस आज्ञाको सिर झुकाकर स्वीकार किया और उन्हें तथा अन्यान्य देवोंको भी प्रणाम करके वह वितललोकको चला गया। तदनन्तर महादेवजी देवताओंके उस महान् कार्यको पूर्ण करके देवी पार्वती, अपने पुत्र और सम्पूर्ण गणोंसहित अन्तर्धान हो गये। जब परिवारसमेत भगवान् शंकर अन्तर्हित हो गये, तब वह धनुष, बाण, रथ आदि सारा उपकरण भी अदृश्य हो गया। तत्पश्चात् ब्रह्मा, विष्णु तथा अन्यान्य देव, मुनि, गन्धर्व, किंनर, नाग, सर्प, अप्सरा और मनुष्योंको महान् हर्ष प्राप्त हुआ। वे सभी शंकरजीके उत्तम यशका बखान करते हुए आनन्दपूर्वक अपने-अपने स्थानको चले गये। वहाँ पहुँचकर उन्हें परम सुखकी प्राप्ति हुई। महर्षे! इस प्रकार मैंने शशिमौलि शंकरजीका विशाल चरित, जो त्रिपुर-विनाशको सूचित करनेवाला तथा परमोत्कृष्ट लीलासे युक्त है, सारा-का-सारा तुम्हें सुना दिया। (अध्याय ११-१२)

☆

दम्भकी तपस्या और विष्णुद्वारा उसे पुत्र-प्राप्तिका वरदान, शङ्खचूडका जन्म, तप और उसे वरप्राप्ति, ब्रह्माजीकी आज्ञासे उसका पुष्करमें तुलसीके पास आना और उसके साथ वार्तालाप, ब्रह्माजीका पुनः वहाँ प्रकट होकर दोनोंको आशीर्वाद देना और शङ्खचूडका गान्धर्व विवाहकी विधिसे तुलसीका पाणिग्रहण करना

तदनन्तर जलन्धरकी उत्पत्तिसे लेकर उसके वधतकका प्रसङ्ग सुनाकर सनत्कुमारजीने कहा—मुने ! अब शम्भुका दूसरा चरित्र प्रेमपूर्वक श्रवण करो। उसके सुनने-मात्रसे शिवभक्ति सुदृढ़ हो जाती है। व्यासजी ! शङ्खचूड नामक एक महावीर दानव था, जो देवोंके लिये कण्टकस्वरूप था। उसे शिवजीने रणके मुहानेपर त्रिशूलसे मार डाला था। शिवजीका वह दिव्य चरित्र परम पावन तथा पापनाशक है। तुमपर अधिक स्नेह होनेके कारण मैं उसका वर्णन करता हूँ, तुम प्रेमपूर्वक उसे श्रवण करो। ब्रह्माके पुत्र जो महर्षि मरीचि थे, उनके पुत्र कश्यप हुए। ये मननशील, धर्मिष्ठ, सृष्टिकर्ता, विद्यासम्पन्न तथा प्रजापति थे। दक्षने प्रसन्न होकर अपनी तेरह कन्याओंका विवाह इनके साथ कर दिया। उनकी संतानोंका इतना अधिक विस्तार हुआ कि उसका वर्णन करना कठिन है। उन कश्यप-पत्नियोंमें एकका नाम दनु था। वह श्रेष्ठ सुन्दरी तथा महारूपवती थी। उस सार्थ्वीका सौभाग्य बढ़ा हुआ था। मुने ! उस दनुके बहुत-से महाबली पुत्र उत्पन्न हुए। विस्तारभयसे उनके नाम नहीं गिनाये जा रहे हैं। उनमें एकका नाम विप्रचित्ति था, जो महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न था। उसका पुत्र दम्भ हुआ, जो जितेन्द्रिय, धार्मिक तथा विष्णुभक्त था। जब उसके कोई पुत्र नहीं हुआ, तब उस वीरको चिन्ता व्याप्त हो गयी। उसने शुक्राचार्यको गुरु बनाकर उनसे श्रीकृष्ण-मन्त्र प्राप्त किया और पुष्करमें जाकर घोर तप करना आरम्भ किया। वहाँ सुदृढ़ आसन लगाकर कृष्ण-मन्त्रका जप करते हुए उसके एक लाख वर्ष बीत गये। तब उस तपस्वीके मस्तकसे एक जाज्वल्यमान तेज निकलकर सर्वत्र व्याप्त हो गया। वह तेज इतना दुस्सह था कि उससे सम्पूर्ण देवता, मुनि तथा मनु संतप्त हो उठे। तब वे इन्द्रको अगुआ बनाकर ब्रह्माके शरणापन्न हुए। वहाँ उन्होंने सम्पूर्ण सम्पत्तियोंके दाता विधाताको प्रणाम करके उनकी स्तुति की और फिर विशेषरूपसे व्याकुल होकर अपना सारा वृत्तान्त उनसे कह सुनाया। उनकी बात सुनकर ब्रह्मा भी उन्हें साथ लेकर वह सारा वृत्तान्त विष्णुको सुनानेके लिये वैकुण्ठको चले। वहाँ पहुँचकर सब लोगोंने त्रिलोकीके अधीश्वर तथा रक्षक परमात्मा विष्णुको विनीतभावसे प्रणाम किया और फिर हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे।

देवता बोले—देवदेव ! हमें पता नहीं कि यहाँ कौन-सा कारण उत्पन्न हो गया है। हम किसके तेजसे संतप्त हो उठे हैं, यह आप ही बतलाइये। दीनबन्धो ! अपने दुःखी सेवकोंके रक्षक तो आप ही हैं; अतः शरणदाता ! रमानाथ ! हम शरणागतोंकी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने ! ब्रह्मा

आदि देवताओंके वचनको सुनकर शरणागतवत्सल भगवान् विष्णु मुस्कराये और प्रेमपूर्वक बोले।

विष्णुने कहा—अमरो! शान्त रहो, घबराओ मत, भयभीत न होओ। कोई उलट-पलट नहीं होगा; क्योंकि अभी प्रलयका समय नहीं आया है। (यह तेज तो) दम्भ नामक दानवका है, जो मेरा भक्त है और पुत्रकी कामनासे तप कर रहा है। मैं उसे वरदान देकर शान्त कर दूँगा।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! भगवान् विष्णुके यों कहनेपर ब्रह्मा आदि देवताओंकी व्यग्रता जाती रही, वे सभी धैर्य धारण करके अपने-अपने धामको लौट गये। इधर भगवान् अच्युत भी वर प्रदान करनेके लिये पुष्करको चल पड़े, जहाँ वह दम्भ नामक दानव तप कर रहा था। वहाँ पहुँचकर श्रीहरिने अपने मन्त्रका जप करनेवाले भक्त दम्भको सान्त्वना देते हुए मधुर वाणीमें कहा—'वर माँग!' तब विष्णुका उपर्युक्त वचन सुनकर और उन्हें आगे उपस्थित देखकर दम्भ बड़ी भक्तिके साथ उनके चरणोंमें लोट-पोट हो गया और बारंबार स्तुति करते हुए बोला।

दम्भने कहा—देवाधिदेव! कमलनयन! आपको नमस्कार है। रमानाथ! मुझपर कृपा कीजिये। त्रिलोकेश! मुझे एक ऐसा वीर पुत्र दीजिये, जो आपका भक्त तथा महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न हो। वह त्रिलोकीको जीत ले, परंतु देवता उसे पराजित न कर सकें।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! दानवराज दम्भके यों कहनेपर श्रीहरिने उसे वह वर दे दिया और उस घोर तपसे उसे निवृत्त करके स्वयं अन्तर्धान हो गये। दानवेन्द्र दम्भकी तपस्या सिद्ध हो चुकी थी, जिससे उसका मनोरथ पूर्ण हो गया था; अतः वह भी श्रीहरिके चले जानेपर उस दिशाको नमस्कार करके अपने घरको लौट गया। थोड़े ही समयके उपरान्त उसकी भाग्यवती पत्नी गर्भवती हो गयी। वह अपने तेजसे घरके भीतरी भागको प्रकाशित करती हुई शोभा पाने लगी। मुने! श्रीकृष्णके पार्षदोंका अग्रणी जो सुदामा नामक गोप था, जिसे राधाजीने शाप दे दिया था, वही उसके गर्भमें प्रविष्ट हुआ था। तदनन्तर समय आनेपर साध्वी दम्भ-पत्नीने एक तेजस्वी बालकको जन्म दिया। तब पिताने बहुत-से मुनीश्वरोंको बुलाकर उसका विधिपूर्वक जातकर्म आदि संस्कार सम्पन्न किया। द्विजोत्तम! उस पुत्रके उत्पन्न होनेपर बहुत बड़ा उत्सव मनाया गया। फिर शुभ दिन आनेपर पिताने उस बालकका 'शङ्खचूड' ऐसा नामकरण किया। वह अपने पिताके घरमें शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी भाँति बढ़ने लगा। वह अत्यन्त तेजस्वी था, अतः उसने बचपनमें ही सारी विद्याएँ सीख लीं। वह नित्य बालक्रीड़ा करके अपने माता-पिताका हर्ष बढ़ाने लगा और अपने समस्त कुटुम्बियोंका तो वह विशेषरूपसे प्रेम-भाजन हो गया।

तदनन्तर जब शङ्खचूड बड़ा हुआ, तब वह जैगीषव्य मुनिके उपदेशसे पुष्करमें जाकर ब्रह्माजीको प्रसन्न करनेके लिये भक्तिपूर्वक तपस्या करने लगा। उस समय वह एकाग्रमन हो अपनी इन्द्रियोंको काबूमें करके गुरूपदिष्ट ब्रह्मविद्याका जप करता रहा। यों पुष्करमें तपस्या करते हुए दानवराज

शङ्खचूडको वर देनेके लिये लोकगुरु एवं ऐश्वर्यशाली ब्रह्मा शीघ्र ही वहाँ पधारे और उस दानवेन्द्रसे बोले—'वर माँग !' ब्रह्माजीको देखकर उसने अत्यन्त नम्रतासे उन्हें अभिवादन किया और फिर उत्तम वाणीसे उनकी स्तुति की। तत्पश्चात् उसने ब्रह्मासे वर माँगते हुए कहा—'भगवन् ! मैं देवताओंके लिये अजेय हो जाऊँ !' तब ब्रह्माजी परम प्रसन्न होकर बोले—'तथास्तु—ऐसा ही होगा।' फिर उन्होंने शङ्खचूडको वह दिव्य श्रीकृष्णकवच प्रदान किया, जो जगत्के सम्पूर्ण मङ्गलोंका भी मङ्गल और सर्वत्र विजय प्रदान करनेवाला है। तदनन्तर ब्रह्माजीने उसे आज्ञा दी कि 'तुम बदरीवनको जाओ। वहीं धर्मध्वजकी कन्या तुलसी सकामभावसे तपस्या कर रही है। तुम उसके साथ विवाह कर लो।' यों कहकर ब्रह्माजी उसी क्षण उसके सामने ही तुरंत अन्तर्धान हो गये। तब तपःसिद्ध शङ्खचूडने भी, जिसके सारे मनोरथ तपोबलसे पूर्ण हो चुके थे और मुखपर

प्रसन्नता खेल रही थी, पुष्करमें ही उस जगत्के मङ्गलोंके भी मङ्गलस्वरूप कवचको गलेमें बाँध लिया और ब्रह्माके आज्ञानुसार वह तत्काल ही बदरिकाश्रमको चल पड़ा। वहाँ दानव शङ्खचूड सहसा उस स्थानपर जा पहुँचा जहाँ धर्मध्वजकी पुत्री तुलसी तप कर रही थी। सुन्दरी तुलसीका रूप अत्यन्त कमनीय और मनोहर था। वह उत्तम शीलसे सम्पन्न थी। उस सतीको देखकर शङ्खचूड उसके समीप ही ठहर गया और मधुर वाणीमें उससे बोला।

शङ्खचूडने कहा—सुन्दरी ! तुम कौन हो ? किसकी पुत्री हो ? तुम यहाँ चुपचाप बैठकर क्या कर रही हो ? यह सारा रहस्य मुझे बतलाओ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने ! शङ्खचूडके ये सकाम वचन सुनकर तुलसीने उससे कहा।

तुलसी बोली—मैं धर्मध्वजकी तपस्विनी कन्या हूँ और यहाँ तपोवनमें तप कर रही हूँ। आप कौन हैं ? सुखपूर्वक अपने अभीष्ट स्थानको चले जाइये; क्योंकि नारीजाति ब्रह्मा आदिको भी मोहमें डाल देनेवाली होती है। यह विषतुल्य, निन्दनीय, दोष उत्पन्न करनेवाली, मायारूपिणी तथा विचारशीलोंको भी शृङ्खलाके समान जकड़ लेनेवाली होती है।

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे ! तुलसी जब इस प्रकार रसभरी बातें कहकर चुप हो गयी, तब उसे मुसकराती देखकर शङ्खचूडने भी कहना आरम्भ किया।

शङ्खचूड बोला—देवि ! तुमने जो बात कही है, वह सारी-की-सारी मिथ्या हो, ऐसी बात नहीं है। उसमें कुछ सत्य है और कुछ

असत्य भी। इसका विवरण मुझसे सुनो। शोभने! जगत्में जितनी पतिव्रता नारियाँ हैं, उनमें तुम अग्रणी हो। मेरा तो ऐसा विचार है कि जैसे मैं पापबुद्धि कामी नहीं हूँ, उसी प्रकार तुम भी काम-पराधीना नहीं हो। फिर भी इस समय मैं ब्रह्माजीकी आज्ञासे तुम्हारे समीप आया हूँ और गान्धर्व विवाहकी विधिसे तुम्हें ग्रहण करूँगा। भद्रे! क्या तुम मुझे नहीं जानती हो अथवा तुमने कभी मेरा नाम भी नहीं सुना है? अरे! देवताओंमें भगदड़ डालनेवाला शङ्खचूड मैं ही हूँ। मैं दनुका वंशज तथा दम्भ नामक दानवका पुत्र हूँ। पूर्वकालमें मैं श्रीहरिका पार्षद था। मेरा नाम सुदामा गोप था। इस समय मैं राधिकाजीके शापसे दानवराज शङ्खचूड होकर उत्पन्न हुआ हूँ। ये सारी बातें मुझे ज्ञात हैं; क्योंकि श्रीकृष्णके प्रभावसे मुझे अपने पूर्वजन्मका स्मरण बना हुआ है।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! तुलसीके समक्ष यों कहकर शङ्खचूड चुप हो गया। जब दानवराजने आदरपूर्वक तुलसीसे ऐसा सत्य वचन कहा, तब वह परम प्रसन्न हुई और मुसकराकर कहने लगी।

तुलसी बोली—भद्र पुरुष! आज आपने अपने सात्त्विक विचारसे मुझे पराजित कर दिया है। जो पुरुष स्त्रीद्वारा परास्त न हो सके, वह संसारमें धन्यवादका पात्र है; क्योंकि जिसे स्त्री जीत लेती है, वह पुरुष सदाचारी होते हुए भी सदा अपावन बना रहता है। देवता, पितर और समस्त मानव उसकी निन्दा करते हैं। जननाशौच तथा मरणाशौचमें ब्राह्मण दस दिनोंमें, क्षत्रिय बारह दिनोंमें और वैश्य पंद्रह दिनोंमें शुद्ध हो जाता है तथा शूद्रकी शुद्धि एक मासमें हो जाती है—ऐसा वेदका अनुशासन है; परंतु स्त्रीसे पराजित हुए पुरुषकी शुद्धि चितादाहके अतिरिक्त अन्य किसी प्रकारसे सम्भव ही नहीं है। इसी कारण उसके पितर उसके द्वारा दिये गये पिण्ड-तर्पण आदिको इच्छापूर्वक ग्रहण नहीं करते तथा देवता भी उसके द्वारा अर्पित किये गये पुष्प-फल आदिको स्वीकार नहीं करते। जिसका मन स्त्रियोंद्वारा आहत हो जाता है, उसके ज्ञान, उत्तम तप, जप, होम, पूजन, विद्या और दानसे क्या लाभ? अर्थात् उसके ये सभी निष्फल हो जाते हैं। मैंने आपके विद्या, प्रभाव और ज्ञानकी जानकारीके लिये ही आपकी परीक्षा ली है; क्योंकि कामिनीको चाहिये कि वह अपने मनोनीत कान्तकी परीक्षा करके ही उसे पतिरूपसे वरण करे।

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी! जिस समय तुलसी यों वार्तालाप कर रही थी, उसी समय सृष्टिकर्ता ब्रह्मा वहाँ आ पहुँचे और इस प्रकार कहने लगे।

ब्रह्माजीने कहा—शङ्खचूड! तुम इसके साथ क्या व्यर्थमें वाद-विवाद कर रहे हो? तुम गान्धर्व विवाहकी विधिसे इसका पाणिग्रहण करो; क्योंकि निश्चय ही तुम पुरुषरत्न हो और यह सती-साध्वी नारियोंमें रत्नस्वरूपा है। ऐसी दशामें निपुणका निपुणके साथ समागम गुणकारी ही होगा। (फिर तुलसीकी ओर लक्ष्य करके बोले—) सती-साध्वी तुलसी! तू ऐसे गुणवान् कान्तकी क्या परीक्षा ले रही है? यह तो देवताओं, असुरों तथा दानवोंका मान मर्दन करनेवाला है। सुन्दरी! तू इसके साथ सम्पूर्ण लोकोंमें

सर्वदा उत्तम-उत्तम स्थानोंपर चिरकालतक यथेष्ट विहार कर। शरीरान्त होनेपर यह पुनः गोलोकमें श्रीकृष्णको ही प्राप्त होगा और इसकी मृत्यु हो जानेपर तू भी वैकुण्ठमें चतुर्भुज भगवान्‌को प्राप्त करेगी।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! इस प्रकार आशीर्वाद देकर ब्रह्मा अपने धामको चले गये। तब दानव शङ्खचूड़ने गान्धर्व-विवाहकी विधिसे तुलसीका पाणिग्रहण किया। यों तुलसीके साथ विवाह करके वह अपने पिताके स्थानको चला गया और मनोरम भवनमें उस रमणीके साथ विहार करने लगा।

(अध्याय १३—२९)

☆

शङ्खचूडका असुरराज्यपर अभिषेक और उसके द्वारा देवोंका अधिकार छीना जाना, देवोंका ब्रह्माकी शरणमें जाना, ब्रह्माका उन्हें साथ लेकर विष्णुके पास जाना, विष्णुद्वारा शङ्खचूडके जन्मका रहस्योद्घाटन और फिर सबका शिवके पास जाना और शिवसभामें उनकी झाँकी करना तथा अपना अभिप्राय प्रकट करना

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे! जब शङ्खचूड़ने तप करके वर प्राप्त कर लिया और वह विवाहित होकर अपने घर लौट आया, तब दानवों और दैत्योंको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे सभी असुर तुरंत ही अपने लोकसे निकलकर अपने गुरु शुक्राचार्यको साथ ले दल बनाकर उसके निकट आये और विनयपूर्वक उसे प्रणाम करके अनेकों प्रकारसे आदर प्रदर्शित करते हुए उसका स्तवन करने लगे। फिर उसे अपना तेजस्वी स्वामी मानकर अत्यन्त प्रेमभावसे उसके पास ही खड़े हो गये। उधर दम्भकुमार शङ्खचूड़ने भी अपने कुलगुरु शुक्राचार्यको आया हुआ देखकर बड़े आदर और भक्तिके साथ उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। तदनन्तर गुरु शुक्राचार्यने समस्त असुरोंके साथ सलाह करके उनकी सम्मतिसे शङ्खचूड़को दानवों तथा असुरोंका अधिपति बना दिया। दम्भपुत्र शङ्खचूड़ प्रतापी एवं वीर तो था ही, उस समय असुर-राज्यपर अभिषिक्त होनेके कारण वह असुरराज विशेषरूपसे शोभा पाने लगा। तब उसने सहसा देवताओंपर आक्रमण करके वेगपूर्वक उनका संहार करना आरम्भ किया। सम्पूर्ण देवता मिलकर भी उसके उत्कृष्ट तेजको सहन न कर सके, अतः वे समरभूमिसे भाग चले और दीन होकर यत्र-तत्र पर्वतोंकी खोहोंमें जा छिपे। उनकी स्वतन्त्रता जाती रही। वे शङ्खचूड़के वशवर्ती होनेके कारण प्रभाहीन हो गये। इधर शूरवीर प्रतापी दम्भकुमार दानवराज शङ्खचूड़ने भी सम्पूर्ण लोकोंको जीतकर देवताओंका सारा अधिकार छीन लिया। वह त्रिलोकीको अपने अधीन करके सम्पूर्ण लोकोंपर शासन करने लगा और स्वयं इन्द्र बनकर सारे यज्ञभागोंको भी हड़पने लगा तथा अपनी शक्तिसे कुबेर, सोम, सूर्य, अग्नि, यम और वायु आदिके अधिकारोंका

भी पालन कराने लगा। उस समय महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न महावीर शङ्खचूड समस्त देवताओं, असुरों, दानवों, राक्षसों, गन्धर्वों, नागों, किंनरों, मनुष्यों तथा त्रिलोकीके अन्यान्य प्राणियोंका एकच्छत्र सम्राट् था। इस प्रकार महान् राजराजेश्वर शङ्खचूड बहुत वर्षोंतक सम्पूर्ण भुवनोंके राज्यका उपभोग करता रहा। उसके राज्यमें न अकाल पड़ता था न महामारी और न अशुभ ग्रहोंका ही प्रकोप होता था; आधि-व्याधियाँ भी अपना प्रभाव नहीं डाल पाती थीं। यों सारी प्रजा सदा सुखी रहती थी। पृथ्वी बिना जोते ही अनेक प्रकारके धान्य उत्पन्न करती थी। नाना प्रकारकी ओषधियाँ उत्तम-उत्तम फलों और रसोंसे युक्त थीं। उत्तम-उत्तम मणियोंकी खदानें थीं। समुद्र अपने तटोंपर निरन्तर ढेर-के-ढेर रत्न बिखेरते रहते थे। वृक्षोंमें सदा पुष्प-फल लगे रहते थे। सरिताओंमें सुस्वादु नीर बहता रहता था। देवताओंके अतिरिक्त सभी जीव सुखी थे। उनमें किसी प्रकारका विकार नहीं उत्पन्न होता था। चारों वर्णों और आश्रमोंके सभी लोग अपने-अपने धर्ममें स्थित रहते थे। इस प्रकार जब वह त्रिलोकीका शासन कर रहा था, उस समय कोई भी दुःखी नहीं था; केवल देवता भ्रातृ-द्रोहवश दुःख उठा रहे थे। मुने! महाबली शङ्खचूड गोलोकनिवासी श्रीकृष्णका परम मित्र था। साधुस्वभाववाला वह सदा श्रीकृष्णकी भक्तिमें निरत रहता था। पूर्वशापवश उसे दानवकी योनिमें जन्म लेना पड़ा था, परंतु दानव होनेपर भी उसकी बुद्धि दानवकी-सी नहीं थी।

प्रिय व्यासजी! तदनन्तर जो पराजित होकर राज्यसे हाथ धो बैठे थे, वे सभी सुरगण तथा ऋषि परस्पर मन्त्रणा करके ब्रह्माजीकी सभाको चले। वहाँ पहुँचकर उन्होंने ब्रह्माजीका दर्शन किया और उनके चरणोंमें अभिवादन करके विशेषरूपसे उनकी स्तुति की। फिर आकुलतापूर्वक अपना सारा वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया। तब ब्रह्मा उन सभी देवताओं तथा मुनियोंको ढाढ़स बँधाकर उन्हें साथ ले सत्पुरुषोंको सुख प्रदान करनेवाले वैकुण्ठ-लोकको चल पड़े। वहाँ पहुँचकर देवगणोंसहित ब्रह्माने रमापतिका दर्शन किया। उनके मस्तकपर किरीट सुशोभित था, कानोंमें कुण्डल झलमला रहे थे और कण्ठ वनमालासे विभूषित था। वे चतुर्भुज देव अपनी चारों भुजाओंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए थे। श्रीविग्रहपर पीताम्बर शोभा दे रहा था और सनन्दनादि सिद्ध उनकी सेवामें नियुक्त थे। ऐसे सर्वव्यापी विष्णुकी झाँकी करके ब्रह्मा आदि देवताओं तथा मुनीश्वरोंने उन्हें प्रणाम किया और फिर भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर वे उनकी स्तुति करने लगे।

देवता बोले—सामर्थ्यशाली वैकुण्ठाधिपते! आप देवोंके भी देव और लोकोंके स्वामी हैं। आप त्रिलोकीके गुरु हैं। श्रीहरे! हम सब आपके शरणापन्न हुए हैं, आप हमारी रक्षा कीजिये। अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले ऐश्वर्यशाली त्रिलोकेश! आप ही लोकोंके पालक हैं। गोविन्द! लक्ष्मी आपमें ही निवास करती हैं और आप अपने भक्तोंके प्राण-स्वरूप हैं, आपको हमारा नमस्कार है। इस प्रकार स्तुति करके सभी देवता श्रीहरिके आगे रो पड़े। उनकी बात सुनकर भगवान्

विष्णुने ब्रह्मासे कहा।

विष्णु बोले—ब्रह्मन्! यह वैकुण्ठ योगियोंके लिये भी दुर्लभ है। तुम यहाँ किस लिये आये हो? तुमपर कौन-सा कष्ट आ पड़ा है? वह यथार्थरूपसे मेरे सामने वर्णन करो।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! श्रीहरिका वचन सुनकर ब्रह्माजीने विनम्र-भावसे सिर झुकाकर उन्हें बारंबार प्रणाम किया और अञ्जलि बाँधकर परमात्मा विष्णुके समक्ष स्थित हो देवताओंके कष्टसे भरी हुई शङ्खचूड़की सारी करतूत कह सुनायी। तब समस्त प्राणियोंके भावोंके ज्ञाता भगवान् श्रीहरि उस बातको सुनकर हँस पड़े और ब्रह्मासे उस रहस्यका उद्घाटन करते हुए बोले।

श्रीभगवान्ने कहा—कमलयोनि! मैं शङ्खचूड़का सारा वृत्तान्त जानता हूँ। पूर्वजन्ममें वह महातेजस्वी गोप था, जो मेरा भक्त था। मैं उसके वृत्तान्तसे सम्बन्ध रखनेवाले इस पुरातन इतिहासका वर्णन करता हूँ, सुनो। इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं करना चाहिये। भगवान् शंकर सब कल्याण करेंगे। गोलोकमें मेरे ही रूप श्रीकृष्ण रहते हैं। उनकी स्त्री श्रीराधा नामसे विख्यात है। वह जगज्जननी तथा प्रकृतिकी परमोत्कृष्ट पाँचवीं मूर्ति है। वही वहाँ सुन्दररूपसे विहार करनेवाली है। उनके अङ्गसे उद्भूत बहुत-से गोप और गोपियाँ भी वहाँ निवास करती हैं। वे नित्य राधा-कृष्णका अनुवर्तन करते हुए उत्तम-उत्तम क्रीड़ाओंमें तत्पर रहते हैं। वही गोप इस समय शम्भुकी इस लीलासे मोहित होकर शापवश अपनेको दुःख देनेवाली दानवी योनिको प्राप्त हो गया है। श्रीकृष्णने पहलेसे ही रुद्रके त्रिशूलसे उसकी मृत्यु निर्धारित कर दी है। इस प्रकार वह दानव-देहका परित्याग करके पुनः कृष्ण-पार्षद हो जायगा। देवेश! ऐसा जानकर तुम्हें भय नहीं करना चाहिये। चलो, हम दोनों शंकरकी शरणमें चलें; वे शीघ्र ही कल्याणका विधान करेंगे। अब हमें, तुम्हें तथा समस्त देवोंको निर्भय हो जाना चाहिये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! यों कहकर ब्रह्मासहित विष्णु शिवलोकको चले। मार्गमें वे मन-ही-मन भक्तवत्सल सर्वेश्वर शम्भुका स्मरण करते जा रहे थे। व्यासजी! इस प्रकार वे रमापति विष्णु ब्रह्माके साथ उसी समय उस शिवलोकमें जा पहुँचे, जो महान् दिव्य, निराधार तथा भौतिकतासे रहित है। वहाँ पहुँचकर उन्होंने शिवजीकी सभाका दर्शन किया। वह ऊँची एवं उत्कृष्ट प्रभाववाली सभा प्रकाशयुक्त शरीरोंवाले शिव-पार्षदोंसे घिरी होनेके कारण विशेषरूपसे शोभित हो रही थी। उन पार्षदोंका रूप सुन्दर कान्तिसे युक्त महेश्वरके रूपके सदृश था। उनके दस भुजाएँ थीं। पाँच मुख और तीन नेत्र थे। गलेमें नील चिह्न तथा शरीरका वर्ण अत्यन्त गौर था। वे सभी श्रेष्ठ रत्नोंसे युक्त रुद्राक्ष और भस्मके आभरणसे विभूषित थे। वह मनोहर सभा नवीन चन्द्रमण्डलके समान आकारवाली और चौकोर थी। उत्तम-उत्तम मणियों तथा हीरोंके हारोंसे वह सजायी गयी थी। अमूल्य रत्नोंके बने हुए कमल-पत्रोंसे सुशोभित थी। उसमें मणियोंकी जालियोंसे युक्त गवाक्ष बने थे, जिससे वह चित्र-विचित्र दीख रही थी। शंकरकी इच्छासे उसमें पद्मरागमणि जड़ी

हुई थी, जिससे वह अद्भुत-सी लग रही थी। वह स्यमन्तकमणिकी बनी हुई सैकड़ों सीढ़ियोंसे युक्त थी। उसमें चारों ओर इन्द्रनीलमणिके खंभे लगे थे, जिनपर स्वर्णसूत्रसे ग्रथित चन्दनके सुन्दर पल्लव लटक रहे थे, जिससे वह मनको मोहे लेती थी। वह भलीभाँति संस्कृत तथा सुगन्धित वायुसे सुवासित थी। एक सहस्र योजन विस्तारवाली वह सभा बहुत-से किंकरोंसे खचाखच भरी थी। उसके मध्यभागमें अमूल्य रत्नोंद्वारा निर्मित एक विचित्र सिंहासन था, उसीपर उमासहित शंकर विराजमान थे। उन्हें सुरेश्वर विष्णुने देखा। वे तारकाओंसे घिरे हुए चन्द्रमाके समान लग रहे थे। वे किरीट, कुण्डल और रत्नोंकी मालाओंसे विभूषित थे। उनके सारे अङ्गमें भस्म रमायी हुई थी और वे लीला-कमल धारण किये हुए थे। महान् उल्लाससे भरे हुए उमाकान्तका मन शान्त तथा प्रसन्न था। देवी पार्वतीने उन्हें सुवासित ताम्बूल प्रदान किया था, जिसे वे चबा रहे थे। शिवगण हाथमें श्वेत चँवर लेकर परमभक्तिके साथ उनकी सेवा कर रहे थे और सिद्ध भक्तिवश सिर झुकाकर उनके स्तवनमें लगे थे। वे गुणातीत, परेशान, त्रिदेवोंके जनक, सर्वव्यापी, निर्विकल्प, निराकार, स्वेच्छानुसार साकार, कल्याणस्वरूप, मायारहित, अजन्मा, आद्य, मायाके अधीश्वर, प्रकृति और पुरुषसे भी परात्पर, सर्वसमर्थ, परिपूर्णतम और समतायुक्त हैं। ऐसे विशिष्ट गुणोंसे युक्त शिवको देखकर ब्रह्मा और विष्णुने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और फिर वे स्तुति करने लगे। विविध प्रकारसे स्तुति करके अन्तमें वे बोले—'भगवन्! आप दीनों और अनाथोंके सहायक, दीनोंके प्रतिपालक, दीनबन्धु, त्रिलोकीके अधीश्वर और शरणागतवत्सल हैं। गौरीश! हमारा उद्धार कीजिये! परमेश्वर! हमपर कृपा कीजिये। नाथ! हम आपके ही अधीन हैं; अब आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा करें।'

(अध्याय २९-३०)

☆

देवताओंका रुद्रके पास जाकर अपना दुःख निवेदन करना, रुद्रद्वारा उन्हें आश्वासन और चित्ररथको शङ्खचूडके पास भेजना, चित्ररथके लौटनेपर रुद्रका गणों, पुत्रों और भद्रकालीसहित युद्धके लिये प्रस्थान, उधर शङ्खचूडका सेनासहित पुष्पभद्राके तटपर पड़ाव डालना तथा दानवराजके दूत और शिवकी बातचीत

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! तदनन्तर जो अत्यन्त दीनताको प्राप्त हो गये थे, उन ब्रह्मा और विष्णुका वचन सुनकर शिवजी मुसकराये और मेघगर्जनाके समान गम्भीर वाणीमें बोले।

शिवजीने कहा—हे हरे! हे ब्रह्मन्! तुमलोग शङ्खचूडद्वारा उत्पन्न हुए भयको सर्वथा त्याग दो। निस्संदेह तुम्हारा कल्याण होगा। मैं शङ्खचूडका सारा वृत्तान्त यथार्थ रूपसे जानता हूँ। वह पूर्वजन्ममें एक गोप

था, जो ऐश्वर्यशाली भगवान् श्रीकृष्णका भक्त था। इसका नाम सुदामा था। वही सुदामा राधाजीके शापसे शङ्खचूड नामक दानवराज होकर उत्पन्न हुआ है। यह परम धर्मज्ञ और देवताओंसे द्रोह करनेवाला है। यह दुर्बुद्धिवश अपने उत्कृष्ट बलके भरोसे सम्पूर्ण देवगणोंको क्लेश दे रहा है। अब तुमलोग प्रेमपूर्वक मेरी बात सुनो और देवोंको आनन्दित करनेके लिये शीघ्र ही कैलासवासी रुद्रके समीप जाओ। वह रुद्ररूप मेरा ही उत्तम पूर्णरूप है। मैं ही देव-कार्यकी सिद्धिके हेतु पृथक् स्वरूप धारण करके वहाँ प्रकट हुआ हूँ। मेरा वह रूप ऐश्वर्यशाली तथा परिपूर्णतम है। हरे! इसीलिये मैं भक्तोंके वशीभूत हो कैलास पर्वतपर सदा निवास करता हूँ।

तदनन्तर कैलास पहुँचकर देवताओंने भगवान् महेशकी स्तुति की और अन्तमें कहा— 'महेशान! आप तो कृपाके आकर हैं। दीनोंका उद्धार करना तो आपका बाना ही है। प्रभो! दानवराज शङ्खचूडका वध करके इन्द्रको उसके भयसे मुक्त कीजिये और देवोंको इस विपत्तिसे उबारिये।' तब भक्तवत्सल शम्भु देवताओंकी इस प्रार्थनाको सुनकर हँसे और मेघगर्जनकी-सी गम्भीर वाणीमें बोले।

श्रीशंकरने कहा—हे हरे! हे ब्रह्मन्! हे देवगण! तुमलोग अपने-अपने स्थानको लौट जाओ। मैं निश्चय ही सैनिकोंसहित शङ्खचूडका वध कर डालूँगा। इसमें तनिक भी संशय नहीं है।

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी! महेश्वरके उस अमृतस्रावी वचनको सुनकर सम्पूर्ण देवताओंको परम आनन्द प्राप्त हुआ। उस समय उन्होंने समझ लिया कि अब दानव शङ्खचूड मरा हुआ ही है। तब महेश्वरके चरणोंमें प्रणिपात करके विष्णु वैकुण्ठको और ब्रह्मा सत्यलोकको चले गये तथा सम्पूर्ण देवता भी अपने-अपने स्थानको प्रस्थित हुए। इधर उन महारुद्रने, जो परमेश्वर, दुष्टोंके लिये कालरूप और सत्पुरुषोंकी गति हैं, देवताओंकी इच्छासे अपने मनमें शङ्खचूडके वधका निश्चय किया। तब उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक अपने प्रेमी गन्धर्वराज चित्ररथको दूत बनाकर शीघ्र ही शङ्खचूडके पास भेजा। चित्ररथने वहाँ जाकर शङ्खचूडको खूब समझाकर कहा, परंतु उसने बिना युद्ध किये देवताओंको राज्य लौटाना स्वीकार नहीं किया और कहा—'मैंने ऐसा दृढ़ निश्चय कर लिया है कि महेश्वरके साथ युद्ध किये बिना न तो मैं राज्य ही वापस दूँगा और न अधिकारोंको ही लौटाऊँगा। तू कल्याणकर्ता रुद्रके पास लौट जा और मेरी कही हुई बात यथार्थरूपसे उनसे कह दे। वे जैसा उचित समझेंगे, वैसा करेंगे। तू व्यर्थ बकवाद मत कर।'

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ! यों कहे जानेपर वह शिवदूत पुष्पदन्त (चित्ररथ) अपने स्वामी महेश्वरके पास लौट गया और उसने सारी बातें ठीक-ठीक कह दीं। तब उस दूतके वचनको सुनकर देवताओंके स्वामी भगवान् शंकरको क्रोध आ गया। उन्होंने अपने वीरभद्र आदि गणोंसे कहा।

रुद्र बोले—हे वीरभद्र! हे नन्दिन्! क्षेत्रपाल! आठों भैरव! मैं आज शीघ्र ही शङ्खचूडका वध करनेके निमित्त चलता हूँ, अतः मेरी आज्ञासे मेरे सभी बलशाली गण

आयुधोंसे लैस होकर तैयार हो जायँ और अभी-अभी कुमारों (स्वामिकार्तिक और गणेश) के साथ रणयात्रा करें। भद्रकाली भी अपनी सेनाके साथ युद्धके लिये प्रस्थान करें।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! ऐसी आज्ञा देकर शिवजी अपनी सेनाके साथ चल पड़े। फिर तो सभी वीरगण हर्षमग्न होकर उनके पीछे-पीछे चलने लगे। इसी समय सम्पूर्ण सेनाओंके अध्यक्ष स्कन्द और गणेश भी हर्षसे भरे हुए कवच धारण करके सशस्त्र शिवजीके निकट आ पहुँचे। फिर वीरभद्र, नन्दी, महाकाल, सुभद्रक, विशालाक्ष, बाण, पिङ्गलाक्ष, विकम्पन, विरूप, विकृति, मणिभद्र, बाष्कल, कपिल, दीर्घदंष्ट्र, विकार, ताम्रलोचन, कालंकर, बलीभद्र, कालजिह्व, कुटीचर, बलोन्मत्त, रणश्लाघ्य, दुर्जय तथा दुर्गम आदि गणनायक जो प्रधान-प्रधान सेनापति थे, शिवजीके साथ चले। उनके गणोंकी संख्या करोड़ों करोड़ थी। आठों भैरव, एकादश भयंकर रुद्र, आठों वसु, इन्द्र, बारहों आदित्य, अग्नि, चन्द्रमा, विश्वकर्मा, दोनों अश्विनीकुमार, कुबेर, यम, निर्ऋति, जलकुबर, वायु, वरुण, बुध, मङ्गल तथा अन्यान्य ग्रह, पराक्रमी कामदेव, उग्रदंष्ट्र, उग्रदण्ड, कोरट तथा कोटभ आदिने भी शीघ्र ही महेश्वरका अनुगमन किया। स्वयं महेश्वरीदेवी भद्रकाली भी सौ भुजा धारण करके शिवजीके साथ चलीं। वे उत्तमोत्तम रत्नोंसे बने हुए विमानपर आरूढ़ थीं। उनके शरीरपर लाल चन्दनका अनुलेप लगा था और लाल वस्त्र शोभा पा रहा था। वे हर्षमग्न होकर हँसती, नाचती और उत्तम स्वरसे गान करती हुई अपने भक्तोंको अभय तथा शत्रुओंको भय प्रदान कर रही थीं। उनकी एक योजन लंबी भीषणाकार जिह्वा लपलपा रही थी। वे अपने हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, ढाल, तलवार, धनुष, बाण, एक योजन विस्तारवाला गहरा गोलाकार खप्पर, गगनचुम्बी त्रिशूल, एक योजन लंबी शक्ति, मुद्गर, मुसल, वज्र, खड्ग, तीखा फलक, वैष्णवास्त्र, वारुणास्त्र, वायव्यास्त्र, नागपाश, नारायणास्त्र, गन्धर्वास्त्र, ब्रह्मास्त्र, गारुडास्त्र, पर्जन्यास्त्र, पाशुपतास्त्र, जृम्भणास्त्र, पर्वतास्त्र, महान् पराक्रमी सूर्यास्त्र, कालकाल, महानल, महेश्वरास्त्र, यमदण्डास्त्र, सम्मोहनास्त्र तथा समर्थ दिव्य अस्त्र और अन्यान्य सैकड़ों दिव्यास्त्र धारण किये हुए थीं। करोड़ों योगिनियाँ तथा डाकिनियाँ उनके साथ थीं। फिर भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, वेताल, राक्षस, यक्ष और किंनर आदिसे घिरे हुए स्कन्दने पिताके पास आकर उन चन्द्रशेखरको प्रणाम किया और उनकी आज्ञासे पार्श्वभागमें स्थित होकर सहायकका स्थान ग्रहण किया। तदनन्तर रुद्ररूपधारी शम्भु अपनी सारी सेनाको एकत्रित करके शङ्खचूड़के साथ लोहा लेनेके लिये निर्भयतापूर्वक आगे बढ़े और देवताओंका उद्धार करनेके लिये चन्द्रभागा नदीके तटपर मनोहर वटवृक्षके नीचे खड़े हो गये।

व्यासजी! उधर जब शिवदूत चला गया, तब प्रतापी शङ्खचूड़ने महलके भीतर जाकर तुलसीसे वह सारी वार्ता कह सुनायी।

शङ्खचूड़ने कहा—'देवि! शम्भुके

दूतके मुखसे (रणनिमन्त्रण सुनकर) मैं युद्धके लिये उद्यत हुआ हूँ और उनसे जूझनेके लिये मैं निश्चय ही जाऊँगा। तुम इसके लिये मुझे आज्ञा दो।' यों कहकर उस ज्ञानीने अपनी प्रियाको नाना प्रकारसे समझाया। फिर ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर प्रातःकृत्य समाप्त किया और पहले नित्यकर्म पूरा करके बहुत-सा दान दिया। तत्पश्चात् अपने पुत्रको सम्पूर्ण दानवोंके राज्यपर अभिषिक्त करके उसे अपनी भार्या, राज्य और सारी सम्पत्ति समर्पित कर दी। पुनः जब उसकी प्रिया तुलसी रोती हुई उसकी रणयात्राका निषेध करने लगी, तब राजा शङ्खचूडने नाना प्रकारकी कथाएँ कहकर उसे ढाढ़स बँधाया। तदनन्तर उस समादृत दानवराजने कवच धारण करके युद्ध करनेके लिये उद्यत हो अपने वीर सेनापतिको बुलाकर उसे आदेश देते हुए कहा।

शङ्खचूड बोला—सेनापते! मेरे सभी वीर, जो सम्पूर्ण कार्योंमें कुशल और समरमें शोभा पानेवाले हैं, आज कवच धारण करके युद्धके लिये प्रस्थान करें। शूरवीर दानवों और दैत्योंकी छियासी टुकड़ियाँ तथा बलशाली कङ्कोंकी निर्भीक सेनाएँ अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित होकर नगरसे बाहर निकलें। करोड़ों प्रकारसे पराक्रम प्रकट करनेवाले जो असुरोंके पचास कुल हैं, वे भी देवोंके पक्षपाती शम्भुसे युद्ध करनेके लिये प्रस्थित हों, मेरी आज्ञासे धौम्रोंके सौ कुल भी कवचसे विभूषित हो शम्भुके साथ लोहा लेनेके लिये शीघ्र ही निकलें। कालकेयों, मौर्यों, दौहृदों तथा कालकोंको भी मेरी यह आज्ञा सुना दो कि वे रुद्रके साथ संग्राम करनेके लिये रण-सामग्रीसे सुसज्जित हो चलें।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! सेनापतिको यों आदेश देकर असुरोंका राजा महाबली दानवेन्द्र शङ्खचूड सहस्रों प्रकारकी बहुत बड़ी सेनाओंसे घिरा हुआ नगरसे बाहर निकला। उसका सेनापति भी युद्धशास्त्रमें निपुण, महारथी, महान् शूरवीर और रणभूमिमें रथियोंमें अग्रगण्य था। इस प्रकार युद्धस्थलमें वीरोंको भयभीत कर देनेवाला वह दानवराज तीन लाख अक्षौहिणी सेनाओंपर शासन करता हुआ शिविरसे बाहर निकला और उत्तमोत्तम रत्नोंद्वारा निर्मित विमानपर आरूढ़ हो गुरुजनोंको आगे करके युद्धके लिये चल पड़ा। आगे बढ़नेपर वह पुष्पभद्रा नदीके तटपर सिद्धाश्रममें जा पहुँचा। वहाँ एक मनोहर वटवृक्ष विराजमान था। वह सिद्धिक्षेत्र सिद्धोंको उत्तम सिद्धि प्रदान करनेवाला था। पुण्यक्षेत्र भारतमें वह कपिलका तपःस्थान कहलाता था। वह भूभाग पश्चिम समुद्रसे पूर्व, मलयपर्वतसे पश्चिम, श्रीशैलसे उत्तर और गन्धमादनसे दक्षिण था। उसकी चौड़ाई पाँच योजन और लंबाई पाँच सौ योजन थी। भारतके उस भागमें उत्तम पुण्य प्रदान करनेवाली तथा शुद्ध स्फटिकके समान स्वच्छ जलसे परिपूर्ण पुष्पभद्रा और सरस्वती नामकी दो रमणीय नदियाँ बहती हैं। सदा सौभाग्यसे संयुक्त रहनेवाली लवणसागरकी प्रिया भार्या पुष्पभद्रा सरस्वतीके साथ हिमालयसे निकली है और गोमन्तपर्वतको बायें करके पश्चिम समुद्रमें जा मिली है। वहाँ पहुँचकर शङ्खचूडने शिवजीकी सेनाको देखा।

मुने ! उसने पहले शिवजीके पास एक दानवेश्वरको दूतके रूपमें भेजा। उसने शिवजीसे युद्ध न करनेके लिये कहा और शिवजीने उसे देवताओंका राज्य लौटा देनेकी बात कही। अन्तमें महेश्वरने कहा—'दूत ! हम किसीका भी पक्ष नहीं लेते; क्योंकि हम तो कभी स्वतन्त्र रहते ही नहीं, सदा भक्तोंके अधीन रहते हैं और उनकी इच्छासे उन्हींका कार्य करते रहते हैं। देखो, पूर्वकालमें ब्रह्माकी प्रार्थनासे पहले-पहल प्रलय-समुद्रमें श्रीहरि और दैत्यश्रेष्ठ मधु-कैटभका भी युद्ध हुआ था। पुनः भक्तोंके हितकारी उन्हीं श्रीविष्णुने देवताओंके प्रार्थना करनेपर प्रह्लादके कारण हिरण्यकशिपुका वध किया था। तुमने यह भी सुना होगा कि पहले जो मैंने त्रिपुरोंके साथ युद्ध करके उन्हें भस्म कर डाला था, वह भी देवोंकी प्रार्थनापर ही हुआ था। पूर्वकालमें सर्वेश्वरी जगज्जननीका जो शुम्भ आदिके साथ युद्ध हुआ था और जिसमें उन्होंने उन दैत्योंका वध कर डाला था, वह भी देवताओंके प्रार्थना करनेपर ही घटित हुआ था। वे ही सभी देवगण आज भी ब्रह्माके शरणापन्न हुए थे। तब वे उन देवताओं और श्रीहरिके साथ मेरी शरणमें आये थे। दूत ! इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और देवगणोंकी प्रार्थनाके वशीभूत हो देवोंका अधीश्वर होनेके कारण मैं भी युद्धके लिये आया हूँ। तुम भी तो महात्मा श्रीकृष्णके श्रेष्ठ पार्षद हो। अबतक जो-जो दैत्य मारे गये हैं, उनमेंसे कोई भी तुम्हारी समानता नहीं कर सकता। इसलिये राजन् ! देवकार्यकी सिद्धिके लिये तुम्हारे साथ युद्ध करनेमें मुझे कौन-सी बड़ी लज्जा होगी। अर्थात् कुछ नहीं; क्योंकि मैं ईश्वर हूँ और देवताओंने मुझे विनयपूर्वक भेजा है। अतः तुम जाओ और शङ्खचूडसे मेरी बात कह दो। वह जैसा उचित समझेगा, वैसा करेगा। मुझे तो देवताओंका कार्य करना ही है।' यों कहकर कल्याणकर्ता महेश्वर चुप हो गये। तब शङ्खचूडका वह दूत उठा और उसके पास चल दिया।

(अध्याय ३१—३५)

☆

देवताओं और दानवोंका युद्ध, शङ्खचूडके साथ वीरभद्रका संग्राम, पुनः उसके साथ भद्रकालीका भयंकर युद्ध करना और आकाशवाणी सुनकर निवृत्त होना, शिवजीका शङ्खचूडके साथ युद्ध और आकाशवाणी सुनकर युद्धसे निवृत्त हो विष्णुको प्रेरित करना, विष्णुद्वारा शङ्खचूडके कवच और तुलसीके शीलका अपहरण, फिर रुद्रके हाथों त्रिशूलद्वारा शङ्खचूडका वध, शङ्खकी उत्पत्तिका कथन

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे ! जब उस दूतने शङ्खचूडके पास जाकर विस्तारपूर्वक शिवजीका वचन कह सुनाया तथा तत्त्वतः उनके यथार्थ निश्चयको भी प्रकट किया, तब उसे सुनकर प्रतापी दानवराज शङ्खचूडने भी परम प्रसन्नतापूर्वक युद्धको ही अङ्गीकार किया। फिर तो वह तुरंत ही मन्त्रियोंसहित रथपर जा बैठा और

उसने अपनी सेनाको शंकरके साथ युद्ध करनेके लिये आदेश दिया। इधर अखिलेश्वर शिवजीने भी तत्काल ही अपनी सेनाको तथा देवोंको आगे बढ़नेकी आज्ञा दी और स्वयं भी लीलावश युद्धके लिये संनद्ध हो गये। फिर तो शीघ्र ही युद्ध आरम्भ हो गया। उस समय नाना प्रकारके रणवाद्य बजने लगे। वीरोंके शब्द और कोलाहल चारों ओर गूँज उठे। मुने! इस प्रकार देवताओं और दानवोंका परस्पर युद्ध होने लगा। उस समय वे दोनों सेनाएँ धर्मपूर्वक जूझने लगीं। स्वयं महेन्द्र वृषपर्वाके साथ लड़ने लगे और विप्रचित्तिके साथ सूर्यका धर्मयुद्ध होने लगा। विष्णु दम्भके साथ भीषण संग्राम करने लगे। कालासुरसे काल, गोकर्णसे अग्नि, कालकेयसे कुबेर, मयसे विश्वकर्मा, भयंकरसे मृत्यु, संहारसे यम, कालाग्निकसे वरुण, चञ्चलसे वायु, घटपृष्ठसे बुध, रक्ताक्षसे शनैश्चर, रक्तसारसे जयन्त, वर्चागणोंसे वसुगण, दोनों दीप्तिमानोंसे दोनों अश्विनीकुमार, शूप्रसे नलकूबर, धुरंधरसे धर्म, गणकाक्षसे मंगल, शोभाकरसे वैश्वानर, पिपिटसे मन्मथ, गोकामुख, चूर्ण, खड्ग, धूम्र, संहल, प्रतापी विश्व और पलाश नामक असुरोंसे बारहों आदित्य धर्मपूर्वक लोहा लेने लगे। इस प्रकार शिवकी सहायताके लिये आये हुए अमरोंका असुरोंके साथ युद्ध होने लगा। ग्यारहों महारुद्र महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न ग्यारह भयंकर असुर-वीरोंसे भिड़ गये। उग्र और चण्ड आदिके साथ महामणि, राहुके साथ चन्द्रमा और शुक्राचार्यके साथ बृहस्पति धर्मयुद्ध करने लगे। इस प्रकार उस महायुद्धमें नन्दीश्वर आदि सभी शिवगण श्रेष्ठ दानवोंके साथ संग्राम करने लगे। विस्तारभयसे उनका पृथक् वर्णन नहीं किया गया है। मुने! उस समय सारी सेनाएँ निरन्तर युद्धमें व्यस्त थीं और शम्भु कात्यसुतके साथ वटवृक्षके नीचे विराजमान थे। उधर शङ्खचूड भी रत्नाभरणोंसे विभूषित हो करोड़ों दानवोंके साथ रमणीय रत्नसिंहासनपर बैठा हुआ था। फिर देवताओं तथा असुरोंमें चिरकालतक अत्यन्त भयानक युद्ध होता रहा। तदनन्तर शङ्खचूड भी आकर उस भीषण संग्राममें जुट गया। इसी बीच महाबली वीर वीरभद्र समरभूमिमें बलशाली शङ्खचूडसे जा भिड़े। उस युद्धमें दानवराज जिन-जिन अस्त्रोंकी वर्षा करता था, उन-उनको वीरभद्र खेल-ही-खेलमें अपने बाणोंसे काट डालते थे।

व्यासजी! इसी समय देवी भद्रकालीने समरभूमिमें जाकर बड़ा भयंकर सिंहनाद किया। उनके उस शब्दको सुनकर सभी दानव मूर्च्छित हो गये। उस समय देवीने बारंबार अट्टहास किया और मधुपान करके वे रणके मुहानेपर नृत्य करने लगीं। उनके साथ ही उग्रदंष्ट्रा, उग्रचण्डा और कोटवीने भी मधुपान किया तथा अन्यान्य देवियोंने भी खूब मधु पीकर युद्धस्थलमें नाचना आरम्भ किया। उस समय शिवगणों तथा देवोंके दलोंमें महान् कोलाहल मच गया। सारा सुर-समुदाय बहुत प्रकारसे गर्जना करता हुआ हर्षमग्न हो गया। तदनन्तर कालीने शङ्खचूडके ऊपर प्रलयकालीन अग्निकी शिखाके समान उद्दीप्त आग्नेयास्त्र चलाया, परंतु दानवराजने वैष्णवास्त्रसे उसे शीघ्र ही शान्त कर दिया। तब देवी भद्रकालीने उसपर नारायणास्त्रका प्रयोग किया। वह

अस्त्र दानव-शत्रुको देखकर बढ़ने लगा। तब प्रलयाग्निकी ज्वालाके समान उद्दीप्त होते हुए नारायणास्त्रको देखकर शङ्खचूड़ दण्डकी भाँति भूमिपर लेट गया और बारंबार प्रणाम करने लगा। तब उस दानवको नम्र हुआ देखकर वह अस्त्र निवृत्त हो गया। तत्पश्चात् देवीने उसपर मन्त्रपूर्वक ब्रह्मास्त्र छोड़ा। उस अस्त्रको प्रज्वलित होता हुआ देखकर दानवराजने भूमिपर खड़े होकर उसे प्रणाम किया और ब्रह्मास्त्रसे ही उसका निवारण कर दिया। तदनन्तर वह दानवराज कुपित हो उठा और वेगपूर्वक अपने धनुषको खींचकर देवीके ऊपर मन्त्रपाठ करते हुए दिव्यास्त्रोंकी वर्षा करने लगा। भद्रकाली समरभूमिमें अपने विस्तृत मुखको फैलाकर उन अस्त्रोंको निगल गयीं और अट्टहास-पूर्वक गर्जना करने लगीं, जिससे दानव भयभीत हो गये। तब शङ्खचूड़ने कालीके ऊपर एक सौ योजन लंबी शक्तिसे वार किया; परंतु देवीने अपने दिव्यास्त्रसमूहसे उसके सौ टुकड़े कर दिये। यों उन दोनोंमें चिरकालतक युद्ध होता रहा और सभी देवता तथा दानव दर्शक बनकर उसे देखते रहे। अन्तमें देवीने महान् कोपावेशसे उसपर वेगपूर्वक मुष्टि-प्रहार किया। उसकी चोटसे वह दानवराज चक्कर काटने लगा और उसी क्षण मूर्च्छित हो गया। फिर क्षणभरमें ही उसकी चेतना लौट आयी और वह उठ खड़ा हुआ; परंतु उस प्रतापीने मातृबुद्धि होनेके कारण देवीके साथ बाहुयुद्ध नहीं किया। तब देवीने उस दानवको पकड़कर उसे बारंबार घुमाया और बड़े क्रोधसे वेगपूर्वक ऊपरको उछाल दिया। प्रतापी शङ्खचूड़ वेगसे ऊपरको उछला और पृथ्वीपर गिरकर पुनः उठ खड़ा हुआ। उस महायुद्धमें वह तनिक भी भ्रान्त नहीं हुआ था; बल्कि उसका मन प्रसन्न था। तत्पश्चात् वह भद्रकालीको प्रणाम करके बहुमूल्य रत्नोंद्वारा निर्मित अपने परम मनोहर विमानपर जा बैठा। इधर कालिका भूखसे विह्वल होकर दानवोंका रक्त पान करने लगीं। इसी अवसरपर वहाँ यों आकाश-वाणी हुई—'ईश्वरि! अभी रणभूमिमें सिंहनाद करनेवाले डेढ़ लाख दानवेन्द्र और बचे हैं। ये बड़े उद्धत हैं, अतः तुम इन्हें अपना आहार बना लो। परंतु देवि! संग्राममें दानवराज शङ्खचूड़को मारनेके लिये मन मत दौड़ाओ; क्योंकि यह तुम्हारे लिये अवध्य है—ऐसा निश्चय समझो।' आकाशवाणीद्वारा कहे हुए वचनको सुनकर देवी भद्रकालीने बहुत-से दानवोंका मांस भक्षण करके उनका रक्त पान किया और फिर वे शिवजीके निकट चली गयीं। वहाँ उन्होंने पूर्वापरके क्रमसे सारा युद्ध-वृत्तान्त कह सुनाया।

व्यासजीने पूछा—महाबुद्धिमान् सनत्कुमारजी! कालीका वह कथन सुनकर महेश्वरने उस समय क्या कहा और कौन-सा कार्य किया। उसे आप वर्णन करनेकी कृपा करें; क्योंकि मेरे मनमें उसे सुननेकी प्रबल उत्कण्ठा जाग उठी है।

सनत्कुमारजी बोले—मुने! शम्भु तो जीवोंके कल्याणकर्ता, परमेश्वर और बड़े लीलाविहारी हैं। वे कालीद्वारा कहे हुए वचनको सुनकर उन्हें आश्वासन देते हुए हँसने लगे। तदनन्तर आकाशवाणीको सुनकर तत्त्वज्ञान-विशारद स्वयं शंकर अपने गणोंके साथ समरभूमिकी ओर चले। उस

समय वे महावृषभ नन्दीश्वरपर सवार थे और उन्हींके समान पराक्रमी वीरभद्र, भैरव और क्षेत्रपाल आदि उनके साथ थे। रणभूमिमें पहुँचकर महेश्वरने वीररूप धारण किया। उस समय उन रुद्रकी बड़ी शोभा हो रही थी और वे मूर्तिमान् काल-से दीख रहे थे। जब शङ्खचूडकी दृष्टि शिवजीपर पड़ी, तब वह विमानसे उतर पड़ा और परम भक्तिके साथ दण्डकी भाँति पृथ्वीपर लोटकर उसने सिरके बल उन्हें प्रणाम किया। इस प्रकार नमस्कार करनेके पश्चात् वह तुरंत ही अपने विमानपर जा बैठा और कवच धारण करके उसने धनुष-बाण उठाया। फिर तो दोनों ओरसे बाणोंकी झड़ी लग गयी। यों व्यर्थ ही बाण-वर्षा करनेवाले शिव और शङ्खचूडका वह उग्र युद्ध सैकड़ों वर्षोंतक चलता रहा। अन्तमें युद्धस्थलमें शङ्खचूडका वध करनेके लिये महाबली महेश्वरने सहसा अपना वह त्रिशूल उठाया, जिसका निवारण करना बड़े-बड़े तेजस्वियोंके लिये भी अशक्य है। तब तत्काल ही उसका निषेध करनेके लिये यों आकाशवाणी हुई—"शंकर! मेरी प्रार्थना सुनिये और इस समय इस त्रिशूलको मत चलाइये। ईश! यद्यपि आप क्षणमात्रमें पूरे ब्रह्माण्डका विनाश करनेमें सर्वथा समर्थ हैं, फिर इस अकेले दानव शङ्खचूडकी तो बात ही क्या है, तथापि आप स्वामीके द्वारा देवमर्यादाका विनाश नहीं होना चाहिये। महादेव! आप उस (देवमर्यादा) को सुनिये और उसे सत्य एवं सफल बनाइये। '(वह देवमर्यादा यह है कि) जबतक इस शङ्खचूडके हाथमें श्रीहरिका परम उग्र कवच वर्तमान रहेगा और इसकी पतिव्रता पत्नी (तुलसी) का सतीत्व अखण्डित रहेगा, तबतक इसपर जरा और मृत्यु अपना प्रभाव नहीं डाल सकेंगे।' अतः जगदीश्वर शंकर! ब्रह्माके इस वचनको सत्य कीजिये।"

तब सत्पुरुषोंके आश्रयस्वरूप शिवजीने उस आकाशवाणीको सुनकर 'तथास्तु' कहकर उसे स्वीकार कर लिया और विष्णुको उस कार्यके लिये प्रेरित किया। फिर तो शिवजीकी इच्छासे विष्णु वहाँसे चल पड़े। वे तो मायावियोंमें भी श्रेष्ठ मायावी ठहरे। अतः उन्होंने एक वृद्ध ब्राह्मणका वेष धारण किया और शङ्खचूडके निकट जाकर उससे यों कहा।

वृद्ध ब्राह्मण बोले—'दानवेन्द्र! इस समय मैं याचक होकर तुम्हारे पास आया हूँ, तुम मुझे भिक्षा दो। दीनवत्सल! अभी मैं अपने मनोरथको प्रकट नहीं करूँगा। (जब तुम देना स्वीकार कर लोगे, तब) पीछे मैं उसे बताऊँगा और तब तुम उसे पूर्ण करना।' ब्राह्मणकी बात सुनकर राजेन्द्र शङ्खचूडका मुख और नेत्र प्रसन्नतासे खिल उठे। जब उसने 'ओम्' कहकर उसे स्वीकार कर लिया, तब ब्राह्मणने छलपूर्वक कहा—

'मैं तुम्हारा कवच चाहता हूँ।' यह सुनकर ऐश्वर्यशाली दानवराज शङ्खचूडने, जो ब्राह्मण-भक्त और सत्यवादी था, वह दिव्य कवच जो उसे प्राणके समान था, ब्राह्मणको दे दिया। इस प्रकार श्रीहरिने मायाद्वारा उससे वह कवच ले लिया और फिर शङ्खचूडका रूप धारण करके वे तुलसीके पास पहुँचे। वहाँ जाकर सबके आत्मा एवं तुलसीके नित्य स्वामी श्रीहरिने शङ्खचूडरूपसे उसके शीलका हरण कर लिया।

इसी समय विष्णुभगवान्‌ने शम्भुसे अपनी सारी बात कह सुनायी। तब शिवजीने शङ्खचूडके वधके निमित्त अपना उद्दीप्त त्रिशूल हाथमें लिया। परमात्मा शंकरका वह विजय नामक त्रिशूल अपनी उत्कृष्ट प्रभा बिखेर रहा था। उससे सारी दिशाएँ, पृथ्वी और आकाश प्रकाशित हो उठे। वह मध्याह्नकालीन करोड़ों सूर्यों तथा प्रलयाग्निकी शिखाके समान चमकीला था। उसका निवारण करना असम्भव था। वह दुर्धर्ष, कभी व्यर्थ न होनेवाला और शत्रुओंका संहारक था। वह तेजोंका अत्यन्त उग्र समूह, सम्पूर्ण शस्त्रास्त्रोंका सहायक, भयंकर और सारे देवताओं तथा असुरोंके लिये दुस्सह था। वह एक ही स्थानपर ऐसा दमक रहा था, मानो लीलाका आश्रय लेकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका संहार करनेके लिये उद्यत हो। उसकी लंबाई एक हजार धनुष और चौड़ाई सौ हाथ थी। उस जीव-ब्रह्मस्वरूप शूलका किसीके द्वारा निर्माण नहीं हुआ था। उसका रूप नित्य था। आकाशमें चक्कर काटता हुआ वह त्रिशूल शिवजीकी आज्ञासे शङ्खचूडके ऊपर गिरा और उसने उसी क्षण उसे राखकी ढेरी बना दिया। विप्र! महेश्वरका वह शूल मनके समान वेगशाली था। वह शीघ्र ही अपना कार्य पूर्ण करके शंकरके पास आ पहुँचा और फिर आकाशमार्गसे चला गया। उस समय स्वर्गमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं। गन्धर्व और किन्नर गान करने लगे। देवों तथा मुनियोंने स्तुति करना आरम्भ किया और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। शिवजीके ऊपर लगातार पुष्पोंकी वर्षा होने लगी और ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि देवता तथा मुनिगण उनकी प्रशंसा करने लगे। दानवराज शङ्खचूड भी शिवजीकी कृपासे शापमुक्त हो गया और उसे उसके पूर्व (श्रीकृष्ण-पार्षद-) रूपकी प्राप्ति हो गयी। शङ्खचूडकी हड्डियोंसे शङ्ख-जातिका प्रादुर्भाव हुआ, जिस शङ्खका जल शंकरके अतिरिक्त समस्त देवताओंके लिये प्रशस्त माना जाता है। महामुने! श्रीहरि और लक्ष्मीको तथा उनके सम्बन्धियोंको भी शङ्खका जल विशेषरूपसे अत्यन्त प्रिय है; किंतु शिवके लिये नहीं। इस प्रकार शङ्खचूडको मारकर शंकर उमा, स्कन्द और गणोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक नन्दीश्वरपर सवार हो शिवलोकको चले गये। भगवान् विष्णुने वैकुण्ठके लिये प्रस्थान किया और देवगण परमानन्दमग्न हो अपने-अपने लोकको चले गये। उस समय जगत्‌में चारों ओर परम शान्ति छा गयी। सबको निर्विघ्नरूपसे सुख मिलने लगा। आकाश निर्मल हो गया और सारी पृथ्वीपर उत्तम-उत्तम मङ्गलकार्य होने लगे। मुने! इस प्रकार मैंने तुमसे महेशके जिस चरित्रका वर्णन किया है, वह आनन्ददायक, सर्वदुःखहारी, लक्ष्मीप्रद और सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है।

(अध्याय ३६—४०)

☆

विष्णुद्वारा तुलसीके शील-हरणका वर्णन, कुपित हुई तुलसीद्वारा विष्णुको शाप, शम्भुद्वारा तुलसी और शालग्राम-शिलाके माहात्म्यका वर्णन

फिर व्यासजीके पूछनेपर सनत्कुमारजीने कहा—महर्षे ! रणभूमिमें आकाश-वाणीको सुनकर जब देवेश्वर शम्भुने श्रीहरिको प्रेरित किया, तब वे तुरंत ही अपनी मायासे ब्राह्मणका वेष धारण करके शङ्खचूडके पास जा पहुँचे और उन्होंने उससे परमोत्कृष्ट कवच माँग लिया। फिर शङ्खचूडका रूप बनाकर वे तुलसीके घरकी ओर चले। वहाँ पहुँचकर उन्होंने तुलसीके महलके द्वारके निकट नगारा बजाया और जय-जयकारसे सुन्दरी तुलसीको अपने आगमनकी सूचना दी। उसे सुनकर सती-साध्वी तुलसीने बड़े आदरके साथ झरोखेके रास्ते राजमार्गकी ओर झाँका और अपने पतिको आया हुआ जानकर वह परमानन्दमें निमग्न हो गयी। उसने तत्काल ही ब्राह्मणोंको धन-दान करके उनसे मङ्गलाचार कराया और फिर अपना शृङ्गार किया। इधर देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये मायासे शङ्खचूडका स्वरूप धारण करनेवाले भगवान् विष्णु रथसे उतरकर देवी तुलसीके भवनमें गये। तुलसीने पतिरूपमें आये हुए भगवान्‌का पूजन किया, बहुत-सी बातें कीं, तदनन्तर उनके साथ रमण किया। तब उस साध्वीने सुख, सामर्थ्य और आकर्षणमें व्यतिक्रम देखकर सबपर विचार किया और (संदेह उत्पन्न होनेपर) वह 'तू कौन है ?' यों डाँटती हुई बोली।

तुलसीने कहा—दुष्ट ! मुझे शीघ्र बतला कि मायाद्वारा मेरा उपभोग करनेवाला तू कौन है ? तूने मेरा सतीत्व नष्ट कर दिया है, अतः मैं अभी तुझे शाप देती हूँ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—ब्रह्मन् ! तुलसीका वचन सुनकर श्रीहरिने लीला-पूर्वक अपनी परम मनोहर मूर्ति धारण कर ली। तब उस रूपको देखकर तुलसीने लक्षणोंसे पहचान लिया कि ये साक्षात् विष्णु हैं। परंतु उसका पातिव्रत्य नष्ट हो चुका था, इसलिये वह कुपित होकर विष्णुसे कहने लगी।

तुलसीने कहा—हे विष्णो ! तुम्हारा मन पत्थरके सदृश कठोर है। तुममें दयाका लेशमात्र भी नहीं है। मेरे पतिधर्मके भङ्ग हो जानेसे निश्चय ही मेरे स्वामी मारे गये। चूँकि तुम पाषाण-सदृश कठोर, दयारहित और दुष्ट हो, इसलिये अब तुम मेरे शापसे पाषाण-स्वरूप ही हो जाओ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने ! यों कहकर शङ्खचूडकी वह सती-साध्वी पत्नी तुलसी फूट-फूटकर रोने लगी और शोकार्त होकर बहुत तरहसे विलाप करने लगी। इतनेमें वहाँ भक्तवत्सल भगवान् शंकर प्रकट हो गये और उन्होंने समझाकर कहा—'देवि ! अब तुम दुःखको दूर करनेवाली मेरी बात सुनो और श्रीहरि भी स्वस्थ मनसे उसे श्रवण करें; क्योंकि तुम दोनोंके लिये जो सुखकारक होगा, वही मैं कहूँगा। भद्रे ! तुमने (जिस मनोरथको लेकर) तप किया था, यह उसी तपस्याका फल है। भला, वह अन्यथा कैसे हो सकता है ? इसीलिये तुम्हें उसके अनुरूप ही फल प्राप्त हुआ है। अब तुम इस शरीरको

त्यागकर दिव्य देह धारण कर ले और लक्ष्मीके समान होकर नित्य श्रीहरिके साथ (वैकुण्ठमें) विहार करती रहो। तुम्हारा यह शरीर, जिसे तुम छोड़ दोगी, नदीके रूपमें परिवर्तित हो जायगा। वह नदी भारतवर्षमें पुण्यरूपा गण्डकीके नामसे प्रसिद्ध होगी। महादेवि! कुछ कालके पश्चात् मेरे वरके प्रभावसे देवपूजन-सामग्रीमें तुलसीका प्रधान स्थान हो जायगा। सुन्दरी! तुम स्वर्गलोकमें, मृत्युलोकमें तथा पातालमें सदा श्रीहरिके निकट ही निवास करोगी और पुष्पोंमें श्रेष्ठ तुलसीका वृक्ष हो जाओगी। तुम वैकुण्ठमें दिव्यरूपधारिणी वृक्षाधिष्ठात्री देवी बनकर सदा एकान्तमें श्रीहरिके साथ क्रीडा करोगी। उधर भारतवर्षमें जो नदियोंकी अधिष्ठात्री देवी होगी, वह परम पुण्य प्रदान करनेवाली होगी और श्रीहरिके अंशभूत लवणसागरकी पत्नी बनेगी। तथा श्रीहरि भी तुम्हारे शापवश पत्थरका रूप धारण करके भारतमें गण्डकी नदीके जलके निकट निवास करेंगे। वहाँ तीखी दाढ़ोंवाले करोड़ों भयंकर कीड़े उस पत्थरको काटकर उसके मध्यमें चक्रका आकार बनायेंगे। उसके भेदसे वह अत्यन्त पुण्य प्रदान करनेवाली शालग्रामशिला कहलायेगी और चक्रके भेदसे उसका लक्ष्मीनारायण आदि भी नाम होगा। विष्णुकी शालग्रामशिला और वृक्षस्वरूपिणी तुलसीका समागम सदा अनुकूल तथा बहुत प्रकारके पुण्योंकी वृद्धि करनेवाला होगा। भद्रे! जो शालग्रामशिलाके ऊपरसे तुलसीपत्रको दूर करेगा, उसे जन्मान्तरमें स्त्रीवियोगकी प्राप्ति होगी तथा जो शङ्खको दूर करके तुलसीपत्रको हटायेगा, वह भी भार्याहीन होगा और सात जन्मोंतक रोगी बना रहेगा। जो महाज्ञानी पुरुष शालग्रामशिला, तुलसी और शङ्खको एकत्र रखकर उनकी रक्षा करता है, वह श्रीहरिका प्यारा होता है।

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी! इस प्रकार कहकर शंकरजीने उस समय शालग्रामशिला और तुलसीके परम पुण्य-दायक माहात्म्यका वर्णन किया। तत्पश्चात् वे श्रीहरिको तथा तुलसीको आनन्दित करके अन्तर्धान हो गये। इस प्रकार सदा सत्पुरुषोंका कल्याण करनेवाले शम्भु अपने स्थानको चले गये। इधर शम्भुका कथन सुनकर तुलसीको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने अपने उस शरीरका परित्याग करके दिव्य रूप धारण कर लिया। तब कमलापति विष्णु उसे साथ लेकर वैकुण्ठको चले गये। उसके छोड़े हुए शरीरसे गण्डकी नदी प्रकट हो गयी और भगवान् अच्युत भी उसके तटपर मनुष्योंको पुण्यप्रदान करनेवाली शिलाके रूपमें परिणत हो गये। मुने! उसमें कीड़े अनेक प्रकारके छिद्र बनाते रहते हैं। उनमें जो शिलाएँ गण्डकीके जलमें गिरती हैं, वे परम पुण्यप्रद होती हैं और जो स्थलपर ही रह जाती हैं, उन्हें पिङ्गला कहा जाता है और वे प्राणियोंके लिये संतापकारक होती हैं। व्यासजी! इस प्रकार तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने शम्भुका सारा चरित, जो पुण्यप्रदान तथा मनुष्योंकी सारी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है, तुम्हें सुना दिया। यह पुण्य आख्यान, जो विष्णुके माहात्म्यसे संयुक्त तथा भोग और मोक्षका प्रदाता है, तुमसे वर्णन कर दिया; अब और क्या सुनना चाहते हो?

(अध्याय ४१)

☆

उमाद्वारा शम्भुके नेत्र मूँद लिये जानेपर अन्धकारमें शम्भुके पसीनेसे अन्धकासुरकी उत्पत्ति, हिरण्याक्षकी पुत्रार्थ तपस्या और शिवका उसे पुत्ररूपमें अन्धकको देना, हिरण्याक्षका त्रिलोकीको जीतकर पृथ्वीको रसातलमें ले जाना और वराहरूपधारी विष्णुद्वारा उसका वध

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी ! अब जिस प्रकार अन्धकासुरने परमात्मा शम्भुके गणाध्यक्ष-पदको प्राप्त किया था, महेश्वरके उस मङ्गलमय चरितको श्रवण करो। मुनीश्वर ! अन्धकासुरने पहले शिवजीके साथ बड़ा घोर संग्राम किया था, परंतु पीछे बारंबार सात्त्विक भावके उद्रेकसे उसने शम्भुको प्रसन्न कर लिया; क्योंकि नाना प्रकारकी लीलाएँ करनेवाले शम्भु शरणागतरक्षक तथा परम भक्तवत्सल हैं। उनका माहात्म्य परम अद्भुत है।

व्यासजीने पूछा—ऐश्वर्यशाली मुनिवर ! वह अन्धक कौन था और भूतलपर किस वीर्यवान्‌के कुलमें उत्पन्न हुआ था ? दैत्योंमें प्रधान तथा महामनस्वी उस बलवान् अन्धकका स्वरूप कैसा था और वह किसका पुत्र था ? उसने परम तेजस्वी शम्भुकी गणाध्यक्षताको कैसे प्राप्त किया ? यदि अन्धक गणेश्वर हो गया तब तो वह परम धन्यवादका पात्र है।

सनत्कुमारजीने कहा—मुने ! पूर्वकालकी बात है, एक समय भक्तोंपर कृपा करनेवाले तथा देवताओंके चक्रवर्ती सम्राट् भगवान् शंकरको विहार करनेकी इच्छा हुई। तब वे पार्वती और गणोंको साथ ले अपने निवासभूत कैलास पर्वतसे चलकर काशीपुरीमें आये। वहाँ उन्होंने उस पुरीको अपनी राजधानी बनाया और भैरव नामक वीरको उसका रक्षक नियुक्त किया। फिर पार्वतीजीके साथ रहते हुए वे भक्तजनोंको सुख देनेवाली अनेक प्रकारकी लीलाएँ करने लगे। एक समय वे उसके वरदानके प्रभाववश अनेकों वीराग्रगण्य गणेश्वरों और शिवाके साथ मन्दराचलपर गये और वहाँ भी तरह-तरहकी क्रीडाएँ करने लगे। एक दिन जब प्रचण्ड पराक्रमी कपर्दी शिव मन्दराचलकी पूर्व दिशामें बैठे थे, उसी समय गिरिजाने नर्मक्रीडावश उनके नेत्र बंद कर दिये। इस प्रकार जब पार्वतीने मूँगे, सुवर्ण और कमलकी प्रभावाले अपने करकमलोंसे हरके नेत्र बंद कर दिये, तब उनके नेत्रोंके मुँद जानेके कारण वहाँ क्षणभरमें ही घोर अन्धकार फैल गया। पार्वतीके हाथोंका महेश्वरके शरीरसे स्पर्श होनेके कारण शम्भुके ललाटमें स्थित अग्निसे संतप्त होकर मद-जल प्रकट हो गया और जलकी बहुत-सी बूँदें टपक पड़ीं। तदनन्तर उन बूँदोंने एक गर्भका रूप धारण कर लिया। उससे एक ऐसा जीव प्रकट हुआ, जिसका मुख विकराल था। वह अत्यन्त भयंकर, क्रोधी, कृतघ्न, अंधा, कुरूप, जटाधारी, काले रंगका, मनुष्यसे भिन्न, बेडौल और सुन्दर बालोंवाला था। उसके कण्ठसे घोर घर-घर शब्द निकल रहा था। वह कभी गाता, कभी हँसता और कभी रोने लगता था तथा जबड़ोंको चाटते हुए नाच रहा था। उस अद्भुत दृश्यवाले जीवके प्रकट होनेपर शिवजी

मुसकराकर पार्वतीजीसे बोले।

श्रीमहेश्वरने कहा—'प्रिये! मेरे नेत्रोंको मूँदकर तुमने ही तो यह कर्म किया है, फिर तुम उससे भय क्यों कर रही हो?' शंकरजीके उस वचनको सुनकर गौरी हँस पड़ीं और उनके नेत्रोंपरसे उन्होंने अपने हाथ हटा लिये। फिर तो वहाँ प्रकाश छा गया, परंतु उस प्राणीका रूप भयंकर ही बना रहा और अन्धकारसे उत्पन्न होनेके कारण उसके नेत्र भी अंधे थे। तब वैसे प्राणीको प्रकट हुआ देखकर गौरीने महेश्वरसे पूछा।

गौरीने कहा—भगवन्! मुझे सच-सच बताइये कि हमलोगोंके सामने प्रकट हुआ यह बेडौल प्राणी कौन है। यह तो अत्यन्त भयंकर है। किस निमित्तको लेकर किसने इसकी सृष्टि की है और यह किसका पुत्र है?

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे! जब लीला रचनेवाली तथा तीनों लोकोंकी जननी गौरीने सृष्टिकर्ताकी उस अंधीसृष्टिके विषयमें यों प्रश्न किया, तब लीला-विहारी भगवान् शंकर अपनी प्रियाके उस वचनको सुनकर कुछ मुसकराये और इस प्रकार बोले।

महेश्वरने कहा—अद्भुत चरित्र रचनेवाली अम्बिके! सुनो। जब तुमने मेरे नेत्र मूँद लिये थे, उसी समय यह अद्भुत एवं प्रचण्ड पराक्रमी प्राणी मेरे पसीनेसे प्रकट हुआ। इसका नाम अन्धक है। तुम्हीं इसको उत्पन्न करनेवाली हो, अतः सखियोंसहित तुम्हें करुणापूर्वक इसकी गणोंसे यथायोग्य रक्षा करते रहना चाहिये। आर्ये! इस प्रकार बुद्धिपूर्वक विचार करके ही तुम्हें सब कार्य करना चाहिये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! अपने स्वामीके ऐसे वचन सुनकर गौरीका हृदय करुणार्द्र हो गया। वे अपनी सखियोंसहित अन्धककी अपने पुत्रकी भाँति नाना प्रकारके उपायोंद्वारा रक्षा करने लगीं। तदनन्तर शिशिर-ऋतु आनेपर दैत्य हिरण्याक्ष पुत्रकी कामनासे उसी वनमें आया; क्योंकि उसकी पत्नीने उसके ज्येष्ठ बन्धुकी संतान-परम्पराको देखकर उसे संतानार्थ तपश्चर्याके लिये प्रेरित किया था। वहाँ वह कश्यपनन्दन हिरण्याक्ष वनका आश्रय ले पुत्र-प्राप्तिके लिये घोर तप करने लगा। उसके मनमें महेश्वरके दर्शनकी इच्छा थी, अतः वह क्रोध आदि दोषोंको अपने काबूमें करके ठूँठकी भाँति निश्चल होकर समाधिस्थ हो गया। द्विजेन्द्र! तब जिसकी ध्वजामें वृषका चिह्न वर्तमान है तथा जो पिनाक धारण करनेवाले हैं, वे महेश उसकी तपस्यासे पूर्णतया प्रसन्न होकर उसे वर प्रदान करनेके लिये चले और उस स्थानपर पहुँचकर दैत्यप्रवर हिरण्याक्षसे बोले।

महेशने कहा—दैत्यनाथ! अब तू अपनी इन्द्रियोंका विनाश मत कर। किसलिये तूने इस व्रतका आश्रय लिया है? तू अपना मनोरथ तो प्रकट कर। मैं वरदाता शंकर हूँ; अतः तेरी जो अभिलाषा होगी, वह सब मैं तुझे प्रदान करूँगा।

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे! महेश्वरके उस सरस वचनको सुनकर दैत्यराज हिरण्याक्ष परम प्रसन्न हुआ। उसने गिरीशके चरणोंमें नमस्कार करके अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति की; फिर वह अञ्जलि बाँधे सिर झुकाकर कहने लगा।

हिरण्याक्षने कहा—चन्द्रभाल! मेरे

उत्तम पराक्रमसम्पन्न तथा दैत्यकुलके अनुरूप कोई पुत्र नहीं है, इसीलिये मैंने इस व्रतका अनुष्ठान किया है। देवेश! मुझे परम बलशाली पुत्र दीजिये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! दैत्यराजके उस वचनको सुनकर कृपालु शंकर प्रसन्न हो गये और उससे बोले—'दैत्याधिप! तेरे भाग्यमें तेरे वीर्यसे उत्पन्न होनेवाला पुत्र तो नहीं लिखा है, किंतु मैं तुझे एक पुत्र देता हूँ। मेरा एक पुत्र है, जिसका नाम अन्धक है। वह तेरे ही समान पराक्रमी और अजेय है। तू सम्पूर्ण दुःखोंको त्यागकर उसीको पुत्ररूपसे वरण कर ले और इस प्रकार पुत्र प्राप्त कर ले।'

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे! उससे यों कहकर गौरीके साथ विराजमान उन महात्मा भूतनाथ त्रिपुरारि शंकरने प्रसन्न होकर हिरण्याक्षको वह पुत्र दे दिया। इस

प्रकार शिवजीसे पुत्र प्राप्त करके वह महामनस्वी दैत्य परम प्रसन्न हुआ। उसने अनेकों स्तोत्रोंद्वारा रुद्रकी पूजा करके प्रदक्षिणा की और फिर वह अपने राज्यको चला गया। गिरीशसे पुत्र प्राप्त कर लेनेके बाद वह प्रचण्ड पराक्रमी दैत्य सम्पूर्ण देवताओंको जीतकर इस पृथ्वीको अपने देश रसातलमें उठा ले गया। तब देवताओं, मुनियों और सिद्धोंने अनन्त पराक्रमी विष्णुकी आराधना की। फिर तो भगवान् विष्णु सर्वात्मक यज्ञमय विकराल वाराह-शरीर धारणकर थूथुनके अनेकों प्रहारोंसे पृथ्वीको विदीर्ण करके पाताल-लोकमें जा घुसे। वहाँ उन्होंने कभी न टूटनेवाले अपनी अगली दाढ़ोंसे तथा थूथुनसे सैकड़ों दैत्योंका कचूमर निकालकर अपने वज्र-सदृश कठोर पाद-प्रहारोंसे निशाचरोंकी सेनाको मथ डाला। तत्पश्चात् अद्भुत एवं प्रचण्ड तेजस्वी विष्णुने करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान सुदर्शन-चक्रसे हिरण्याक्षके प्रज्वलित सिरको काट लिया और दुष्ट दैत्योंको जलाकर भस्म कर दिया। यह देखकर देवराज इन्द्रको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने उस असुर-राज्यपर अन्धकको अभिषिक्त कर दिया। फिर महात्मा इन्द्र विष्णुको अपनी दाढ़ोंद्वारा पाताललोकसे पृथ्वीको लाते हुए देखकर परम प्रसन्न हुए और अपने स्थानपर आकर पूर्ववत् स्वर्ग और भूतलकी रक्षा करने लगे। इधर वाराहरूप धारण करके उत्तम कार्य करनेवाले उग्ररूपधारी श्रीहरि प्रसन्नचित्त हुए समस्त देवों, मुनियों और पद्मयोनि ब्रह्माद्वारा प्रशंसित होकर अपने लोकको

चले गये। इस प्रकार वाराहरूपधारी विष्णुद्वारा असुरराज हिरण्याक्षके मारे जानेपर समस्त देव, मुनि तथा अन्यान्य सभी जीव सुखी हो गये। (अध्याय ४२)

☆

हिरण्यकशिपुकी तपस्या और ब्रह्मासे वरदान पाकर उसका अत्याचार, नृसिंहद्वारा उसका वध और प्रह्लादको राज्यप्राप्ति

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी! इधर वराहरूपधारी श्रीहरिके द्वारा इस प्रकार भाईके मारे जानेपर हिरण्यकशिपु शोक और क्रोधसे संतप्त हो उठा। श्रीहरिके साथ वैर करना तो उसे रुचता ही था, अतः उसने संहारप्रेमी वीर असुरोंको प्रजाका विनाश करनेके लिये आज्ञा दे दी। तब वे संहारप्रिय असुर स्वामीकी आज्ञाको सिर चढ़ाकर देवताओं और प्रजाओंका विनाश करने लगे। इस प्रकार जब उन दुष्ट-चित्तवाले असुरोंद्वारा सारा देवलोक तहस-नहस कर दिया गया, तब देवता स्वर्गको छोड़कर गुप्तरूपसे भूतलपर विचरने लगे। उधर भाईकी मृत्युसे दुःखी हुए हिरण्यकशिपुने भाईको जलाञ्जलि देकर उसकी स्त्री आदिको ढाढ़स बँधाया। तत्पश्चात् उस दैत्यराजने अपने लिये विचार किया कि 'मैं अजेय, अजर और अमर हो जाऊँ। मेरा ही एकच्छत्र साम्राज्य रहे और मेरा प्रतिद्वन्द्वी कोई न रह जाय।' यों धारणा बनाकर वह मन्दराचलपर गया और वहाँ एक गुफामें अत्यन्त घोर तपस्या करने लगा। उस समय वह पैरके अँगूठेके बल खड़ा था। उसकी भुजाएँ ऊपरको उठी थीं और दृष्टि आकाशकी ओर लगी थी। उसकी तपस्यासे संतप्त होकर देवताओंका मुख विकृत हो उठा। वे स्वर्गको छोड़कर ब्रह्मलोकमें जा पहुँचे और उन्होंने ब्रह्मासे अपना दुखड़ा कह सुनाया। व्यासजी! उन देवताओंके इस प्रकार कहनेपर स्वयम्भू ब्रह्मा भृगु, दक्ष आदिके साथ उस दैत्येश्वरके आश्रमपर गये। तब जिसने अपने तपसे सम्पूर्ण लोकोंको संतप्त कर दिया था, उस हिरण्यकशिपुने वर देनेके लिये आये हुए पद्मयोनि ब्रह्माको अपने सामने उपस्थित देखा। उधर पितामहने भी उससे कहा—'वर माँग।' तब जिसकी बुद्धि मोहित नहीं हुई थी, उस असुरने विधाताकी उस मधुर वाणीको सुनकर इस प्रकार कहा।

हिरण्यकशिपु बोला—ऐश्वर्यशाली प्रजापति! पितामह! मैं चाहता हूँ कि स्वर्गमें, भूतलपर, दिनमें, रातमें, ऊपर अथवा नीचे—कहीं भी शस्त्र, अस्त्र, पाश, वज्र, शुष्क वृक्ष, पर्वत, जल, अग्निके रूपमें शत्रुके प्रहारसे, देवता, दैत्य, मुनि, सिद्ध किम्बहुना आपद्वारा रचे हुए जीवोंके हाथों मुझे कभी भी मृत्युका भय न हो।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! हिरण्यकशिपुके वैसे वचन सुनकर पद्मयोनि ब्रह्माके मनमें दयाका भाव जाग्रत् हो उठा। उन्होंने मन-ही-मन विष्णुको प्रणाम करके उससे कहा—'दैत्येन्द्र! मैं तुझपर प्रसन्न हूँ,

अतः तुझे सारी वस्तुएँ प्राप्त होंगी। तूने छियानबे हजार वर्षोंतक तप किया है, अब तेरी कामना पूर्ण हो चुकी है; अतः तपसे विरत होकर उठ और दानवोंके राज्यका उपभोग कर।' ब्रह्माकी वाणी सुनकर हिरण्यकशिपुका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। इस प्रकार जब पितामहने उसे दानव-राज्यपर अभिषिक्त कर दिया, तब वह उन्मत्त हो उठा और त्रिलोकीको नष्ट करनेका विचार करने लगा। फिर तो उसने सम्पूर्ण धर्मोंका उच्छेद करके संग्राममें समस्त देवताओंको भी जीत लिया। तब देवता भागकर विष्णुके पास पहुँचे। वहाँ श्रीहरिने देवताओं और मुनियोंकी दुःखगाथा सुनकर उन्हें आश्वासन दिया और शीघ्र ही उस दैत्यके वध करनेका वचन दिया। तब देवता अपने स्थानको लौट गये। तदनन्तर महात्मा विष्णुने ऐसा रूप धारण किया, जो आधा सिंह और आधा मनुष्यका था। वह अत्यन्त भयंकर तथा विकराल दीख रहा था। उसका मुख खूब फैला हुआ था, नासिका बड़ी सुन्दर थी और नख तीखे थे। गर्दनपर सटाएँ लहरा रही थीं। दाढ़ें ही आयुध थे। उससे करोड़ों सूर्योंके समान प्रभा छिटक रही थी और उसका प्रभाव प्रलयकालीन अग्निके सदृश था। अधिक कहाँतक कहा जाय, वह रूप जगद्भय था। इसी रूपसे वे भगवान् भास्करके अस्ताचलकी शरण लेनेपर असुरोंकी नगरीमें प्रविष्ट हुए। उन अतुल प्रभावशाली नृसिंहको देखकर सभी दैत्य एक साथ उनपर टूट पड़े। तब उन अद्भुत पराक्रमी नृसिंहने महाबली दैत्योंके साथ युद्ध करके बहुतोंको मार डाला और बहुतोंको पकड़कर तोड़-मरोड़ दिया। फिर वे उस नगरमें घूमने लगे। तब उन सर्वमय सिंहको देखकर दैत्यराजके पुत्र प्रह्लादने राजासे कहा—'यह मृगेन्द्र तो जगद्भय दीख रहा है। यह यहाँ किसलिये आया है।'

प्रह्लादने पुनः कहा—पिताजी! मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि ये भगवान् अनन्त हैं और नृसिंहका रूप धारण करके आपके नगरमें प्रविष्ट हुए हैं; क्योंकि मुझे इनकी मूर्ति बड़ी विकराल दीख रही है। अतः आप युद्धसे हटकर इनकी शरणमें जाइये। इनसे बढ़कर त्रिलोकीमें दूसरा कोई योद्धा नहीं है, इसलिये आप इन मृगेन्द्रके सामने झुककर अपने राज्यका उपभोग कीजिये। अपने पुत्रकी बात सुनकर उस दुरात्माने उससे कहा—'बेटा! क्या तू भयभीत हो गया?' अपने पुत्रसे यों कहकर दैत्योंके अधिपति राजा हिरण्यकशिपुने महाबली दैत्योंको आज्ञा देते हुए कहा—'वीरो! तुमलोग इस बेढ़ौल भृकुटि और नेत्रवाले सिंहको पकड़ लो।' तब स्वामीकी आज्ञासे उन मृगेन्द्रको पकड़नेकी इच्छासे वे सभी बड़े-बड़े दैत्य रणभूमिमें घुसे; परंतु जैसे रूपकी अभिलाषासे अग्निमें प्रवेश करनेवाले पतिंगे जल-भुन जाते हैं, उसी तरह वे सब-के-सब क्षणभरमें ही जलकर भस्म हो गये। दैत्योंके दग्ध हो जानेपर भी वह दैत्यराज सम्पूर्ण

शस्त्र, अस्त्र, शक्ति, ऋष्टि, पाश, अङ्कुश और पावक आदिसे उन मृगेन्द्रके साथ लोहा लेता ही रहा। इस प्रकार बहुत कालतक भयानक युद्ध हुआ। अन्तमें उन नृसिंहने वज्रके समान कठोर अपनी अनेकों भुजाओंसे उस दैत्यको पकड़ लिया और उसे अपने जानुओंपर लिटाकर दानवोंके मर्मको विदीर्ण करनेवाले नखाङ्कुरोंसे उसकी छाती चीर डाली तथा खूनसे लथपथ हुए उसके हृदय-कमलको निकाल लिया। फिर तो उसी क्षण उसके प्राणपखेरू उड़ गये। तब भगवान् नृसिंहने बारंबारके आघातसे जिसके सारे अङ्ग चूर-चूर हो गये थे, उस काष्ठभूत दैत्यको छोड़ दिया। उस समय उस देवशत्रुके मारे जानेपर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। उसी अवसरपर प्रह्लादने आकर उनके चरणोंमें सिर झुकाया। तब अद्भुत पराक्रमी विष्णुने प्रह्लादको बुलाकर उन्हें दैत्योंके राज्यपर अभिषिक्त कर दिया और स्वयं अतर्कित गतिको प्राप्त हो गये अर्थात् अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर पितामह आदि समस्त सुरेश्वर परम प्रसन्न हो अपना कार्य सिद्ध करनेवाले पूजनीय भगवान् विष्णुको उसी दिशामें प्रणाम करके अपने-अपने धामको चले गये। विप्रवर! प्रसङ्गवश मैंने रुद्रसे अन्धककी उत्पत्ति, वराहसे हिरण्याक्षकी मृत्यु, नृसिंहके हाथों उसके भाईका विनाश और प्रह्लादकी राज्य-प्राप्तिका वर्णन कर दिया। द्विजश्रेष्ठ! अब मैं शिवकी कृपासे प्राप्त हुए अन्धकके प्रभावका, शंकरजीके साथ उसके युद्धका और पीछे जिस प्रकार उसे महेशके गणाध्यक्ष-पदकी प्राप्ति हुई, उस कथाका वर्णन करता हूँ, सुनो। (अध्याय ४३)

भाइयोंके उपालम्भसे अन्धकका तप करना और वर पाकर त्रिलोकीको जीतकर स्वेच्छाचारमें प्रवृत्त होना, उसके मन्त्रियोंद्वारा शिव-परिवारका वर्णन, पार्वतीके सौन्दर्यपर मोहित होकर अन्धकका वहाँ जाना और नन्दीश्वरके साथ युद्ध, अन्धकके प्रहारसे नन्दीश्वरकी मूर्च्छा, पार्वतीके आवाहनसे देवियोंका प्रकट होकर युद्ध करना, शिवका आगमन और युद्ध, शिवद्वारा शुक्राचार्यका निगला जाना, शिवकी प्रेरणासे विष्णुका कालीरूप धारण करके दानवोंके रक्तका पान करना, शिवका अन्धकको अपने त्रिशूलमें पिरोना और युद्धकी समाप्ति

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनिवर! एक समय हिरण्याक्षका पुत्र अन्धक अपने

भाइयोंके साथ विहारमें संलग्न था। उसी समय उसके कामासक्त मदान्ध भाइयोंने उससे कहा—'अरे अन्धे! तुम्हें तो अब राज्यसे क्या प्रयोजन है? हिरण्याक्ष तो मूर्ख था, जो उसने घोर तपद्वारा शंकरजीको प्रसन्न करके भी तुम-जैसे कुरूप, बेडौल, कलिप्रिय और नेत्रहीनको प्राप्त किया! ऐसे तुम राज्यके भागी तो हो नहीं सकते; क्योंकि भला, तुम्हीं विचार करो कि कहीं दूसरेसे उत्पन्न हुआ पुत्र भी राज्य पाता है? सच पूछो तो निश्चय ही इस राज्यके भागी हमींलोग हैं।'

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! उन लोगोंकी वह बात सुनकर अन्धक दीन हो गया। फिर उसने स्वयं ही बुद्धिपूर्वक विचार करके तरह-तरहकी बातोंसे उन्हें शान्त किया और रातके समय वह निर्जन वनमें चला गया। वहाँ उसने हजारों वर्षोंतक घोर तप करके अपने शरीरको सुखा डाला और अन्तमें उस शरीरको अग्निमें होम देना चाहा। तब ब्रह्माजीने उसे वैसा करनेसे रोककर कहा—'दानव! अब तू वर माँग ले। सारे संसारमें जिस दुर्लभ वस्तुको प्राप्त करनेकी तेरी अभिलाषा हो, उसे तू मुझसे ले ले।' पद्मयोनि ब्रह्माके वचनको सुनकर वह दैत्य दीनता एवं नम्रतापूर्वक कहने लगा—'भगवन्! जिन निष्ठुरोंने मेरा राज्य छीन लिया है, वे सब दैत्य आदि मेरे भृत्य हो जायँ, मुझ अंधेको दिव्य चक्षु प्राप्त हो जाय, इन्द्र आदि देवता मुझे कर दिया करें और देवता, दैत्य, गन्धर्व, यक्ष, नाग, मनुष्य, दैत्योंके शत्रु नारायण, सर्वमय शंकर तथा अन्यान्य किन्हीं भी प्राणियोंसे मेरी मृत्यु न हो।' उसके उस अत्यन्त दारुण वचनको सुनकर ब्रह्माजी सशङ्कित हो उठे और उससे बोले।

ब्रह्माजीने कहा—दैत्येन्द्र! ये सारी बातें तो हो जायँगी, किन्तु तू अपने विनाशका कोई कारण भी तो स्वीकार कर ले; क्योंकि जगत्में कोई ऐसा प्राणी न हुआ है और न आगे होगा ही, जो कालके गालमें न गया हो। फिर तुझ-जैसे सत्पुरुषोंको तो अत्यन्त लंबे जीवनका विचार त्याग ही देना चाहिये। ब्रह्माके इस अनुनयभरे वचनको सुनकर वह दैत्य पुनः बोला।

अन्धकने कहा—प्रभो! तीनों कालोंमें जो उत्तम, मध्यम और नीच नारियाँ होती हैं, उन्हीं नारियोंमें कोई रत्नभूता नारी मेरी भी जननी होगी। वह मनुष्यलोकके लिये दुर्लभ तथा शरीर, मन और वचनसे भी अगम्य है। उसमें राक्षस-भावके कारण जब मेरी काम-भावना उत्पन्न हो जाय, तभी मेरा नाश हो। उसकी बात सुनकर स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माको महान् आश्चर्य हुआ। वे शंकरजीके चरणकमलोंका स्मरण करने लगे। तब शम्भुकी आज्ञा पाकर वे उस अन्धकसे बोले।

ब्रह्माजीने कहा—दैत्यवर! तू जो कुछ चाहता है, तेरे वे सभी सकाम वचन पूर्ण होंगे। दैत्येन्द्र! अब तू उठ, अपना अभीष्ट

प्राप्त कर और सदा वीरोंके साथ युद्ध करता रह। मुनीश ! हिरण्याक्षपुत्र अन्धकके शरीरमें नसें और हड्डियाँ ही शेष रह गयी थीं। वह ब्रह्माके ऐसे वचनको सुनकर शीघ्र ही भक्तिपूर्वक उन लोकेश्वरके चरणोंमें लोट गया और इस प्रकार बोला।

अन्धकने कहा—विभो ! जब मेरे शरीरमें नसें और हड्डियाँमात्र ही शेष रह गयी है, तब भला इस देहसे शत्रुसेनामें प्रवेश करके मैं कैसे युद्ध कर सकूँगा; अतः अब आप अपने पवित्र हाथसे मेरा स्पर्श करके इस शरीरको मांसल बना दीजिये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे ! अन्धककी प्रार्थना सुनकर ब्रह्माजीने अपने हाथसे उसके शरीरका स्पर्श किया और फिर वे मुनिगणों तथा सिद्धसमूहोंसे भलीभाँति पूजित हो देवताओंके साथ अपने धामको चले गये। ब्रह्माके स्पर्श करते ही उस दैत्यराजका शरीर भरा-पूरा हो गया, जिससे उसमें बलका संचार हो आया तथा नेत्रोंके प्राप्त हो जानेसे वह सुन्दर दीखने लगा। तब उसने प्रसन्नतापूर्वक अपने नगरमें प्रवेश किया। उस समय प्रह्लाद आदि श्रेष्ठ दानवोंने जब उसे वरदान प्राप्त करके आया हुआ जाना, तब वे सारा राज्य उसे समर्पित करके उसके वशवर्ती भृत्य हो गये। तदनन्तर अन्धक सेना और भृत्यवर्गको साथ ले स्वर्गको जीतनेके लिये गया। वहाँ संग्राममें समस्त देवताओंको पराजित करके उसने वज्रधारी इन्द्रको अपना करद बना लिया। उसने यत्र-तत्र बहुत-सी लड़ाइयाँ लड़कर नागों, सुपर्णों, श्रेष्ठ राक्षसों, गन्धर्वों, यक्षों, मनुष्यों, बड़े-बड़े पर्वतों, वृक्षों और सिंह आदि समस्त चौपायोंको भी जीत लिया। यहाँतक कि उसने चराचर त्रिलोकीको अपने वशमें कर लिया। तदनन्तर वह रसातलमें, भूतलपर तथा स्वर्गमें जितनी सुन्दर रूपवाली नारियाँ थीं, उनमेंसे हजारोंको, जो अत्यन्त दर्शनीय तथा अपने अनुकूल थीं, साथ लेकर विभिन्न पर्वतोंपर तथा नदियोंके रमणीय तटोंपर विहार करने लगा। दैत्यराज अन्धक सदा दुष्टोंका ही सङ्ग करता था। उसकी बुद्धि मदसे अंधी हो गयी थी, जिससे उस मूढ़को इसका कुछ भी ज्ञान नहीं रह गया कि परलोकमें आत्माको सुख देनेवाला भी कोई कर्म करना चाहिये। इस प्रकार वह महामनस्वी दैत्य उन्मत्त हो और अपने सारे प्रधान-प्रधान पुत्रोंको कुतर्कवादसे पराजित करके दैत्योंसहित सम्पूर्ण वैदिक धर्मोंका विनाश करता हुआ विचरण करने लगा। वह धनके मदसे अभिभूत हो वेद, देवता, ब्राह्मण और गुरु आदि किसीको भी नहीं मानता था। प्रारब्धवश उसकी आयु समाप्त हो चुकी थी, इसीसे वह स्वेच्छाचारमें प्रवृत्त हो व्यर्थमें ही अपनी आयुके शेष दिन गँवाता हुआ रमण कर रहा था। उस दानवश्रेष्ठके तीन मन्त्री थे, जिनका नाम था—दुर्योधन, वैधस और हस्ती। एक समय उन तीनोंने उस पर्वतके किसी रमणीय

स्थानपर एक परम रूपवती नारीको देखा। उसे देखकर वे शीघ्रगामी श्रेष्ठ दैत्य हर्षमग्न हो तुरंत ही महादैत्यपति वीरवर अन्धकके पास पहुँचे और बड़े प्रेमसे उस देखी हुई घटनाका वर्णन करने लगे।

मन्त्रियोंने कहा—दैत्येन्द्र! यहाँ एक गुफाके भीतर हमने एक मुनिको देखा है। ध्यानस्थ होनेके कारण उसके नेत्र बंद हैं। वह बड़ा रूपवान् है। उसके मस्तकपर अर्धचन्द्रकी कला अपनी छटा बिखेर रही है और कमरमें गजेन्द्रकी खाल बँधी हुई है। बड़े-बड़े नाग उसके सारे शरीरमें लिपटे हुए हैं। खोपड़ियोंकी माला ही उस जटाधारीका आभूषण है। उसके हाथमें त्रिशूल है तथा एक विशाल धनुष, बाण और तूणीर भी वह धारण किये हुए है। उसका अक्षसूत्र स्पष्ट दीख रहा है। उसके चार भुजाएँ तथा लंबी-लंबी जटाएँ हैं। वह खड्ग, त्रिशूल और लकुट धारण किये हुए है। उसकी आकृति अत्यन्त गौर है और उसपर भस्मका अनुलेप लगा हुआ है। वह अपने उत्कृष्ट तेजसे सुशोभित हो रहा है। इस प्रकार उस श्रेष्ठ तपस्वीका सारा वेष ही अद्भुत है। उससे थोड़ी ही दूरपर हमने एक और पुरुषको देखा है, जो विकराल वानर-सा है। उसका मुख बड़ा भयंकर है। वह सभी आयुध धारण किये हुए है, परंतु उसका हाथ रूक्ष है। वह उस तपस्वीकी रक्षामें तत्पर है। उसके पास ही एक बूढ़ा सफेद रंगका बैल भी बैठा है। उस बैठे हुए तपस्वीके पार्श्वभागमें हमने एक शुभलक्षणसम्पन्ना नारीको भी देखा है। वह भूतलपर रत्नस्वरूपा है। उसका रूप बड़ा मनोरम है और तरुणी होनेके नाते वह मनको मोहे लेती है। मूँगे, मोती, मणि, सुवर्ण, रत्न और उत्तम वस्त्रोंसे वह सुसज्जित है। उसके गलेमें सुन्दर मालाएँ लटक रही हैं। (कहाँतक कहें, वह इतनी सुन्दरी है कि) जिसने उसे एक बार देख लिया, उसीका नेत्र धारण करना सफल है। उसे फिर इस लोकमें अन्य वस्तुओंके देखनेसे क्या प्रयोजन। वह दिव्य नारी पुण्यात्मा मुनिवर महेशकी मान्या एवं प्रियतमा भार्या है। दैत्येन्द्र! आप तो उत्तमोत्तम रत्नोंका उपभोग करनेवाले हैं। अतः उसे यहाँ बुलवाकर देखिये। वह आपके भी देखनेयोग्य है।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ! मन्त्रियोंके उन वचनोंको सुनकर दैत्यराज अन्धक कामातुर हो उठा। उसके सारे शरीरमें कम्प छा गया। फिर तो उसने तुरंत ही दुर्योधन आदिको उस मुनिके पास भेजा। मन्त्रियोंने वहाँ जाकर मुनीश्वरको प्रणाम करके उनसे अन्धकासुरका संदेश कहा तथा बदलेमें शिवजीका उत्तर सुनकर वे लौटकर अन्धकसे बोले।

मन्त्रियोंने कहा—राजन्! आप तो सम्पूर्ण दैत्योंके स्वामी हैं, फिर भी उस महान् पराक्रमी वीरवर तपस्वी मुनिने अपनी बुद्धिसे त्रिलोकीको तृणके समान समझकर हँसते हुए आपके लिये ऐसी बातें कही हैं—'उस निशाचरका शौर्य और धैर्य अस्थिर है। वह दानव कृपण, सत्त्वहीन,

क्रूर, कृतघ्न और सदा ही पापकर्म करनेवाला है। क्या उसे सूर्यपुत्र यमका भय नहीं है ? कहाँ तो मैं, मेरे दारुण शस्त्र और मृत्युको भी संत्रस्त कर देनेवाला युद्ध और कहाँ वह वानरका-सा मुखवाला डरपोक निशाचर, जिसके सारे अङ्ग बुढ़ापेसे जर्जर हो गये हैं ! कहाँ मेरा यह स्वरूप और कहाँ तेरी मन्दभाग्यता ! तेरी सेना भी तो नहींके बराबर ही है। फिर भी यदि तुझमें कुछ सामर्थ्य हो तो युद्धके लिये तैयार हो जा और आकर कुछ अपनी करतूत दिखा। मेरे पास तुझ-जैसे पापियोंका विनाश करनेवाला वज्र-सरीखा भयंकर शस्त्र है और तेरा शरीर तो कमलके समान कोमल है। ऐसी दशामें विचार करके तुझे जो रुचिकर प्रतीत हो, वह कर।'

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनिवर ! मन्त्रियोंकी बात सुनकर (भाता) पार्वतीपर मोहित हुआ वह कामान्ध राक्षस विशाल सेना लेकर चल दिया और वहाँ पहुँचकर नन्दीश्वरसे युद्ध करने लगा। बड़ा भयानक युद्ध हुआ। उस समय युद्धस्थलमें चर्बी, मज्जा, मांस और रक्तकी कीच मच गयी। वहाँ सिर कटे हुए धड़ नाच रहे थे और कच्चा मांस खानेवाले जानवर चारों ओर व्याप्त हो गये थे, जिससे यह बड़ा भयंकर लग रहा था। थोड़ी ही देरमें दैत्य भाग खड़े हुए। तब पिनाकधारी भगवान् शंकर दक्ष-कन्या सतीको भलीभाँति धीरज बँधाते हुए बोले—'प्रिये ! मैंने जो पहले अत्यन्त भयंकर महान् पाशुपत-व्रतका अनुष्ठान किया था, उसमें रात-दिन तुम्हारे प्रसंगवश जो हमारी सेनाका विनाश हुआ है, यह विघ्न-सा आ पड़ा है। देवि ! मरणधर्मा प्राणियोंका जो अमरोंपर आक्रमण हुआ है, यह मानो पुण्यका विनाश करनेवाला कोई ग्रह प्रकट हो गया है। अतः अब मैं पुनः किसी निर्जन वनमें जाकर उस परम अद्भुत दिव्य व्रतकी दीक्षा लूँगा और उस कठिन व्रतका अनुष्ठान करूँगा। सुन्दरि ! तुम्हारा शोक और भय दूर हो जाना चाहिये।'

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने ! इतना कहकर उग्र प्रभावशाली महात्मा शंकर धीरेसे अपना सिंगा बजाकर एक अत्यन्त भयंकर पावन वनमें चले गये। वहाँ वे एक हजार वर्षोंके लिये पाशुपत-व्रतके अनुष्ठानमें तत्पर हो गये। इस व्रतका निभाना देवों और असुरोंकी शक्तिके बाहर है। इधर शीलगुणसे सम्पन्न पतिव्रता देवी पार्वती मन्दराचलपर ही रहकर शिवजीके आगमनकी प्रतीक्षा करती रहती थीं। यद्यपि पुत्रस्थानीय वीरकगण उनकी सुरक्षामें तत्पर थे, तथापि उस गुहाके भीतर अकेली रहनेके कारण वे सदा भयभीत रहती थीं, जिससे उन्हें बड़ा दुःख होता था। इसी बीच वरदानके प्रभावसे उन्मत्त हुआ वह दैत्य अन्धक, जिसका धैर्य कामदेवके बाणोंसे छिन्न-भिन्न हो गया था, अपने मुख्य-मुख्य योधाओंको साथ ले पुनः उस गुफापर चढ़ आया। वहाँ सैनिकोंसहित उसने वीरकगणके साथ अत्यन्त अद्भुत युद्ध किया। उस समय सभी वीरोंने अन्न, जल और नींदका परित्याग कर दिया था। इस प्रकार यह युद्ध लगातार पाँच सौ पाँच

दिन-रातसे चलता रहा। अन्तमें दैत्योंकी भुजाओंसे छूटे हुए आयुधोंके प्रहारसे नन्दीश्वरका शरीर घायल हो गया, जिससे वे गुहाद्वारपर ही गिर पड़े और मूर्च्छित हो गये। उनके गिरनेसे गुहाका सारा दरवाजा ही ढक गया, जिससे उसका खोला जाना असम्भव था। फिर दैत्योंने दो ही घड़ीमें सारे वीरकगणको अपने अस्त्रसमूहोंसे आच्छादित कर दिया। तब पार्वतीने भगवान् विष्णु और ब्रह्माजीका स्मरण किया। स्मरण करते ही ब्राह्मी, नारायणी, ऐन्द्री, वैश्वानरी, याम्या, नैर्ऋति, वारुणी, वायवी, कौबेरी, यक्षेश्वरी, गारुडी आदि देवियोंके रूपमें समस्त देवता, यक्ष, सिद्ध, गुह्यक आदि शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित होकर अपने-अपने वाहनोंपर सवार हो पार्वतीके पास आ पहुँचे और राक्षसोंके साथ भिड़ गये। कुछ समय बाद भगवान् शिव भी आ गये। फिर तो घोर युद्ध हुआ। तदनन्तर शुक्राचार्यको संजीवनी विद्याके द्वारा दैत्योंको जीवित करते देखकर भूतनाथ शिवजी उनको निगल गये। इससे दैत्य ढीले पड़ गये।

व्यासजी! अन्धक महान् पराक्रमी, वीर और त्रिपुरहन्ता शिवके समान बुद्धिमान् था। सैकड़ों वरदान मिलनेके कारण वह उन्मादके वशीभूत हो रहा था। यद्यपि बहुसंख्यक शस्त्रास्त्रोंकी चोटसे उसका शरीर जर्जर हो गया था, फिर भी शिवजीपर विजय पानेके लिये उसने दूसरी माया रची। जब प्रलयकालीन अग्निके समान शरीर धारण करनेवाले भूतनाथ त्रिपुरारि शंकरने अपने त्रिशूलसे उसे बुरी तरह छेद डाला, तब भूतलपर गिरे हुए उसके रक्तकणोंसे यूथ-के-यूथ अन्धक प्रकट हो गये। उनसे सारी रणभूमि व्याप्त हो गयी। वे विकृत मुखवाले भयंकर राक्षस अन्धकके सदृश ही पराक्रमी थे। इस प्रकार जब पशुपतिद्वारा मारे गये सैनिकोंके घावोंसे निकले हुए अत्यन्त गरम-गरम रक्तबिन्दुओंसे दूसरे सैनिक उत्पन्न होने लगे, तब बहुत-सी भुजारूपी लताओं-द्वारा आक्रान्त होनेके कारण कुपित हुए बुद्धिमान् भगवान् विष्णुने प्रमथनाथ शिवको बुलाकर योगबलसे एक ऐसा अजेय स्त्रीरूप धारण किया, जिसका मुख विकृत था और रूप उग्र, विकराल और कङ्कालमात्र था। वह स्त्रीरूप शम्भुके कानसे निकला था। जब उन देवीने रणभूमिमें उपस्थित हो अपने युगल चरणोंसे पृथ्वीको अलंकृत किया, तब सभी देवता उनकी स्तुति करने लगे। तत्पश्चात् भगवान्ने उनकी बुद्धिको प्रेरित किया। फिर तो वे क्षुधार्त होकर रणके मुहानेपर उन सैनिकोंके तथा दैत्यराजके शरीरसे निकले हुए अत्यन्त गरम-गरम रुधिरका पान करने लगीं। (जिससे राक्षसोंका उत्पन्न होना बंद हो गया)। तदनन्तर एकमात्र अन्धक ही बच रहा। यद्यपि उसके शरीरका रक्त सूख गया था, तथापि वह अपने कुलोचित सनातन क्षात्र-धर्मका स्मरण करके अविनाशी भगवान् शंकरके साथ भयंकर थप्पड़ोंसे, वज्र-सदृश जानुओं और चरणोंसे, वज्राकार नखोंसे, मुख, भुजा और सिरोंसे संग्राम करता रहा। तब प्रमथनाथ शिवने रणभूमिमें उसका हृदय विदीर्ण करके उसे शान्त कर दिया। फिर त्रिशूल भोंककर उसे स्थाणुके समान ऊपरको उठा लिया। उसका जर्जर शरीर नीचेको लटक रहा था। सूर्यकी किरणोंने उसे सुखा दिया। पवनके झोंकोंसे युक्त

मेघोंने मूसलाधार जल बरसाकर उसे गीला कर दिया। हिमखण्डके समान शीतल चन्द्रमाकी किरणोंने उसे विशीर्ण कर दिया। फिर भी उस दैत्यराजने अपने प्राणोंका परित्याग नहीं किया। उसने विशेषरूपसे शिवजीका स्तवन किया। तब करुणाके अगाध सागर शम्भु प्रसन्न हो गये और उन्होंने उसे प्रेमपूर्वक गणाध्यक्षका पद प्रदान कर दिया। तत्पश्चात् युद्धके समाप्त हो जानेपर लोकपालोंने नाना प्रकारके सारगर्भित स्तोत्रोंद्वारा विधिपूर्वक शिवजीकी अर्चना की और हर्षित हुए ब्रह्मा, विष्णु आदि देवोंने गर्दन झुकाकर उत्तमोत्तम स्तुतियोंद्वारा उनका स्तवन किया। फिर जय-जयकार करते हुए वे आनन्द मनाने लगे। तदनन्तर शिवजी उन सबको साथ लेकर आनन्दपूर्वक गिरिराजकी गुफाको लौट आये। वहाँ उन्होंने अपने ही अंशभूत पूजनीय देवताओंको नाना प्रकारकी भेंट समर्पित करके उन्हें विदा किया और स्वयं प्रमुदित हुई गिरिराजकुमारीके साथ उत्तमोत्तम लीलाएँ करने लगे।

(अध्याय ४४—४६)

☆

नन्दीश्वरद्वारा शुक्राचार्यका अपहरण और शिवद्वारा उनका निगला जाना, सौ वर्षके बाद शुक्रका शिवलिङ्गके रास्ते बाहर निकलना, शिवद्वारा उनका 'शुक्र' नाम रखा जाना, शुक्रद्वारा जपे गये मृत्युञ्जय-मन्त्र और शिवाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रका वर्णन, शिवद्वारा अन्धकको वर-प्रदान

व्यासजीने पूछा—महाबुद्धिमान् सनत्कुमारजी! जब वह महान् भयंकर एवं रोमाञ्चकारी संग्राम चल रहा था, उस समय त्रिपुरारि शंकरने दैत्यगुरु विद्वान् शुक्राचार्यको निगल लिया था—यह घटना मैंने संक्षेपमें ही सुनी थी। अब आप उसे विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। पिनाकधारी शिवके उदरमें जाकर उन महायोगी शुक्राचार्यने क्या किया था? शम्भुकी जठराग्निने उन्हें जलाया क्यों नहीं? भृगुनन्दन बुद्धिमान् शुक्र भी तो कल्पान्तकालीन अग्निके समान उग्र तेजस्वी थे। वे शम्भुके जठर-पञ्जरसे कैसे निकले? उन्होंने कैसे और कितने कालतक आराधना की थी? तात! उन्हें जो मृत्युका शमन करनेवाली पराविद्या प्राप्त हुई थी, वह विद्या कौन-सी है, जिससे मृत्युका निवारण हो जाता है? मुने! लीलाविहारी देवाधिदेव भगवान् शंकरके त्रिशूलसे छूटे हुए अन्धकको गणाध्यक्षताकी प्राप्ति कैसे हुई? तात! मुझे शिवलीलामृत श्रवण करनेकी विशेष लालसा है, अतः आप मुझपर कृपा करके वह सारा वृत्तान्त पूर्णरूपसे वर्णन कीजिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—अमिततेजस्वी व्यासजीके इन वचनोंको सुनकर सनत्कुमार शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण करके कहने लगे।

सनत्कुमारजीने कहा—मुनिवर! भगवान् शंकरके प्रमथोंकी जब अत्यन्त विजय होने लगी, तब अन्धक घबराकर शुक्राचार्यजीकी शरणमें गया और उसने

गिड़गिड़ाकर मृतसंजीवनी विद्याके द्वारा मरे हुए असुरोंको जीवित करनेकी प्रार्थना की। इसपर शुक्राचार्यने शरणागतधर्मकी रक्षा करना उचित समझा। फिर तो वे युद्धस्थलमें गये और आदरपूर्वक विद्याके स्वामी शंकरका स्मरण करके एक-एक दैत्यपर मृतसंजीवनी विद्याका प्रयोग करने लगे। उस विद्याका प्रयोग होते ही वे सभी दैत्य-दानव वीर एक साथ ही हथियार लिये हुए इस प्रकार उठ खड़े हुए मानो अभी सोकर उठे हों। जैसे पूर्णतया अभ्यस्त किया हुआ वेद, समरभूमिमें बादल और श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणोंको दिया हुआ धन आपत्तिके समय तुरंत प्रकट हो जाता है, उसी प्रकार वे उठ खड़े हुए। शुक्राचार्यके संजीवनी-प्रयोगसे जब बड़े-बड़े दानव जीवित होकर प्रमथोंको बुरी तरह मारने लगे, तब प्रमथोंने जाकर प्रमथेश्वरेश शिवको यह समाचार सुनाया। तब शिवजीने कहा—'नन्दिन्! तुम अभी तुरंत ही जाओ और दैत्योंके बीचसे द्विजश्रेष्ठ शुक्राचार्यको उसी प्रकार उठा लाओ जैसे बाज खरगोशको उठा ले जाता है।'

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे! वृषभध्वजके यों कहनेपर नन्दी साँड़के समान बड़े जोरसे गरजे और तुरंत ही सेनाको लाँघकर उस स्थानपर जा पहुँचे जहाँ भृगुवंशके दीपक शुक्राचार्य विराजमान थे। वहाँ समस्त दैत्य हाथोंमें पाश, खड्ग, वृक्ष, पत्थर और पर्वतखण्ड लिये हुए उनकी रक्षा कर रहे थे। यह देखकर बलशाली नन्दीने उन दैत्योंको विक्षुब्ध करके शुक्राचार्यको उसी प्रकार अपहरण कर लिया, जैसे शरभ हाथीको उठा ले जाता है। महाबली नन्दीद्वारा पकड़े जानेपर शुक्राचार्यके अस्त्र खिसक गये। उनके आभूषण गिरने लगे और केश खुल गये। तब देवशत्रु दानव उन्हें छुड़ानेके लिये सिंहनाद करते हुए नन्दीके पीछे दौड़े और जैसे मेघ जलकी वर्षा करते हैं, उसी तरह नन्दीश्वरके ऊपर वज्र, त्रिशूल, तलवार, फरसा, बरछी और गोफन आदि अस्त्रोंकी उग्र वृष्टि करने लगे। तब उस देवासुर-संग्रामके विकराल रूप धारण करनेपर गणाधिराज नन्दीने अपने मुखकी आगसे सैकड़ों शस्त्रोंको भस्म कर दिया और उन भृगुनन्दनको दबोचकर शत्रुदलको व्यथित करते हुए वे शिवजीके समीप आ पहुँचे तथा शीघ्र ही उन्हें निवेदित करते हुए बोले—'भगवन्! ये शुक्राचार्य उपस्थित हैं।' तब भूतनाथ देवाधिदेव शंकरने पवित्र पुरुषद्वारा प्रदान किये हुए उपहारकी भाँति शुक्राचार्यको पकड़ लिया और बिना कुछ कहे उन्हें फलकी तरह मुखमें डाल लिया। उस समय समस्त असुर उच्चस्वरसे हाहाकार करने लगे।

व्यासजी! जब गिरिजेश्वरने शुक्राचार्यको निगल लिया, तब दैत्योंकी विजयकी आशा जाती रही। उस समय उनकी दशा सूँड़रहित गजराज, सींगहीन साँड़, मस्तकविहीन देह, अध्ययनरहित ब्राह्मण, उद्यमहीन प्राणी, भाग्यहीनके उद्यम, पतिरहित स्त्री, फलवर्जित बाण, पुण्यहीनोंकी आयु, व्रतरहित वेदाध्ययन, एकमात्र वैभवशक्तिके बिना निष्फल हुए कर्मसमूह, शूरताहीन क्षत्रिय और सत्यके बिना धर्मसमुदायकी भाँति शोचनीय हो गयी। दैत्योंका सारा उत्साह जाता रहा। तब अन्धकने महान् दुःख प्रकट करते हुए अपने शूरवीरोंको बहुत उत्साहित किया और

कहा—'वीरो ! जो रणाङ्गण छोड़कर भाग जाते हैं, उनकी ख्याति अपयशरूपी कालिमासे मलिन हो जाती है और उन्हें इस लोकमें तथा परलोकमें—कहीं भी सुख नहीं मिलता। यदि पुनर्जन्मरूपी मलका अपहरण करनेवाले धरातीर्थ—रणतीर्थमें अवगाहन कर लिया जाय तो अन्य तीर्थोंमें स्नान, दान और तपकी क्या आवश्यकता है अर्थात् इनका फल रणभूमिमें प्राणत्याग करनेसे ही प्राप्त हो जाता है।' दैत्यराजके इस वचनको पूर्णरूपसे धारण करके वे दैत्य तथा दानव रणभेरी बजाकर रणभूमिमें प्रमथगणोंपर टूट पड़े और उन्हें मथने लगे तथा बाण, खड्ग, वज्र-सरीखे कठोर पत्थर, भुशुण्डी, भिन्दिपाल, शक्ति, भाले, फरसे, खट्वाङ्ग, पट्टिश, त्रिशूल, लकुट और मुसलोंद्वारा परस्पर प्रहार करते हुए भयंकर मार-काट मचाने लगे। इस प्रकार अत्यन्त घमासान युद्ध हुआ। इसी बीच विनायक, स्कन्द, नन्दी, सोमनन्दी, वीर नैगमेय और महाबली वैशाख आदि उग्र गणोंने त्रिशूल, शक्ति और बाणसमूहोंकी धारावाहिक वर्षा करके अन्धकको अंधा बना दिया। फिर तो प्रमथों तथा असुरोंकी सेनाओंमें महान् कोलाहल मच गया। उस घोर शब्दको सुनकर शम्भुके उदरमें स्थित शुक्राचार्य आश्रयरहित वायुकी भाँति निकलनेका मार्ग ढूँढ़ते हुए चक्कर काटने लगे। उस समय उन्हें रुद्रके उदरमें पातालसहित सातों लोक, ब्रह्मा, नारायण, इन्द्र, आदित्य और अप्सराओंके विचित्र भुवन तथा वह प्रमथासुर-संग्राम भी दीख पड़ा। इस प्रकार वे सौ वर्षोंतक शिवजीकी कुक्षिमें चारों ओर भ्रमण करते रहे; परंतु उन्हें उसी प्रकार कोई छिद्र नहीं दीख पड़ा, जैसे दुष्टकी दृष्टि सदाचारीके छिद्रको नहीं देख पाती। तब भृगुनन्दनने शैवयोगका आश्रय ले एक मन्त्रका जप किया। उस मन्त्रके प्रभावसे वे शम्भुके जठरपञ्जरसे शुक्ररूपमें लिङ्गमार्गसे बाहर निकले। तब उन्होंने शिवजीको प्रणाम किया। गौरीने उन्हें पुत्ररूपमें स्वीकार कर लिया और विघ्नरहित बना दिया। तदनन्तर करुणासागर महेश्वर भृगुनन्दन शुक्राचार्यको वीर्यके रास्ते निकला हुआ देखकर मुसकराते हुए बोले।

महेश्वरने कहा—भृगुनन्दन ! चूँकि तुम मेरे लिङ्गमार्गसे शुक्रकी तरह निकले हो, इसलिये अब तुम शुक्र कहलाओगे। जाओ, अब तुम मेरे पुत्र हो गये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनिवर ! देवेश्वर शंकरके यों कहनेपर सूर्यके सदृश कान्तिमान् शुक्रने पुनः शिवजीको प्रणाम किया और वे हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे।

शुक्रने कहा—भगवन् ! आपके पैर, सिर, नेत्र, हाथ और भुजाएँ अनन्त हैं। आपकी मूर्तियोंकी भी गणना नहीं हो सकती। ऐसी दशामें मैं आप स्तुत्यकी सिर झुकाकर किस प्रकार स्तुति करूँ। आपकी आठ मूर्तियाँ बतायी जाती हैं और आप अनन्तमूर्ति भी हैं। आप सम्पूर्ण सुरों और असुरोंकी कामना पूर्ण करनेवाले हैं तथा अनिष्ट-दृष्टिसे देखनेपर आप संहार भी कर डालते हैं। ऐसे स्तवनके योग्य आपकी मैं किस प्रकार स्तुति करूँ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने ! इस प्रकार शुक्रने शिवजीकी स्तुति करके उन्हें नमस्कार किया और उनकी आज्ञासे वे पुनः

दानवोंकी सेनामें प्रविष्ट हुए, ठीक उसी तरह जैसे चन्द्रमा मेघोंकी घटामें प्रवेश करते हैं। व्यासजी! इस प्रकार रणभूमिमें शंकरने जिस तरह शुक्रको निगल लिया था, वह वृत्तान्त तो तुम्हें सुना दिया। अब शम्भुके उदरमें शुक्रने जिस मन्त्रका जप किया था, उसका वर्णन सुनो।

महर्षे! वह मन्त्र इस प्रकार है—

'ॐ नमस्ते देवेशाय सुरासुरनमस्कृताय भूतभव्यमहादेवाय हरितपिङ्गललोचनाय बलाय बुद्धिरूपिणे वैयाघ्रवसनच्छदायारणेयाय त्रैलोक्यप्रभवे ईश्वराय हराय हरिनेत्राय युगान्तकरणायानलाय गणेशाय लोकपालाय महाभुजाय महाहस्ताय शूलिने महादंष्ट्रिणे कालाय महेश्वराय अव्ययाय कालरूपिणे नीलग्रीवाय महोदराय गणाध्यक्षाय सर्वात्मने सर्वभावनाय सर्वगाय मृत्युहन्त्रे पारियात्रसुव्रताय ब्रह्मचारिणे वेदान्तगाय तपोऽन्तगाय पशुपतये व्यङ्गाय शूलपाणये वृषकेतवे हरये जटिने शिखण्डिने लकुटिने महायशसे भूतेश्वराय गुहावासिने वीणापणवतालवते अमराय दर्शनीयाय बालसूर्यनिभाय श्मशानवासिने भगवते उमापतये अरिंदमाय भगस्याक्षिपातिने पूष्णो दशननाशनाय क्रूरकर्तकाय पाशहस्ताय प्रलयकालाय उल्कामुखायाग्निकेतवे मुनये दीप्ताय विशाम्पतये उन्नयते जनकाय चतुर्थकाय लोकसत्तमाय वामदेवाय वाग्दाक्षिण्याय वामतो भिक्षवे भिक्षुरूपिणे जटिने स्वयं जटिलाय शक्रहस्तप्रतिस्तम्भकाय वसूनां स्तम्भकाय क्रतवे क्रतुकराय कालाय मेधाविने मधुकराय चलाय वानस्पत्याय वाजसनेतिसमाश्रमपूजिताय जगद्धात्रे जगत्कर्त्रे पुरुषाय शाश्वताय ध्रुवाय धर्माध्यक्षाय त्रिवर्त्मने भूतभावनाय त्रिनेत्राय बहुरूपाय सूर्यायुतसमप्रभाय देवाय सर्वतूर्यनिनादिने सर्वबाधाविमोचनाय बन्धनाय सर्वधारिणे धर्मोत्तमाय पुष्पदन्तायाविभागाय मुखाय सर्वहराय हिरण्यश्रवसे द्वारिणे भीमाय भीमपराक्रमाय ॐ नमो नमः।*

इसी श्रेष्ठ मन्त्रका जप करके शुक्र

---

*ॐ जो देवताओंके स्वामी, सुर-असुरद्वारा वन्दित, भूत और भविष्यके महान् देवता, हरे और पीले नेत्रोंसे युक्त, महाबली, बुद्धिस्वरूप, बाघंबर धारण करनेवाले, अग्निस्वरूप, त्रिलोकीके उत्पत्तिस्थान, ईश्वर, हर, हरिनेत्र, प्रलयकारी, अग्निस्वरूप, गणेश, लोकपाल, महाभुज, महाहस्त, त्रिशूल धारण करनेवाले, बड़ी-बड़ी दाढ़ोंवाले, कालस्वरूप, महेश्वर, अविनाशी, कालरूपी, नीलकण्ठ, महोदर, गणाध्यक्ष, सर्वात्मा, सबको उत्पन्न करनेवाले, सर्वव्यापी, मृत्युको हटानेवाले, पारियात्र पर्वतपर उत्तम व्रत धारण करनेवाले, ब्रह्मचारी, वेदान्तप्रतिपाद्य, तपकी अन्तिम सीमातक पहुँचनेवाले, पशुपति, विशिष्ट अङ्गोंवाले, शूलपाणि, वृषध्वज, पापापहारी, जटाधारी, शिखण्ड धारण करनेवाले, दण्डधारी, महायशस्वी, भूतेश्वर, गुहामें निवास करनेवाले, वीणा और पणवपर ताल लगानेवाले, अमर, दर्शनीय, बालसूर्य-सरीखे रूपवाले, श्मशानवासी, ऐश्वर्यशाली, उमापति, शत्रुदमन, भगके नेत्रोंको नष्ट कर देनेवाले, पूषाके दाँतोंके विनाशक, क्रूरतापूर्वक संहार करनेवाले, पाशधारी, प्रलयकालरूप, उल्कामुख, अग्निकेतु, मननशील, प्रकाशमान, प्रजापति, ऊपर उठानेवाले, जीवोंको उत्पन्न करनेवाले, तुरीयतत्त्वरूप, लोकोंमें सर्वश्रेष्ठ, वामदेव, वाणीकी चतुरतारूप, वाममार्गमें भिक्षुरूप, भिक्षुक, जटाधारी, जटिल—दुराराध्य, इन्द्रके हाथको स्तम्भित करनेवाले, वसुओंको विजडित कर देनेवाले,

शम्भुके जठर-पञ्जरसे लिङ्गके रास्ते उत्कट वीर्यकी तरह निकले थे। उस समय गौरीने उन्हें पुत्ररूपसे अपनाया और जगदीश्वर शिवने अजर-अमर बना दिया। तब वे दूसरे शंकरके सदृश शोभा पाने लगे। तीन हजार वर्ष व्यतीत होनेके पश्चात् वे ही वेदनिधि मुनिवर शुक्र पुनः इस भूतलपर महेश्वरसे उत्पन्न हुए। उस समय उन्होंने धैर्यशाली एवं तपस्वी दानवराज अन्धकको देखा। उसका शरीर सूख गया था और वह त्रिशूलपर लटका हुआ परमेश्वर शिवका ध्यान कर रहा था। (वह शिवजीके १०८ नामोंका इस प्रकार स्मरण कर रहा था—)

महादेव—देवताओंमें महान्, विरूपाक्ष—विकराल नेत्रोंवाले, चन्द्रार्धकृतशेखर—मस्तकपर अर्धचन्द्र धारण करनेवाले, अमृत—अमृतस्वरूप, शाश्वत—सनातन, स्थाणु—समाधिस्थ होनेपर ठूँठके समान स्थिर, नीलकण्ठ—गलेमें नील चिह्न धारण करनेवाले, पिनाकी—पिनाक नामक धनुष धारण करनेवाले, वृषभाक्ष—वृषभके नेत्र-सरीखे विशाल नेत्रोंवाले, महाज्ञेय—'महान्' रूपसे जाननेयोग्य, पुरुष—अन्तर्यामी, सर्वकामद—सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाले, कामारि—कामदेवके शत्रु, कामदहन—कामदेवको दग्ध कर देनेवाले, कामरूप—इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, कपर्दी—विशाल जटाओंवाले, विरूप—विकराल रूपधारी, गिरिश—गिरिवर कैलासपर शयन करनेवाले, भीम—भयंकर रूपवाले, सुकी—बड़े-बड़े जबड़ोंवाले, रक्तवासा—लाल वस्त्रधारी, योगी—योगके ज्ञाता, कालदहन—कालको भस्म कर देनेवाले, त्रिपुरघ्न—त्रिपुरोंके संहारकर्ता, कपाली—कपाल धारण करनेवाले, गूढव्रत—जिनका व्रत प्रकट नहीं होता, गुप्तमन्त्र—गोपनीय मन्त्रोंवाले, गम्भीर—गम्भीर स्वभाववाले, भावगोचर—भक्तोंकी भावनाके अनुसार प्रकट होनेवाले, अणिमादिगुणाधार—अणिमा आदि सिद्धियोंके अधिष्ठान, त्रिलोकैश्वर्यदायक—त्रिलोकीका ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले, वीर—बलशाली, वीरहन्ता—शत्रुवीरोंको मारनेवाले, घोर—दुष्टोंके लिये भयंकर, विरूप—विकट रूप धारण करनेवाले, मांसल—मोटे-ताजे शरीरवाले, पटु—निपुण, महागांसाद—श्रेष्ठ फलका गूदा खानेवाले, उन्मत्त—मतवाले, भैरव—कालभैरवस्वरूप, महेश्वर—देवेश्वरोंमें भी श्रेष्ठ, त्रैलोक्यद्रावण—त्रिलोकीका विनाश करनेवाले, लुब्ध—स्वजनोंके लोभी,

---

यज्ञस्वरूप, यज्ञकर्ता, काल, मेधावी, मधुकर, चलने-फिरनेवाले, वनस्पतिका आश्रय लेनेवाले, बाजसन नामसे सम्पूर्ण आश्रमोंद्वारा पूजित, जगद्धाता, जगत्कर्ता, सर्वान्तर्यामी, सनातन, ध्रुव, धर्माध्यक्ष, भूः-भुवः, स्वः—इन तीनों लोकोंमें विचरनेवाले, भूताधिवास, त्रिनेत्र, बहुरूप, दस हजार सूर्योंके समान प्रभाशाली, महादेव, सब तरहके बाजे बजानेवाले, सम्पूर्ण बाधाओंसे विमुक्त करनेवाले, बन्धनस्वरूप, शवको धारण करनेवाले, उत्तम धर्मरूप, पुण्यदत्त, विभागरहित, मुख्यरूप, सबका हरण करनेवाले, सुवर्णके समान दीप्त कीर्तिवाले, मुक्तिके द्वारस्वरूप, भीम तथा भीमपराक्रमी हैं, उन्हें नमस्कार है, नमस्कार है।

रुरुध्वक—महाव्याघ्रस्वरूप, यज्ञसूदन—दक्ष-यज्ञके विनाशक, कृत्तिकासुतयुक्त—कृत्तिकाओंके पुत्र (स्वामिकार्तिक) से युक्त, उन्मत्त—उन्मत्तका-सा वेष धारण करनेवाले, कृत्तिवासा—गजासुरके चमड़ेको ही वस्त्ररूपमें धारण करनेवाले, गजकृत्तिपरीधान—हाथीका चर्म लपेटनेवाले, क्षुब्ध—भक्तोंका कष्ट देखकर क्षुब्ध हो जानेवाले, भुजगभूषण—सर्पोंको भूषणरूपमें धारण करनेवाले, दत्तालम्ब—भक्तोंके अवलम्बदाता, वेताल—वेतालस्वरूप, घोर—घोर, शाकिनीपूजित—शाकिनियोंद्वारा समाराधित, अघोर—अघोर-पथके प्रवर्तक, घोरदैत्यघ्न—भयंकर दैत्योंके संहारक, घोरघोष—भीषण शब्द करनेवाले, वनस्पति—वनस्पतिस्वरूप, भस्माङ्ग—शरीरमें भस्म रमानेवाले, जटिल—जटाधारी, शुद्ध—परम पावन, भेरुण्डशतसेवित—सैकड़ों भेरुण्डनामक पक्षियोंद्वारा सेवित, भूतेश्वर—भूतोंके अधिपति, भूतनाथ—भूतगणोंके स्वामी, पञ्चभूताश्रित—पञ्चभूतोंको आश्रय देनेवाले, खग—गगन-विहारी, क्रोधित—क्रोधयुक्त, निष्ठुर—दुष्टोंपर कठोर व्यवहार करनेवाले, चण्ड—प्रचण्ड पराक्रमी, चण्डीश—चण्डीके प्राणनाथ, चण्डिकाप्रिय—चण्डिकाके प्रियतम, चण्डतुण्ड—अत्यन्त कुपित मुखवाले, गरुत्मान्—गरुडस्वरूप, निस्त्रिंश—खड्गस्वरूप, शवभोजन—शवका भोग लगानेवाले, लेलिहान—क्रुद्ध होनेपर जीभ लपलपानेवाले, महारौद्र—अत्यन्त भयंकर, मृत्यु—मृत्युस्वरूप, मृत्योरगोचर—मृत्युकी भी पहुँचसे परे, मृत्योर्मृत्यु—मृत्युके भी काल, महासेन—विशाल सेनावाले कार्तिकेय-स्वरूप, श्मशानारण्यवासी—श्मशान एवं अरण्यमें विचरनेवाले, राग—प्रेमस्वरूप, विराग—आसक्तिरहित, रागान्ध—प्रेममें मस्त रहनेवाले, वीतराग—वैरागी, शतार्चि—तेजकी असंख्य चिनगारियोंसे युक्त, सत्त्व—सत्त्वगुणरूप, रजः—रजोगुणरूप, तमः—तमोगुणरूप, धर्म—धर्मस्वरूप, अधर्म—अधर्मरूप, वासवानुज—इन्द्रके छोटे भाई उपेन्द्रस्वरूप, सत्य—सत्यरूप, असत्य—सत्यसे भी परे, सद्रूप—उत्तम रूपवाले, असद्रूप—बीभत्स रूपधारी, अहेतुक—हेतुरहित, अर्धनारीश्वर—आधा पुरुष और आधा स्त्रीका रूप धारण करनेवाले, भानु—सूर्यस्वरूप, भानुकोटिशतप्रभ—कोटिशत सूर्योंके समान प्रभाशाली, यज्ञ—यज्ञस्वरूप, यज्ञपति—यज्ञेश्वर, रुद्र—संहारकर्ता, ईशान—ईश्वर, वरद—वरदाता, शिव—कल्याणस्वरूप। परमात्मा शिवकी इन १०८ मूर्तियोंका ध्यान करनेसे वह दानव उस महान् भयसे मुक्त हो गया *। उस

---

* महादेवं विरूपाक्षं चन्द्रार्धकृतशेखरम्। अमृतं शाश्वतं स्थाणुं नीलकण्ठं पिनाकिनम्॥
वृषभाक्षं महाज्ञेयं पुरुषं सर्वकामदम्। कामारिं कामदहनं कामरूपं कपर्दिनम्॥
विरूपं गिरिशं भीमं स्रग्विणं रक्तवाससम्। योगिनं कालदहनं त्रिपुरघ्नं कपालिनम्॥
गूढव्रतं गुप्तमन्त्रं गम्भीरं भावगोचरम्। अणिमादिगुणाधारं त्रिलोकैश्वर्यदायकम्॥
वीरं वीरहणं घोरं विरूपं मांसलं पटुम्। महामांसादमुन्मत्तं भैरवं वै महेश्वरम्॥

समय प्रसन्न हुए जटाधारी शंकरने उसे मुक्त करके उस त्रिशूलके अग्रभागसे उतार लिया और दिव्य अमृतकी वर्षासे अभिषिक्त कर दिया। तत्पश्चात् महात्मा महेश्वर उसने जो कुछ किया था, उस सबका सान्त्वनापूर्वक वर्णन करते हुए उस महादैत्य अन्धकसे बोले।

ईश्वरने कहा—हे दैत्येन्द्र! मैं तेरे इन्द्रिय-निग्रह, नियम, शौर्य और धैर्यसे प्रसन्न हो गया हूँ; अतः सुव्रत! अब तू कोई वर माँग ले। दैत्योंके राजाधिराज! तूने निरन्तर मेरी आराधना की है, इससे तेरा सारा कल्मष धुल गया और अब तू वर पानेके योग्य हो गया है। इसीलिये मैं तुझे वर देनेके लिये आया हूँ; क्योंकि तीन हजार वर्षोंतक बिना खाये-पीये प्राण धारण किये रहनेसे तूने जो पुण्य कमाया है, उसके फलस्वरूप तुझे सुखकी प्राप्ति होनी चाहिये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! यह सुनकर अन्धकने भूमिपर अपने घुटने टेक दिये और फिर वह हाथ जोड़कर काँपता हुआ भगवान् उमापतिसे बोला।

अन्धकने कहा—भगवन्! आपकी महिमा जाने बिना मैंने पहले रणाङ्गणमें हर्षगद्गद वाणीसे आपको जो दीन, हीन तथा नीच-से-नीच कहा है और मूर्खतावश लोकमें जो-जो निन्दित कर्म किया है, प्रभो! उस सबको आप अपने मनमें स्थान न दें अर्थात् उसे भूल जायँ। महादेव! मैं अत्यन्त ओछा और दुःखी हूँ। मैंने कामदोषवश पार्वतीके विषयमें भी जो दूषित भावना कर ली थी, उसे आप क्षमा कर दें। आपको तो अपने कृपण, दुःखी एवं दीन भक्तपर सदा ही विशेष दया करनी चाहिये। मैं उसी तरहका एक दीन भक्त हूँ और आपकी शरणमें आया हूँ। देखिये, मैंने आपके सामने अञ्जलि बाँध रखी है। अब आपको मेरी रक्षा करनी चाहिये। ये जगज्जननी पार्वतीदेवी भी मुझपर प्रसन्न हो जायँ और सारे क्रोधको त्यागकर मुझे कृपादृष्टिसे देखें। चन्द्रशेखर! कहाँ तो इनका भयंकर क्रोध और कहाँ मैं तुच्छ दैत्य? चन्द्रमौलि! मैं किसी प्रकार उसको सहन नहीं कर सकता। शम्भो! कहाँ तो परम उदार आप और कहाँ बुढ़ापा, मृत्यु तथा काम-क्रोध आदि दोषोंके वशीभूत

त्रैलोक्यप्रावणं रुद्रं रुध्यकं मखसूदनम्। कृत्तिकानां सूर्येन्दुमुक्ताक्षं कृत्तिवाससम्॥
गजकृत्तिपरीधानं शुभ्रं भुजगभूषणम्। दन्तालम्बं च वेतालं घोरं शाकिनिपूजितम्॥
अघोरं घोरदैत्यघ्नं घोरघोषं वनस्पतिम्। भस्माङ्गं जटिलं शुद्धं भेरुण्डशतसेवितम्॥
भूतेश्वरं भूतनाथं पञ्चभूताश्रितं खगम्। क्रोधितं निष्ठुरं चण्डं चण्डीशं चण्डिकाप्रियम्॥
चण्डतुण्डं गरुत्मन्तं निस्त्रिंशं शवभोजनम्। लेलिहानं महारौद्रं मृत्युं मृत्योरगोचरम्॥
मृत्योर्मृत्युं महासेनं श्मशानारण्यवासिनम्। रागं विरागं रागान्धं वीतरागं शतार्चिषम्॥
सत्त्वं रजस्तमोधर्ममधर्मं वासवानुजम्। सत्यं त्वसत्यं सद्रूपमसद्रूपमहेतुकम्॥
अर्धनारीश्वरं भानुं भानुकोटिशतप्रभम्। यज्ञं यज्ञपतिं रुद्रमीशानं वरदं शिवम्॥
अष्टोत्तरशतं ह्येतन्मूर्तीनां परमात्मनः। शिवस्य दानवो ध्यायन् मुक्तस्तस्मान्महाभयात्॥
(शि० पु० रु० सं० युद्धखण्ड ४९। ५—१८)

मैं ? (अर्थात् मेरी आपके साथ क्या तुलना है ?) महेश्वर ! आपके ये युद्धकला-निपुण महाबली वीर पुत्र मेरी कृपणतापर विचार करके अब क्रोधके वशीभूत मत हों। तुषार, हार, चन्द्रकिरण, शङ्ख, कुन्दपुष्प और चन्द्रमाके-से वर्णवाले शिव ! मैं इन पार्वतीको गुरुताके गौरवसे नित्य मातृ-दृष्टिसे देखूँ ! मैं नित्य आप दोनोंका भक्त बना रहूँ। देवताओंके साथ होनेवाला मेरा वैर दूर हो जाय तथा मैं शान्तचित्त हो योग-चिन्तन करता हुआ गणोंके साथ निवास करूँ। महेशान ! आपकी कृपासे मैं उत्पन्न हुए इस विरोधी दानवभावका पुनः कभी स्मरण न करूँ, यही उत्तम वर मुझे प्रदान कीजिये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनिसत्तम ! इतनी बात कहकर वह दैत्यराज माता पार्वतीकी ओर देखकर त्रिनयन शंकरका ध्यान करता हुआ मौन हो गया। तब रुद्रने उसकी ओर कृपादृष्टिसे देखा। उनकी दृष्टि पड़ते ही उसे अपने पूर्ववृत्तान्त तथा अद्भुत जन्मका स्मरण हो आया। उस घटनाका स्मरण होते ही उसका मनोरथ पूर्ण हो गया। फिर तो माता-पिता (उमा-महेश्वर) को प्रणाम करके वह कृतकृत्य हो गया। उस समय पार्वती तथा बुद्धिमान् शंकरने उसका मस्तक सूँघकर प्यार किया। इस प्रकार अन्धकने प्रसन्न हुए चन्द्रशेखरसे अपना सारा मनोरथ प्राप्त कर लिया। मुने ! महादेवजीकी कृपासे अन्धकको जिस प्रकार परम सुखद गणाध्यक्ष-पद प्राप्त हुआ था, वह सारा-का-सारा पुरातन वृत्तान्त मैंने सुना दिया और मृत्युञ्जय-मन्त्रका भी वर्णन कर दिया। यह मन्त्र मृत्युका विनाशक और सम्पूर्ण कामनाओंका फल प्रदान करनेवाला है। इसे प्रयत्नपूर्वक जपना चाहिये।

(अध्याय ४७—४९)

☆

शुक्राचार्यकी घोर तपस्या और इनका शिवजीको चित्तरत्न अर्पण करना तथा अष्टमूर्त्यष्टक-स्तोत्रद्वारा उनका स्तवन करना, शिवजीका प्रसन्न होकर उन्हें मृतसञ्जीवनी विद्या तथा अन्यान्य वर प्रदान करना

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी ! मुनिवर शुक्राचार्यको शिवसे मृत्युञ्जय नामक मृत्युका प्रशमन करनेवाली परा विद्या किस प्रकार प्राप्त हुई थी, अब उसका वर्णन करता हूँ; सुनो। पूर्वकालकी बात है, इन भृगुनन्दनने वाराणसीपुरीमें जाकर प्रभावशाली विश्वनाथका ध्यान करते हुए बहुत कालतक घोर तप किया था। वेदव्यासजी ! उस समय उन्होंने वहीं एक शिवलिङ्गकी स्थापना की और उसके सामने ही एक परम रमणीय कूप तैयार कराया। फिर प्रयत्नपूर्वक उन देवेश्वरको एक लाख बार द्रोणभर पञ्चामृतसे तथा बहुत-से सुगन्धित द्रव्योंसे स्नान कराया। फिर एक हजार बार परम प्रीतिपूर्वक चन्दन, यक्ष-कर्दम * और सुगन्धित उबटनका उस लिङ्गपर अनुलेप किया। तत्पश्चात् सावधानीके साथ परम प्रेमपूर्वक राजचम्पक

---

*एक प्रकारका अङ्ग-लेप, जो कपूर, अगुरु, कस्तूरी और कङ्कोलको मिलाकर बनाया जाता है।

(अमलतास), धतूर, कनेर, कमल, मालती, कर्णिकार, कदम्ब, मौलसिरी, उत्पल, मल्लिका (चमेली), शतपत्री, सिन्धुवार, ढाक, बन्धूकपुष्प (गुलदुपहरी), पुंनाग, नागकेसर, केसर, नवमल्लिक (बेलमोगरा), बिबिलिक (रक्तदला), कुन्द (माधपुष्प), मुचुकुन्द (मोतिया), मन्दार, बिल्वपत्र, गूमा, मरुवक (मरुआ), वृक (धूप), गैंठिवन, दौना, अत्यन्त सुन्दर आमके पल्लव, तुलसी, देवजवासा, बृहत्पत्री, कुशाङ्कुर, नन्द्यावर्त (नाँदरूख), अगस्त्य, साल, देवदारु, कचनार, कुरबक (गुलखेरा), दुर्वाङ्कुर, कुरंटक (करसैला)—इनमेंसे प्रत्येकके पुष्पों और अन्य पल्लवोंसे तथा नाना प्रकारके रमणीय पत्रों और सुन्दर कमलोंसे शंकरजीकी विधिवत् अर्चना की। उन्हें बहुत-से उपहार समर्पित किये। तथा शिवलिङ्गके आगे नाचते हुए शिवसहस्रनाम एवं अन्यान्य स्तोत्रोंका गान करके शंकरजीका स्तवन किया। इस प्रकार शुक्राचार्य पाँच हजार वर्षोंतक नाना प्रकारके विधि-विधानसे महेश्वरका पूजन करते रहे; परंतु जब उन्हें थोड़ा-सा भी वर देनेके लिये उद्यत होते नहीं देखा, तब उन्होंने एक-दूसरे अत्यन्त दुस्सह एवं घोर नियमका आश्रय लिया। उस समय शुक्रने इन्द्रियोंसहित मनके अत्यन्त चञ्चलतारूपी महान् दोषको बारंबार भावनारूपी जलसे प्रक्षालित किया। इस प्रकार चित्तरत्नको निर्मल करके उसे पिनाकधारी शिवके अर्पण कर दिया और स्वयं धूमकणका पान करते हुए तप करने लगे। इस प्रकार उनके एक सहस्र वर्ष और बीत गये। तब भृगुनन्दन शुक्रको यों दृढ़चित्तसे घोर तप करते देखकर महेश्वर उनपर प्रसन्न हो गये। फिर तो दक्षकन्या पार्वतीके स्वामी साक्षात् विरूपाक्ष शंकर, जिनके शरीरकी कान्ति सहस्रों सूर्योंसे भी बढ़कर थी, उस लिङ्गसे निकलकर शुक्रसे बोले।

महेश्वरने कहा—महाभाग भृगुनन्दन! तुम तो तपस्याकी निधि हो। महामुने! मैं तुम्हारे इस अविच्छिन्न तपसे विशेष प्रसन्न हूँ। भार्गव! तुम अपना सारा मनोवाञ्छित वर माँग लो। मैं प्रीतिपूर्वक तुम्हारा सारा मनोरथ पूर्ण कर दूँगा। अब मेरे पास तुम्हारे लिये कोई वस्तु अदेय नहीं रह गयी है।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! शम्भुके इस परम सुखदायक एवं उत्कृष्ट वचनको सुनकर शुक्र प्रसन्न हो आनन्द-समुद्रमें निमग्न हो गये। उन कमलनयन द्विजवर शुक्रका शरीर परमानन्द-जनित रोमाञ्चके कारण पुलकायमान हो गया। तब उन्होंने हर्षपूर्वक शम्भुके चरणोंमें प्रणाम किया। उस समय उनके नेत्र हर्षसे खिल उठे थे। फिर वे मस्तकपर अञ्जलि रखकर जय-जयकार करते हुए अष्टमूर्तिधारी* वरदायक शिवकी स्तुति करने लगे।

भार्गवने कहा—सूर्यस्वरूप भगवन्! आप त्रिलोकीका हित करनेके लिये आकाशमें प्रकाशित होते हैं और अपनी इन किरणोंसे समस्त अन्धकारको अभिभूत

---

* पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, यजमान, चन्द्रमा और सूर्य—इन आठोंमें अधिष्ठित शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, महादेव और ईशान—ये अष्टमूर्तियोंके नाम हैं।

करके रातमें विचरनेवाले असुरोंका मनोरथ नष्ट कर देते हैं। जगदीश्वर! आपको नमस्कार है। घोर अन्धकारके लिये चन्द्रस्वरूप शंकर! आप अमृतके प्रवाहसे परिपूर्ण तथा जगत्‌के सभी प्राणियोंके नेत्र हैं। आप अपनी अमर्याद तेजोमय किरणोंसे आकाशमें और भूतलपर अपार प्रकाश फैलाते हैं, जिससे सारा अंधकार दूर हो जाता है; आपको प्रणाम है। सर्वव्यापिन्! आप पावन पथ—योगमार्गका आश्रय लेनेवालोंकी सदा गति तथा उपास्यदेव हैं। भुवन-जीवन! आपके बिना भला, इस लोकमें कौन जीवित रह सकता है। सर्पकुलके संतोषदाता! आप निश्चल वायुरूपसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी वृद्धि करनेवाले हैं, आपको अभिवादन है। विश्वके एकमात्र पावनकर्ता! आप शरणागतरक्षक और अग्निकी एकमात्र शक्ति हैं। पावक आपका ही स्वरूप है। आपके बिना मृतकोंका वास्तविक दिव्य कार्य दाह आदि नहीं हो सकता। जगत्‌के अन्तरात्मा! आप प्राण-शक्तिके दाता, जगत्स्वरूप और पद-पदपर शान्ति प्रदान करनेवाले हैं; आपके चरणोंमें मैं सिर झुकाता हूँ। जलस्वरूप परमेश्वर! आप निश्चय ही जगत्‌के पवित्रकर्ता और चित्र-विचित्र सुन्दर चरित्र करनेवाले हैं। विश्वनाथ! जलमें अवगाहन करनेसे आप विश्वको निर्मल एवं पवित्र बना देते हैं, इसलिये आपको नमस्कार है। आकाशरूप ईश्वर! आपसे अवकाश प्राप्त करनेके कारण यह विश्व बाहर और भीतर विकसित होकर सदा स्वभाववश श्वास लेता है अर्थात् इसकी परम्परा चलती रहती है तथा आपके द्वारा यह संकुचित भी होता है अर्थात् नष्ट हो जाता है; इसलिये दयालु भगवन्! मैं आपके आगे नतमस्तक होता हूँ। विश्वम्भरात्मक! आप ही इस विश्वका भरण-पोषण करते हैं। सर्वव्यापिन्! आपके अतिरिक्त दूसरा कौन अज्ञानान्धकारको दूर करनेमें समर्थ हो सकता है। अतः विश्वनाथ! आप मेरे अज्ञानरूपी तमका विनाश कर दीजिये। नागभूषण! आप स्तवनीय पुरुषोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं। इसलिये आप परात्पर प्रभुको मैं बारंबार प्रणाम करता हूँ। आत्मस्वरूप शंकर! आप समस्त प्राणियोंके अन्तरात्मामें निवास करनेवाले, प्रत्येक रूपमें व्याप्त हैं और मैं आप परमात्माका जन हूँ। अष्टमूर्ते! आपकी इन रूप-परम्पराओंसे यह चराचर विश्व विस्तारको प्राप्त हुआ है, अतः मैं सदासे आपको नमस्कार करता हूँ। मुक्तपुरुषोंके बन्धो! आप विश्वके समस्त प्राणियोंके स्वरूप, प्रणतजनोंके सम्पूर्ण योगक्षेमका निर्वाह करनेवाले और परमार्थ-स्वरूप हैं। आप अपनी इन अष्टमूर्तियोंसे युक्त होकर इस फैले हुए विश्वको भलीभाँति विस्तृत करते हैं, अतः आपको मेरा अभिवादन है।*

---

* त्वं भाभिराभिरभिभूय तमस्समस्तमस्तं नयस्यभिमतानि निशाचराणाम्।
देदीप्यसे दिवमणे गगने हिताय लोकत्रयस्य जगदीश्वर तन्नमस्ते॥
लोकेऽतिवेलमतिवेलमहामहोभिर्निर्भासि कौ च गगनेऽखिललोकनेत्रः।
विद्राविताखिलतमास्सुतमो हिमांशो पीयूषपूरपरिपूरित तन्नमस्ते॥

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनिवर ! भृगुनन्दन शुक्रने इस प्रकार अष्टमूर्त्यष्टक-स्तोत्रद्वारा शिवजीका स्तवन करके भूमिपर मस्तक रखकर उन्हें बारंबार प्रणाम किया। जब अमित तेजस्वी भार्गवने महादेवकी इस प्रकार स्तुति की, तब शिवजीने चरणोंमें पड़े हुए उन द्विजवरको अपनी दोनों भुजाओंसे पकड़कर उठा लिया और परम प्रेमपूर्वक मेघगर्जनकी-सी गम्भीर एवं मधुर वाणीमें कहा। उस समय शंकरजीके दाँतोंकी चमकसे सारी दिशाएँ प्रकाशित हो उठी थीं।

महादेवजी बोले—विप्रवर कवे ! तुम मेरे पावन भक्त हो। तात ! तुम्हारे इस उग्र तपसे, उत्तम आचरणसे, लिङ्गस्थापनजन्य पुण्यसे, लिङ्गकी आराधना करनेसे, चित्तका उपहार प्रदान करनेसे, पवित्र अटल भावसे, अविमुक्त महाक्षेत्र काशीमें पावन आचरण करनेसे मैं तुम्हें पुत्ररूपसे देखता हूँ; अतः तुम्हारे लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है। तुम अपने इसी शरीरसे मेरी उदरदरीमें प्रवेश करोगे और मेरे श्रेष्ठ इन्द्रियमार्गसे निकलकर पुत्ररूपमें जन्म ग्रहण करोगे। महाशुचे! मेरे पास जो मृतसञ्जीवनी नामकी निर्मल विद्या है, जिसका मैंने ही अपने महान् तपोबलसे निर्माण किया है, उस महामन्त्ररूपा विद्याको आज मैं तुम्हें प्रदान करूँगा; क्योंकि तुम पवित्र तपकी निधि हो, अतः तुममें उस विद्याको धारण करनेकी योग्यता वर्तमान है। तुम नियमपूर्वक जिस-जिसके उद्देश्यसे विद्येश्वरकी इस श्रेष्ठ विद्याका प्रयोग करोगे, वह निश्चय ही जीवित हो जायगा—यह सर्वथा सत्य है। तुम आकाशमें अत्यन्त दीप्तिमान् तारारूपसे स्थित होओगे। तुम्हारा तेज सूर्य और अग्निके तेजका भी अतिक्रमण कर जायगा। तुम ग्रहोंमें प्रधान माने जाओगे। जो स्त्री अथवा पुरुष तुम्हारे सम्मुख रहनेपर यात्रा करेंगे, उनका सारा कार्य तुम्हारी दृष्टि

त्वं पावने पथि सदा गतिरप्युपास्यः कस्त्वां विना भुवनजीवन जीवतीह।
स्तब्धप्रभञ्जनविवर्धितसर्वजन्तो संतोषिताहिकुल सर्वग वै नमस्ते॥
विश्वैकपालक नतावक पावकैक शक्ते ऋते मृतवतामृतदिव्यकार्यम्।
प्राणिष्यदो जगदहो जगदन्तरात्मंस्त्वं पावकः प्रतिपदं शमदो नमस्ते॥
पानीयरूप परमेश जगत्पवित्र चित्रातिचित्रसुचरित्रकरोऽसि नूनम्।
विश्वं पवित्रममलं किल विश्वनाथ पानीयगाहनत एतदतो नतोऽस्मि॥
आकाशरूपबहिरन्तरुतावकाशदानाद् विकस्वरमिहेश्वर विश्वमेतत्।
त्वत्तस्सदा सदय संश्वसिति स्वभावात् संकोचमेति भवतोऽस्मि नतस्ततस्त्वाम्॥
विश्वम्भरात्मक बिभर्षि विभोऽत्र विश्वं को विश्वनाथ भवतोऽन्यतमस्तमोऽरिः।
स त्वं विनाशय तमो मम चाहिभूष स्तव्यात्परः परपरं प्रणतस्ततस्त्वाम्॥
आत्मस्वरूप तव रूपपरम्पराभिराभिस्ततं हर चराचररूपमेतत्।
सर्वान्तरात्मनिलय प्रतिरूपरूप नित्यं नतोऽस्मि परमात्मजनोऽष्टमूर्ते॥
इत्यष्टमूर्तिभिरिमाभिरबन्धबन्धो युक्तः करोषि खलु विश्वजनीनमूर्ते।
एतत्ततं सुविततं प्रणतप्रणीत सर्वार्थसार्थपरमार्थ ततो नतोऽस्मि॥

(शि० पु० रु० सं० युद्धखण्ड ५०। २४—३२)

पड़नेसे नष्ट हो जायगा। सुव्रत ! तुम्हारे उदय होनेपर जगत्में मनुष्योंके विवाह आदि समस्त धर्मकार्य सफल होंगे। सभी नन्दा (प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशी) तिथियाँ तुम्हारे संयोगसे शुभ हो जायँगी और तुम्हारे भक्त वीर्यसम्पन्न तथा बहुत-सी संतानवाले होंगे। तुम्हारे द्वारा स्थापित किया हुआ यह शिवलिङ्ग 'शुक्रेश' के नामसे विख्यात होगा। जो मनुष्य इस लिङ्गकी अर्चना करेंगे, उन्हें सिद्धि प्राप्त हो जायगी। जो लोग वर्षपर्यन्त नक्तव्रतपरायण होकर शुक्रवारके दिन शुक्रकूपके जलसे सारी क्रियाएँ सम्पन्न करके शुक्रेशकी अर्चना करेंगे, उन्हें जिस फलकी प्राप्ति होगी, वह मुझसे श्रवण करो। उन मनुष्योंमें वीर्यकी अधिकता होगी, उनका वीर्य कभी निष्फल नहीं होगा; वे पुत्रवान् तथा पुरुषत्वके सौभाग्यसे सम्पन्न होंगे। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। वे सभी मनुष्य बहुत-सी विद्याओंके ज्ञाता और सुखके भागी होंगे। यों वरदान देकर महादेव उसी लिङ्गमें समा गये। तब भृगुनन्दन शुक्र भी प्रसन्नमनसे अपने धामको चले गये। व्यासजी ! यों शुक्राचार्यको जिस प्रकार अपने तपोबलसे मृत्युञ्जय नामक विद्याकी प्राप्ति हुई थी, वह वृत्तान्त मैंने तुमसे वर्णन कर दिया। अब और क्या सुनना चाहते हो ?

(अध्याय ५०)

☆

बाणासुरकी तपस्या और उसे शिवद्वारा वर-प्राप्ति, शिवका गणों और पुत्रोंसहित उसके नगरमें निवास करना, बाणपुत्री ऊषाका रातके समय स्वप्नमें अनिरुद्धके साथ मिलन, चित्रलेखाद्वारा अनिरुद्धका द्वारकासे अपहरण, बाणका अनिरुद्धको नागपाशमें बाँधना, दुर्गाके स्तवनसे अनिरुद्धका बन्धन-मुक्त होना, नारदद्वारा समाचार पाकर श्रीकृष्णकी शोणितपुरपर चढ़ाई, शिवके साथ उनका घोर युद्ध, शिवकी आज्ञासे श्रीकृष्णका उन्हें जृम्भणास्त्रसे मोहित करके बाणकी सेनाका संहार करना

व्यासजी बोले—सर्वज्ञ सनत्कुमारजी ! आपने अनुग्रह करके प्रेमपूर्वक ऐसी अद्भुत और सुन्दर कथा सुनायी है, जो शंकरकी कृपासे ओतप्रोत है। अब मुझे शशिमौलिके उस उत्तम चरित्रके श्रवण करनेकी इच्छा है, जिसमें उन्होंने प्रसन्न होकर बाणासुरको गणाध्यक्ष-पद प्रदान किया था।

सनत्कुमारजीने कहा—व्यासजी ! परमात्मा शम्भुकी उस कथाको, जिसमें उन्होंने प्रसन्न होकर बाणासुरको गणनायक बनाया था, आदरपूर्वक श्रवण करो। इसी प्रसङ्गमें महाप्रभु शंकरका वह सुन्दर चरित्र भी आयेगा, जिसमें उन्होंने बाणासुरपर अनुग्रह करके श्रीकृष्णके साथ संग्राम किया था। व्यासजी ! दक्षप्रजापतिकी तेरह

कन्याएँ कश्यप मुनिकी पत्नियाँ थीं। वे सब-की-सब पतिव्रता तथा सुशीला थीं। उनमें दिति सबसे बड़ी थी, जिसके लड़के दैत्य कहलाते हैं। अन्य पत्नियोंसे भी देवता तथा चराचरसहित समस्त प्राणी पुत्ररूपसे उत्पन्न हुए थे। ज्येष्ठ पत्नी दितिके गर्भसे सर्वप्रथम दो महाबली पुत्र पैदा हुए, उनमें हिरण्यकशिपु ज्येष्ठ था और उसके छोटे भाईका नाम हिरण्याक्ष था। हिरण्यकशिपुके चार पुत्र हुए। उन दैत्यश्रेष्ठोंका क्रमशः ह्राद, अनुह्राद, संह्राद और प्रह्राद नाम था। उनमें प्रह्राद जितेन्द्रिय तथा महान् विष्णुभक्त हुए। उनका नाश करनेके लिये कोई भी दैत्य समर्थ न हो सका। प्रह्रादका पुत्र विरोचन हुआ, वह दानियोंमें सर्वश्रेष्ठ था। उसने विप्ररूपसे याचना करनेवाले इन्द्रको अपना सिर ही दे डाला था। उसका पुत्र बलि हुआ। यह महादानी और शिवभक्त था। इसने वामनरूपधारी विष्णुको सारी पृथ्वी दान कर दी थी। बलिका औरस पुत्र बाण हुआ। वह शिवभक्त, मानी, उदार, बुद्धिमान्, सत्यप्रतिज्ञ और सहस्रोंका दान करनेवाला था। उस असुरराजने पूर्वकालमें त्रिलोकीको तथा त्रिलोकाधिपतियोंको बलपूर्वक जीतकर शोणितपुरमें अपनी राजधानी बनाया और वहीं रहकर राज्य करने लगा। उस समय देवगण शंकरकी कृपासे उस शिवभक्त बाणासुरके किंकरके समान हो गये थे। उसके राज्यमें देवताओंके अतिरिक्त और कोई प्रजा दुःखी नहीं थी। शत्रुधर्मका बर्ताव करनेवाले देवता शत्रुतावश ही कष्ट झेल रहे थे। एक समय वह महासुर अपनी सहस्रों भुजाओंसे ताली बजाता हुआ ताण्डवनृत्य करके महेश्वर शिवको प्रसन्न करनेकी चेष्टा करने लगा। उसके उस नृत्यसे भक्तवत्सल शंकर संतुष्ट हो गये। फिर उन्होंने परम प्रसन्न हो उसकी ओर कृपादृष्टिसे देखा। भगवान् शंकर तो सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी, शरणागतवत्सल और भक्तयाञ्छाकल्पतरु ही ठहरे। उन्होंने बलिनन्दन महासुर बाणको वर देनेकी इच्छा प्रकट की।

मुने! बलिनन्दन महादैत्य बाण शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ और परम बुद्धिमान् था। उसने परमेश्वर शंकरको प्रणाम करके उनकी स्तुति की (और कहा)।

बाणासुर बोला—प्रभो! आप मेरे रक्षक हो जाइये और पुत्रों तथा गणोंसहित मेरे नगरके अध्यक्ष बनकर सर्वथा प्रीतिका निर्वाह करते हुए मेरे पास ही निवास कीजिये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे! वह बलिपुत्र बाण निश्चय ही शिवजीकी मायासे मोहमें पड़ गया था, इसीलिये उसने मुक्ति प्रदान करनेवाले दुराराध्य महेश्वरको पाकर भी ऐसा वर माँगा। तब ऐश्वर्यशाली भक्तवत्सल शम्भु उसे यह वर देकर पुत्रों और गणोंके साथ प्रेमपूर्वक वहीं निवास करने लगे। एक बार बाणासुरको बड़ा ही गर्व हो गया। उसने ताण्डवनृत्य करके शंकरको संतुष्ट किया। जब बाणासुरको यह ज्ञात हो गया कि पार्वतीवल्लभ शिव प्रसन्न हो गये हैं, तब वह हाथ जोड़कर सिर झुकाये हुए बोला।

बाणासुरने कहा—देवाधिदेव महादेव! आप समस्त देवताओंके शिरोमणि हैं। आपकी ही कृपासे मैं बली हुआ हूँ। अब आप मेरा उत्तम वचन सुनिये। देव! आपने

जो मुझे एक हजार भुजाएँ प्रदान की हैं, ये तो अब मुझे महान् भारस्वरूप लग रही हैं; क्योंकि इस त्रिलोकीमें मुझे आपके अतिरिक्त अपनी जोड़का और कोई योद्धा ही नहीं मिला। इसलिये वृषध्वज ! युद्धके बिना इन पर्वत-सरीखी सहस्रों भुजाओंको लेकर मैं क्या करूँ। मैं अपनी इन परिपुष्ट भुजाओंकी खुजली मिटानेके लिये युद्धकी लालसासे नगरों तथा पर्वतोंको चूर्ण करता हुआ दिग्गजोंके पास गया; परंतु वे भी भयभीत होकर भाग खड़े हुए। मैंने यमको योद्धा, अग्निको महान् कार्य करनेवाला, वरुणको गौओंका पालनकर्ता गोपाल, कुबेरको गजाध्यक्ष, निर्ऋतिको सैरन्ध्री और इन्द्रको जीतकर सदाके लिये करद बना लिया है। महेश्वर ! अब मुझे किसी ऐसे युद्धके प्राप्त होनेकी बात बताइये, जिसमें मेरी ये भुजाएँ या तो शत्रुओंके हाथोंसे छूटे हुए शस्त्रास्त्रोंसे जर्जर होकर गिर जायँ अथवा हजारों प्रकारसे शत्रुकी भुजाओंको ही गिरायें। यही मेरी अभिलाषा है, इसे पूर्ण करनेकी कृपा करें।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ ! उसकी बात सुनकर भक्तबाधापहारी तथा महामन्युस्वरूप रुद्रको कुछ क्रोध आ गया। तब वे महान् अद्भुत अट्टहास करके बोले।

रुद्रने कहा—'अरे अभिमानी ! सम्पूर्ण दैत्योंके कुलमें नीच ! तुझे सर्वथा धिक्कार है, धिक्कार है। तू बलिका पुत्र और मेरा भक्त है। तेरे लिये ऐसी बात कहना उचित नहीं है। अब तेरा दर्प चूर्ण होगा। तुझे शीघ्र ही मेरे समान बलवान्‌के साथ अकस्मात् महान् भीषण युद्ध प्राप्त होगा। उस संग्राममें तेरी ये पर्वत-सरीखी भुजाएँ जलौनी लकड़ीकी तरह शस्त्रास्त्रोंसे छिन्न-भिन्न होकर भूमिपर गिरेंगी। दुष्टात्मन् ! तेरे आयुधागारपर स्थापित तेरा जो यह मनुष्यके सिरवाला मयूरध्वज फहरा रहा है, इसका जब वायु-भयके बिना ही पतन हो जायगा, तब तू अपने चित्तमें समझ लेना कि वह महान् भयानक युद्ध आ पहुँचा है। उस समय तू घोर संग्रामका निश्चय करके अपनी सारी सेनाके साथ वहाँ जाना। इस समय तू अपने महलको लौट जा; क्योंकि इसीमें तेरा कल्याण है। दुर्मते ! वहाँ तुझे प्रसिद्ध बड़े-बड़े उत्पात दिखायी देंगे।' यों कहकर गर्वहारी भक्तवत्सल भगवान् शंकर चुप हो गये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने ! यह सुनकर बाणासुरने दिव्य पुष्पोंकी कलियोंसे अञ्जलि भरकर रुद्रकी अभ्यर्चना की और फिर उन महादेवको प्रणाम करके वह अपने घरको लौट गया। तदनन्तर किसी समय दैववश उसका वह ध्वज अपने-आप टूटकर गिर गया। यह देखकर बाणासुर हर्षित हो युद्धके लिये उद्यत हो गया। वह अपने हृदयमें विचार करने लगा कि कौन-सा युद्धप्रेमी योद्धा किस देशसे आयेगा, जो नाना प्रकारके शस्त्रास्त्रोंका पारगामी विद्वान् होगा और मेरी सहस्रों भुजाओंको ईंधनकी तरह काट डालेगा तथा मैं भी अपने अत्यन्त तीखे शस्त्रोंसे उसके सैकड़ों टुकड़े कर डालूँगा। इसी समय शंकरकी प्रेरणासे वह काल आ गया। एक दिन बाणासुरकी कन्या ऊषा वैशाख मासमें माधवकी पूजा करके माङ्गलिक शृङ्गारसे सुसज्जित हो रातके समय अपने गुप्त अन्तःपुरमें सो रही थी, उसी समय वह स्त्रीभाव-(कामभाव-)

प्राप्त हो गयी। तब देवी पार्वतीकी शक्तिसे ऊषाको स्वप्नमें श्रीकृष्णके पौत्र अनिरुद्धका मिलन प्राप्त हुआ। जागनेपर वह व्याकुल हो गयी और उसने अपनी सखी चित्रलेखासे स्वप्नमें मिले हुए उस पुरुषको ला देनेके लिये कहा।

तब चित्रलेखाने कहा—'देवि! तुमने स्वप्नमें जिस पुरुषको देखा है, उसे भला, मैं कैसे ला सकती हूँ, जब कि मैं उसे जानती ही नहीं।' उसके यों कहनेपर दैत्यकन्या ऊषा प्रेमान्ध होकर मरनेपर उतारू हो गयी, तब उस दिन उसकी उस सखीने उसे बचाया। मुनिश्रेष्ठ! कुम्भाण्डकी पुत्री चित्रलेखा बड़ी बुद्धिमती थी, वह बाणतनया ऊषासे पुनः बोली।

चित्रलेखाने कहा—सखी! जिस पुरुषने तुम्हारे मनका अपहरण किया है, उसे बताओ तो सही। वह यदि त्रिलोकीमें कहीं भी होगा तो मैं उसे लाऊँगी और तुम्हारा कष्ट दूर करूँगी।

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे! यों कहकर चित्रलेखाने वस्त्रके परदेपर देवताओं, दैत्यों, दानवों, गन्धर्वों, सिद्धों, नागों और यक्ष आदिके चित्र अङ्कित किये। फिर वह मनुष्योंका चित्र बनाने लगी। उनमें वृष्णिवंशियोंका प्रकरण आरम्भ होनेपर उसने शूर, वसुदेव, राम, कृष्ण और नरश्रेष्ठ प्रद्युम्नका चित्र बनाया। फिर जब उसने प्रद्युम्ननन्दन अनिरुद्धका चित्र खींचा, तब उसे देखकर ऊषा लज्जित हो गयी। उसका मुख अवनत हो गया और हृदय हर्षसे परिपूर्ण हो गया।

ऊषाने कहा—'सखी! रातमें जो मेरे पास आया था और जिसने शीघ्र ही मेरे चित्तरूपी रत्नको चुरा लिया है, वह चोर पुरुष यही है।' तदनन्तर ऊषाके अनुरोध करनेपर चित्रलेखा ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशीको तीसरे पहर द्वारकापुरी पहुँचकर क्षणमात्रमें ही पलंगपर बैठे हुए अनिरुद्धको महलमेंसे उठा लायी। वह दिव्य योगिनी थी। ऊषा अपने प्रियतमको पाकर प्रसन्न हो गयी। इधर अन्तःपुरके द्वारकी रक्षा करनेवाले वेत्रधारी पहरेदारोंने चेष्टाओंसे तथा अनुमानसे इस बातको लक्ष्य कर लिया। उन्होंने एक दिव्य शरीरधारी, दर्शनीय, साहसी तथा समरप्रिय नवयुवकको कन्याके साथ दुःशीलताका आचरण करते हुए देख भी लिया। उसे देखकर कन्याके अन्तःपुरकी रक्षा करनेवाले उन महाबली पुरुषोंने बलिपुत्र बाणासुरके पास जाकर सारी बातें निवेदन करते हुए कहा।

द्वारपाल बोले—देव! पता नहीं, आपके अन्तःपुरमें बलपूर्वक प्रवेश करके कौन पुरुष छिपा हुआ है। वह इन्द्र तो नहीं है, जो वेष बदलकर आपकी कन्याका उपभोग कर रहा है? महाबाहु दानवराज! उसे यहाँ देखिये, देखिये और जैसा उचित समझिये वैसा कीजिये। इसमें हमलोगोंका कोई दोष नहीं है।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ! द्वारपालोंका वह वचन तथा कन्याके दूषित होनेका कथन सुनकर महाबली दानवराज बाण आश्चर्यचकित हो गया। तदनन्तर वह कुपित होकर अन्तःपुरमें जा पहुँचा। वहाँ उसने प्रथम अवस्थामें वर्तमान दिव्य शरीरधारी अनिरुद्धको देखा। उसे महान् आश्चर्य हुआ। फिर उसने उसका बल देखनेके लिये दस हजार सैनिकोंको भेजकर

आज्ञा दी कि इसे मार डालो। सेनाने अनिरुद्धपर आक्रमण किया। तब अनिरुद्धने बात-की-बातमें दस हजार सैनिकोंको कालके हवाले कर दिया। फिर तो असंख्य सेना-पर-सेना आने लगी और अनिरुद्ध उन्हें कालका ग्रास बनाने लगे। तदनन्तर उन्होंने बाणासुरका वध करनेके लिये एक शक्ति हाथमें ली, जो कालाग्निके समान भयंकर थी। फिर उसीसे रथकी बैठकमें बैठे हुए बाणासुरपर प्रहार किया। उसकी गहरी चोट खाकर वीरवर बाण उसी क्षण घोड़ोंसहित वहीं अन्तर्धान हो गया। फिर महावीर बलिपुत्र बाणासुरने, जो महान् बलसम्पन्न तथा शिवभक्त था, छलपूर्वक नागपाशसे अनिरुद्धको बाँध लिया। इस प्रकार उन्हें बाँधकर और पिंजरेमें कैद करके वह युद्धसे उपराम हो गया। तत्पश्चात् बाण कुपित होकर महाबली सूतपुत्रसे बोला।

बाणासुरने कहा—सूतपुत्र! घास-फूससे ढके हुए अगाध कुएँमें ढकेलकर इस पापीको मार डाल। अधिक क्या कहूँ, इसे सर्वथा मार ही डालना चाहिये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! उसकी यह बात सुनकर उत्तम मन्त्रियोंमें श्रेष्ठ धर्मबुद्धि निशाचर कुम्भाण्डने बाणासुरसे कहा।

कुम्भाण्ड बोला—देव! थोड़ा विचार तो कीजिये। मेरी समझसे तो यह कर्म करना उचित नहीं प्रतीत होता; क्योंकि इसके मारे जानेपर अपना आत्मा ही आहत हो जायगा। पराक्रममें तो यह विष्णुके समान दीख रहा है। जान पड़ता है, आपपर कुपित होकर चन्द्रचूडने अपने उत्तम तेजसे इसे बढ़ा दिया है। साहसमें यह शशिमौलिकी समानता कर रहा है; क्योंकि इस अवस्थाको पहुँच जानेपर भी यह पुरुषार्थपर ही डटा हुआ है। यह ऐसा बली है कि यद्यपि नाग इसे बलपूर्वक डँस रहे हैं, तथापि यह हमलोगोंको तृणवत् ही समझ रहा है।

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी! दानव कुम्भाण्ड राजनीतिके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ था। वह बाणसे ऐसा कहकर फिर अनिरुद्धसे कहने लगा।

कुम्भाण्डने कहा—'नराधम! अब तू वीरवर दैत्यराजकी स्तुति कर और दीन वाणीसे 'मैं हार गया' यों बारंबार कहकर उन्हें हाथ जोड़कर नमस्कार कर। ऐसा करनेपर ही तू मुक्त हो सकता है, अन्यथा तुझे बन्धन आदिका कष्ट भोगना पड़ेगा।' उसकी बात सुनकर अनिरुद्ध उत्तर देते हुए बोले।

अनिरुद्धने कहा—दुराचारी निशाचर! तुझे क्षत्रिय-धर्मका ज्ञान नहीं है। अरे! शूरवीरके लिये दीनता दिखाना और युद्धसे मुख मोड़कर भागना मरणसे भी बढ़कर कष्टदायक होता है। मेरे विचारसे तो विरुद्धाचरण कण्टिकी तरह चुभनेवाला होता है। वीरमानी क्षत्रियके लिये रणभूमिमें सदा सम्मुख लड़ते हुए मरना ही श्रेयस्कर है, भूमिपर पड़कर हाथ जोड़े हुए दीनकी तरह मरना कदापि नहीं *।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! इस

---

* क्षत्रियस्य रणे श्रेयो मरणं सम्मुखे सदा। न वीरमानिनी भूमौ दीनस्येव कृताञ्जलेः॥
(शि० पु० रु० सं० युद्धखण्ड ५३। ३५)

प्रकार अनिरुद्धने बहुत-सी वीरताकी बातें कहीं, जिन्हें सुनकर बाणासुरको महान् विस्मय हुआ और उसे क्रोध भी आया। उसी समय समस्त वीरोंके, अनिरुद्धके और मन्त्री कुम्भाण्डके सुनते-सुनते बाणासुरके आश्वासनार्थ आकाशवाणी हुई।

आकाशवाणीने कहा—महाबली बाण! तुम बलिके पुत्र हो, अतः थोड़ा विचार तो करो। परम बुद्धिमान् शिवभक्त! तुम्हारे लिये क्रोध करना उचित नहीं है। शिव समस्त प्राणियोंके ईश्वर, कर्मोंके साक्षी और परमेश्वर हैं। यह सारा चराचर जगत् उन्हींके अधीन है। वे ही सदा रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुणका आश्रय लेकर ब्रह्मा, विष्णु और रुद्ररूपसे लोकोंकी सृष्टि, भरण-पोषण और संहार करते हैं। वे सर्वान्तर्यामी, सर्वेश्वर, सबके प्रेरक, सर्वश्रेष्ठ, विकाररहित, अविनाशी, नित्य और मायाधीश होनेपर भी निर्गुण हैं। बलिके श्रेष्ठ पुत्र! उनकी इच्छासे निर्बलको भी बलवान् समझना चाहिये। महामते! मनमें यों विचारकर स्वस्थ हो जाओ। नाना प्रकारकी लीलाओंके रचनेमें निपुण भक्तवत्सल भगवान् शंकर गर्वको मिटा देनेवाले हैं। वे इस समय तुम्हारे गर्वको चूर कर देंगे।

सनत्कुमारजी कहते हैं—महामुने! इतना कहकर आकाशवाणी बंद हो गयी। तब उसके वचनको मानकर बाणासुरने अनिरुद्धका वध करनेका विचार छोड़ दिया। तदनन्तर विषैले नागोंके पाशसे बँधे हुए अनिरुद्ध उसी क्षण दुर्गाका स्मरण करने लगे।

अनिरुद्धने कहा—शरणागतवत्सले! आप यश प्रदान करनेवाली हैं, आपका रोष बड़ा उग्र होता है। देवि! मैं नागपाशसे बँधा हुआ हूँ और नागोंकी विषज्वालासे संतप्त हो रहा हूँ; अतः शीघ्र पधारिये और मेरी रक्षा कीजिये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनीश्वर! जब अनिरुद्धने पिसे हुए काले कोयलेके समान कृष्णवर्णवाली कालीको इस प्रकार संतुष्ट किया, तब ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशीकी महारात्रिमें वहाँ प्रकट हुईं। उन्होंने उन सर्परूपी भयानक बाणोंको भस्मसात् करके अपने बलिष्ठ मुक्कोंके आघातसे उस नाग-पञ्जरको विदीर्ण कर दिया। इस प्रकार दुर्गाने अनिरुद्धको बन्धनमुक्त करके उन्हें पुनः अन्तःपुरमें पहुँचा दिया और स्वयं वहीं अन्तर्धान हो गयीं। इस प्रकार शिवकी शक्तिस्वरूपा देवीकी कृपासे अनिरुद्ध कष्टसे छूट गये, उनकी सारी व्यथा मिट गयी और वे सुखी हो गये। तदनन्तर प्रद्युम्ननन्दन अनिरुद्ध शिवशक्तिके प्रतापसे विजयी हो अपनी प्रिया बाणतनयाको पाकर परम हर्षित हुए और अपनी प्रियतमा उस ऊषाके साथ पूर्ववत् सुखपूर्वक विहार करने लगे। इधर पौत्र अनिरुद्धके अदृश्य हो जाने तथा नारदजीके मुखसे उसके बाणासुरके द्वारा नागपाशसे बाँधे जानेका समाचार सुनकर बारह अक्षौहिणी सेनाके साथ प्रद्युम्न आदि वीरोंको साथ ले भगवान् श्रीकृष्णने शोणितपुरपर चढ़ाई कर दी। उधर भगवान् श्रीरुद्र भी अपने भक्तके पक्षमें सज-धजकर आ डटे। फिर तो श्रीकृष्ण और श्रीशिवका बड़ा भयानक युद्ध हुआ। दोनों ओरसे ज्वर छोड़े गये। अन्तमें श्रीकृष्णने स्वयं श्रीरुद्रके पास आकर उनका स्तवन करके कहा—

'सर्वव्यापी शंकर ! आप गुणोंसे निर्लिप्त होकर भी गुणोंसे ही गुणोंको प्रकाशित करते हैं। गिरिशायी भूमन्! आप स्वप्रकाश हैं। जिनकी बुद्धि आपकी मायासे मोहित हो गयी है, वे स्त्री, पुत्र, गृह आदि विषयोंमें आसक्त होकर दुःखसागरमें डूबते-उतराते हैं। जो अजितेन्द्रिय पुरुष प्रारब्धवश इस मनुष्य-जन्मको पाकर भी आपके चरणोंमें प्रेम नहीं करता, वह शोचनीय तथा आत्मवञ्चक है। भगवन्! आप गर्वहारी हैं, आपने ही तो इस गर्वीले बाणको शाप दिया था; अतः आपकी ही आज्ञासे मैं बाणासुरकी भुजाओंका छेदन करनेके लिये यहाँ आया हूँ। इसलिये महादेव! आप इस युद्धसे निवृत्त हो जाइये। प्रभो! मुझे बाणकी भुजाओंको काटनेके लिये आज्ञा प्रदान कीजिये, जिससे आपका शाप व्यर्थ न हो।'

महेश्वरने कहा—तात! आपने ठीक ही कहा है कि मैंने ही इस दैत्यराजको शाप दिया है और मेरी ही आज्ञासे आप बाणासुरकी भुजाएँ काटनेके लिये यहाँ पधारे हैं; किन्तु रमानाथ! हरे! क्या करूँ, मैं तो सदा भक्तोंके ही अधीन रहता हूँ। ऐसी दशामें वीर! मेरे देखते बाणकी भुजाएँ कैसे काटी जा सकती हैं? इसलिये मेरी आज्ञासे आप पहले जृम्भणास्त्रद्वारा मुझे जृम्भित कर दीजिये, तत्पश्चात् अपना अभीष्ट कार्य सम्पन्न कीजिये और सुखी होइये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनीश्वर! शंकरजीके यों कहनेपर शार्ङ्गपाणि श्रीहरिको महान् विस्मय हुआ। वे अपने युद्ध-स्थानपर आकर परम आनन्दित हुए। व्यासजी! तदनन्तर नाना प्रकारके अस्त्रोंके संचालनमें निपुण श्रीहरिने तुरंत ही अपने धनुषपर जृम्भणास्त्रका संधान करके उसे पिनाक-पाणि शंकरपर छोड़ दिया। इस प्रकार श्रीकृष्ण जृम्भणास्त्रद्वारा जृम्भित हुए शंकरको मोहमें डालकर खड्ग, गदा और ऋष्टि आदिसे बाणकी सेनाका संहार करने लगे।

(अध्याय ५१—५४)

☆

श्रीकृष्णद्वारा बाणकी भुजाओंका काटा जाना, सिर काटनेके लिये उद्यत हुए श्रीकृष्णको शिवका रोकना और उन्हें समझाना, श्रीकृष्णका परिवारसमेत द्वारकाको लौट जाना, बाणका ताण्डव नृत्यद्वारा शिवको प्रसन्न करना, शिवद्वारा उसे अन्यान्य वरदानोंके साथ महाकालत्वकी प्राप्ति

सनत्कुमारजी कहते हैं—महाप्राज्ञ व्यासजी! लोकलीलाका अनुसरण करनेवाले श्रीकृष्ण और शंकरकी उस परम अद्भुत कथाको श्रवण करो। तात! जब भगवान् रुद्र लीलावश पुत्रों तथा गणोंसहित सो गये, तब दैत्यराज बाण श्रीकृष्णके साथ युद्ध करनेके लिये प्रस्थित हुआ। उस समय कुम्भाण्ड उसके अश्वोंकी बागडोर सँभाले हुए था और वह नाना प्रकारके शस्त्रास्त्रोंसे सज्जित था। फिर वह महाबली बलिपुत्र

भीषण युद्ध करने लगा। इस प्रकार उन दोनोंमें चिरकालतक बड़ा घोर संग्राम होता रहा; क्योंकि विष्णुके अवतार श्रीकृष्ण शिवस्वरूप ही थे और उधर बलवान् बाणासुर उत्तम शिवभक्त था। मुनीश्वर! तदनन्तर वीर्यवान् श्रीकृष्ण, जिन्हें शिवकी आज्ञासे बल प्राप्त हो चुका था, चिरकालतक बाणके साथ यों युद्ध करके अत्यन्त कुपित हो उठे। तब शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने शम्भुके आदेशसे शीघ्र ही सुदर्शन चक्रद्वारा बाणकी बहुत-सी भुजाओंको काट डाला। अन्तमें उसकी अत्यन्त सुन्दर चार भुजाएँ ही अवशेष रह गयीं और शंकरकी कृपासे शीघ्र ही उसकी व्यथा भी मिट गयी। जब बाणकी स्मृति लुप्त हो गयी और वीरभावको प्राप्त हुए श्रीकृष्ण उसका सिर काट लेनेके लिये उद्यत हुए, तब शंकरजी मोहनिद्राको त्यागकर उठ खड़े हुए और बोले।

रुद्रने कहा—देवकीनन्दन! आप तो सदासे मेरी आज्ञाका पालन करते आये हैं। भगवन्! मैंने पहले आपको जिस कामके लिये आज्ञा दी थी, वह तो आपने पूरा कर दिया। अब बाणका शिरश्छेदन मत कीजिये और सुदर्शन चक्रको लौटा लीजिये। मेरी आज्ञासे यह चक्र सदा मेरे भक्तोंपर अमोघ रहा है। गोविन्द! मैंने पहले ही आपको युद्धमें अनिवार्य चक्र और जय प्रदान की थी, अब आप इस युद्धसे निवृत्त हो जाइये। लक्ष्मीश! पूर्वकालमें भी तो आपने मेरी आज्ञाके बिना दधीच, वीरवर रावण और तारकाक्ष आदिके पुरोंपर चक्रका प्रयोग नहीं किया था। जनार्दन! आप तो योगीश्वर, साक्षात् परमात्मा और सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें रत रहनेवाले हैं। आप स्वयं ही अपने मनसे विचार कीजिये। मैंने इसे वर दे रखा है कि तुझे मृत्युका भय नहीं होगा। मेरा वह वचन सदा सत्य होना चाहिये। मैं आपपर परम प्रसन्न हूँ। हरे! बहुत दिन पूर्व यह गर्वसे भरकर उन्मत्त हो उठा और अपने-आपको भूल गया था। तब अपनी भुजाएँ खुजलाता हुआ यह मेरे पास पहुँचा और बोला—'मेरे साथ युद्ध कीजिये।' तब मैंने इसे शाप देते हुए कहा—'थोड़े ही समयमें तेरी भुजाओंका छेदन करनेवाला आयेगा। तब तेरा सारा गर्व गल जायगा।' (बाणकी ओर देखकर) कहा—'मेरी ही आज्ञासे तेरी भुजाओंको काटनेवाले ये श्रीहरि आये हैं।' (फिर श्रीकृष्णसे) 'अब आप युद्ध बंद कर दीजिये और वर-वधूको साथ ले अपने

घरको लौट जाइये।' यों कहकर महेश्वरने उन दोनोंमें मित्रता करा दी और उनकी आज्ञा ले वे पुत्रों और गणोंके साथ अपने निवासस्थानको चले गये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! शम्भुका कथन सुनकर अक्षत शरीरवाले

श्रीकृष्णने सुदर्शनको लौटा लिया और विजयश्रीसे सुशोभित हो वे बाणासुरके अन्तःपुरमें पधारे। वहाँ उन्होंने ऊषासहित अनिरुद्धको आश्वासन दिया और बाणद्वारा दिये गये अनेक प्रकारके रत्नसमूहोंको ग्रहण किया। ऊषाकी सखी परम योगिनी चित्रलेखाको पाकर तो श्रीकृष्णको महान् हर्ष हुआ। इस प्रकार शिवके आदेशानुसार जब उनका सारा कार्य पूर्ण हो गया, तब वे श्रीहरि हृदयसे शंकरको प्रणाम कर और बलिपुत्र बाणासुरकी आज्ञा ले परिवारसमेत अपनी पुरीको लौट गये। द्वारकामें पहुँचकर उन्होंने गरुडको विदा कर दिया। फिर हर्षपूर्वक मित्रोंसे मिले और स्वेच्छानुसार आचरण करने लगे।

इधर नन्दीश्वरने बाणासुरको समझाकर यह कहा—'भक्तशार्दूल! तुम बारंबार शिवजीका स्मरण करो। वे भक्तोंपर अनुकम्पा करनेवाले हैं, अतः उन आदिगुरु शंकरमें मन समाहित करके नित्य उनका महोत्सव करो।' तब द्वेषरहित हुआ महामनस्वी बाण नन्दीके कहनेसे धैर्य धारण करके तुरंत ही शिवस्थानको गया। वहाँ पहुँचकर उसने नाना प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा शिवजीकी स्तुति की और उन्हें प्रणाम किया। फिर वह पादोंसे तुमकी लगाते हुए और हाथोंको घुमाते हुए नाना प्रकारके आलीढ और प्रत्यालीढ आदि प्रमुख स्थानकोंद्वारा सुशोभित नृत्योंमें प्रधान ताण्डवनृत्य करने लगा। उस समय वह हजारों प्रकारसे मुखद्वारा बाजा बजा रहा था और बीच-बीचमें भौंहोंको मटकाकर तथा सिरको कँपाकर सहस्रों प्रकारके भाव भी प्रकट करता जाता था। इस प्रकार नृत्यमें मस्त हुए महाभक्त बाणासुरने महान् नृत्य करके नतमस्तक हो त्रिशूलधारी चन्द्रशेखर भगवान् रुद्रको प्रसन्न कर लिया। तब नाच-गानके प्रेमी भक्तवत्सल भगवान् हर हर्षित होकर बाणसे बोले।

रुद्रने कहा—बलिपुत्र प्यारे बाण! तेरे नृत्यसे मैं संतुष्ट हो गया हूँ, अतः दैत्येन्द्र! तेरे मनमें जो अभिलाषा हो, उसके अनुरूप वर माँग ले।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! शम्भुकी बात सुनकर दैत्यराज बाणने इस प्रकार वर माँगा—'मेरे घाव भर जायँ, बाहुयुद्धकी क्षमता बनी रहे, मुझे अक्षय गणनायकत्व प्राप्त हो, शोणितपुरमें ऊषापुत्र अर्थात् मेरे दौहित्रका राज्य हो, देवताओंसे तथा विशेष करके विष्णुसे मेरा वैरभाव मिट जाय, मुझमें रजोगुण और तमोगुणसे युक्त दूषित दैत्यभावका पुनः उदय न हो, मुझमें सदा निर्विकार शम्भु-भक्ति बनी रहे और शिव-भक्तोंपर मेरा स्नेह और समस्त प्राणियोंपर दयाभाव रहे।' यों शम्भुसे वरदान माँगकर बलिपुत्र महासुर बाण अञ्जलि बाँधे रुद्रकी स्तुति करने लगा। उस समय उसके नेत्रोंमें प्रेमके आँसू छलक आये थे। तदनन्तर जिसके सारे अङ्ग प्रेमसे प्रफुल्लित हो उठे थे, वह बलिनन्दन बाणासुर महेश्वरको प्रणाम करके मौन हो गया। अपने भक्त बाणकी प्रार्थना सुनकर भगवान् शंकर 'तुझे सब कुछ प्राप्त हो जायगा' यों कहकर वहीं अन्तर्धान हो गये।

तब शम्भुकी कृपासे महाकालत्वको प्राप्त हुआ रुद्रका अनुचर बाण परमानन्दमें निमग्न हो गया। व्यासजी ! इस प्रकार मैंने सम्पूर्ण भुवनोंमें नित्य क्रीडा करनेवाले समस्त गुरुजनोंके भी सद्गुरु शूलपाणि भगवान् शंकरका बाणविषयक चरित, जो परमोत्तम है, कर्णप्रिय मधुर वचनोंद्वारा तुमसे वर्णन कर दिया। (अध्याय ५५-५६)

☆

गजासुरकी तपस्या, वर-प्राप्ति और उसका अत्याचार, शिवद्वारा उसका वध, उसकी प्रार्थनासे शिवका उसका चर्म धारण करना और 'कृत्तिवासा' नामसे विख्यात होना तथा कृत्तिवासेश्वर-लिङ्गकी स्थापना करना

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी ! अब परम प्रेमपूर्वक शशिमौलि शिवके उस चरित्रको श्रवण करो, जिसमें उन्होंने त्रिशूलद्वारा दानवराज गजासुरका वध किया था। गजासुर महिषासुरका पुत्र था। जब उसने सुना कि देवताओंसे प्रेरित होकर देवीने मेरे पिताको मार दिया था, तब उसका बदला लेनेकी भावनासे उसने घोर तप किया। उसके तपकी ज्वालासे सब जलने लगे। देवताओंने जाकर ब्रह्माजीसे अपना दुःख कहा, तब ब्रह्माजीने उसके सामने प्रकट होकर उसके प्रार्थनानुसार उसे वरदान दे दिया कि वह कामके वश होनेवाले किसी भी स्त्री या पुरुषसे नहीं मरेगा, महाबली और सबसे अजेय होगा।

वर पाकर वह गर्वमें भर गया। सब दिशाओं तथा सब लोकपालोंके स्थानोंपर उसने अधिकार कर लिया। अन्तमें भगवान् शंकरकी राजधानी आनन्दवन काशीमें जाकर वह सबको सताने लगा। देवताओंने भगवान् शंकरसे प्रार्थना की। शंकर कामविजयी हैं ही। उन्होंने घोर युद्धमें उसे हराकर त्रिशूलमें पिरो लिया। तब उसने भगवान् शंकरका स्तवन किया। शंकरने उसपर प्रसन्न होकर इच्छित वर माँगनेको कहा।

तब गजासुरने कहा—दिगम्बरस्वरूप महेशान ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो अपने त्रिशूलकी अग्निसे पवित्र हुए मेरे इस चर्मको आप सदा धारण किये रहें। विभो ! मैं पुण्य गन्धोंकी निधि हूँ, इसीलिये मेरा यह चर्म चिरकालतक उग्र तपरूपी अग्निकी ज्वालामें पड़कर भी दग्ध नहीं हुआ है। दिगम्बर ! यदि मेरा यह चर्म पुण्यवान् न होता तो रणाङ्गणमें इसे आपके अङ्गोंका सङ्ग कैसे प्राप्त होता। शंकर ! यदि आप तुष्ट हैं तो मुझे एक दूसरा वर और दीजिये। (वह यह कि) आजसे आपका नाम 'कृत्तिवासा' विख्यात हो जाय।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने ! गजासुरकी बात सुनकर भक्तवत्सल शंकरने परम प्रसन्नतापूर्वक महिषासुरनन्दन गजसे कहा—'तथास्तु'—अच्छा, ऐसा ही होगा। तदनन्तर प्रसन्नात्मा भक्तप्रिय महेशान उस दानवराज गजसे, जिसका मन भक्तिके कारण निर्मल हो गया था, पुनः बोले।

ईश्वरने कहा—दानवराज ! तेरा यह पावन शरीर मेरे इस मुक्तिसाधक क्षेत्र

काशीमें मेरे लिङ्गके रूपमें स्थित हो जाय ! इसका नाम कृत्तिवासेश्वर होगा ! यह समस्त प्राणियोंके लिये मुक्तिदाता, महान् पातकोंका विनाशक, सम्पूर्ण लिङ्गोंमें शिरोमणि और मोक्षप्रद होगा। यों कहकर देवेश्वर दिगम्बर शिवने गजासुरके उस विशाल चर्मको लेकर ओढ़ लिया। मुनीश्वर ! उस दिन बहुत बड़ा उत्सव मनाया गया। काशीनिवासी सारी जनता तथा प्रमथगण हर्षमग्न हो गये। विष्णु और ब्रह्मा आदि देवताओंका मन हर्षसे परिपूर्ण हो गया। वे हाथ जोड़कर महेश्वरको नमस्कार करके उनकी स्तुति करने लगे।

(अध्याय ५७)

☆

दुन्दुभिनिर्ह्राद नामक दैत्यका व्याघ्ररूपसे शिवभक्तपर आक्रमण करनेका विचार और शिवद्वारा उसका वध

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी ! अब मैं चन्द्रमौलिके उस चरित्रका वर्णन करूँगा, जिसमें शंकरजीने दुन्दुभिनिर्ह्राद नामक दैत्यको मारा था। तुम सावधान होकर श्रवण करो। दितिपुत्र महाबली हिरण्याक्षके विष्णुद्वारा मारे जानेपर दितिको बहुत दुःख हुआ। तब देवशत्रु दुन्दुभिनिर्ह्रादने उसको आश्वासन देकर यह निश्चय किया कि 'देवताओंके बल ब्राह्मण हैं। ब्राह्मण नष्ट हो जायँगे तो यज्ञ नहीं होंगे, यज्ञ न होनेपर देवता आहार न पानेसे निर्बल हो जायँगे। तब मैं उनपर सहज ही विजय पा लूँगा।' यों विचारकर वह ब्राह्मणोंको मारने लगा। ब्राह्मणोंका प्रधान स्थान वाराणसी है, यह सोचकर वह काशी पहुँचा और वनमें वनचर बनकर समिधा लेते हुए, जलमें जलचर बनकर स्नान करते हुए और रातमें व्याघ्र बनकर सोते हुए ब्राह्मणोंको खाने लगा।

एक बार शिवरात्रिके अवसरपर एक भक्त अपनी पर्णशालामें देवाधिदेव शंकरका पूजन करके ध्यानस्थ बैठा था। बलाभिमानी दैत्यराज दुन्दुभिनिर्ह्रादने व्याघ्रका रूप धारण करके उसे खा जानेका विचार किया; परंतु वह भक्त दृढ़चित्तसे शिवदर्शनकी लालसा लेकर ध्यानमें तल्लीन हो रहा था, इसके लिये उसने पहलेसे ही मन्त्ररूपी अस्त्रका विन्यास कर लिया था। इस कारण वह दैत्य उसपर आक्रमण करनेमें समर्थ न हो सका। इधर सर्वव्यापी भगवान् शम्भुको उस दुष्ट रूपवाले दैत्यके अभिप्रायका पता लग गया। तब शंकरने उसे मार डालनेका विचार किया। इतनेमें, ज्यों ही उस दैत्यने व्याघ्ररूपसे उस भक्तको अपना ग्रास बनाना चाहा, त्यों ही जगत्की रक्षाके लिये मणिस्वरूप तथा भक्तरक्षणमें कुशल बुद्धिवाले त्रिलोचन भगवान् शंकर वहाँ प्रकट हो गये और उसे बगलमें दबोचकर उसके सिरपर वज्रसे भी कठोर घूँसेसे प्रहार किया। उस मुष्टि-प्रहारसे तथा काँखमें दबोचनेसे वह व्याघ्र अत्यन्त व्यथित हो गया और अपनी दहाड़से पृथ्वी तथा आकाशको कँपाता हुआ मृत्युका ग्रास बन गया। उस भयंकर शब्दको सुनकर तपस्वियोंका हृदय काँप उठा। वे रातमें ही उस शब्दका अनुसरण करते हुए उस

स्थानपर आ पहुँचे। वहाँ परमेश्वर शिवको बगलमें उस पापीको दबाये हुए देखकर सब लोग उनके चरणोंमें पड़ गये और जय-जयकार करते हुए उनकी स्तुति करने लगे।

तदनन्तर महेश्वरने कहा—जो मनुष्य यहाँ आकर श्रद्धापूर्वक मेरे इस रूपका दर्शन करेगा, निस्संदेह मैं उसके सारे उपद्रवोंको नष्ट कर दूँगा। जो मानव मेरे इस चरित्रको सुनकर और हृदयमें मेरे इस लिङ्गका स्मरण करके संग्राममें प्रवेश करेगा, उसे अवश्य विजयकी प्राप्ति होगी।

मुने! जो मनुष्य व्याघ्रेश्वरके प्राकट्यसे सम्बन्ध रखनेवाले इस परमोत्तम चरित्रको सुनेगा अथवा दूसरेको सुनायेगा, पढ़ेगा या पढ़ायेगा, वह अपनी समस्त मनोवाञ्छित वस्तुओंको प्राप्त कर लेगा और अन्तमें सम्पूर्ण दुःखोंसे रहित होकर मोक्षका भागी होगा। शिवलीलासम्बन्धी अमृतमय अक्षरोंसे परिपूर्ण यह अनुपम आख्यान स्वर्ग, यश और आयुका देनेवाला तथा पुत्र-पौत्रकी वृद्धि करनेवाला है।

(अध्याय ५८)

☆

विदल और उत्पल नामक दैत्योंका पार्वतीपर मोहित होना और पार्वतीका कन्दुक-प्रहारद्वारा उनका काम तमाम करना, कन्दुकेश्वरकी स्थापना और उनकी महिमा

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी! जिस प्रकार परमेश्वर शिवने संकेतसे दैत्यको लक्ष्य कराकर अपनी प्रियाद्वारा उसका वध कराया था, उनके उस चरित्रको तुम परम प्रेमपूर्वक श्रवण करो। विदल और उत्पल नामक दो महादैत्य थे। उन्होंने ब्रह्माजीसे किसी पुरुषके हाथसे न मरनेका वर प्राप्त करके सब देवताओंको जीत लिया था। तब देवताओंने ब्रह्माजीके पास जाकर अपना दुःख सुनाया। उनकी कष्ट-कहानी सुनकर ब्रह्माने उनसे कहा—'तुमलोग शिवासहित शिवका आदरपूर्वक स्मरण करके धैर्य धारण करो। वे दोनों दैत्य निश्चय ही देवीके हाथों मारे जायँगे। शिवासहित शिव परमेश्वर, कल्याणकर्ता और भक्तवत्सल हैं। वे शीघ्र ही तुमलोगोंका कल्याण करेंगे।'

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! देवोंसे यों कहकर ब्रह्माजी शिवका स्मरण करते हुए मौन हो गये। तब देवगण भी आनन्दित होकर अपने-अपने धामको लौट गये। एक समय नारदजीके द्वारा पार्वतीके सौन्दर्यकी प्रशंसा सुनकर वे दोनों दैत्य उनका अपहरण करनेकी बात सोचने लगे और पार्वतीजी जहाँ गेंद उछाल रही थीं, वहीं वे जाकर आकाशमें विचरने लगे। वे दोनों घोर दुराचारी थे। उनका मन अत्यन्त चञ्चल हो रहा था। वे गणोंका रूप धारण करके अम्बिकाके निकट आये। तब दुष्टोंका संहार करनेवाले शिवने अवहेलनापूर्वक उनकी ओर देखकर उनके नेत्रोंसे प्रकट हुई चञ्चलताके कारण तुरंत उन्हें पहचान लिया। फिर तो सर्वस्वरूपी महादेवने दुर्गतिनाशिनी दुर्गाको कटाक्षद्वारा सूचित कर दिया कि ये दोनों दैत्य हैं, गण नहीं। तात! तब पार्वती

अपने स्वामी महाकौतुकी परमेश्वर शंकरके उस नेत्रसंकेतको समझ गयीं। तदनन्तर सर्वज्ञ शिवकी अर्धाङ्गिनी पार्वतीने उस संकेतको समझकर उसी गेंदसे एक साथ ही उन दोनोंपर चोट की। तब महादेवीकी गेंदसे आहत होकर वे दोनों महाबली दुष्ट दैत्य चक्कर काटते हुए उसी प्रकार भूतलपर गिर पड़े, जैसे वायुके झोंकेसे चञ्चल होकर दो पके हुए ताड़के फल अपनी डंठलसे टूटकर गिर पड़ते हैं अथवा जैसे वज्रके आघातसे महागिरिके दो शिखर कट जाते हैं। इस प्रकार अकार्य करनेके लिये उद्यत उन दोनों महादैत्योंको धराशायी करके वह गेंद लिङ्गरूपमें परिणत हो गया। समस्त दुष्टोंका निवारण करनेवाला वह लिङ्ग कन्दुकेश्वरके नामसे विख्यात हुआ और ज्येष्ठेश्वरके समीप स्थित हो गया। काशीमें स्थित कन्दुकेश्वर-लिङ्ग दुष्टोंका विनाशक, भोग-मोक्षका प्रदाता और सर्वदा सत्पुरुषोंकी समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। जो मनुष्य इस अनुपम आख्यानको हर्षपूर्वक सुनता, सुनाता अथवा पढ़ता है, उसे भयका दुःख कहाँ। वह इस लोकमें नाना प्रकारके सम्पूर्ण उत्तमोत्तम सुखोंको भोगकर अन्तमें देवदुर्लभ दिव्य गतिको प्राप्त कर लेता है।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुनिसत्तम! मैंने तुमसे रुद्रसंहिताके अन्तर्गत इस युद्धखण्डका वर्णन कर दिया। यह खण्ड सम्पूर्ण मनोरथोंका फल प्रदान करनेवाला है। इस प्रकार मैंने पूरी-की-पूरी रुद्रसंहिताका वर्णन कर दिया। यह शिवजीको सदा परम प्रिय है और भुक्ति-मुक्तिरूप फल प्रदान करनेवाली है।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार शिवानुगामी ब्रह्मपुत्र नारद शंकरके उत्तम यशको तथा शिव-शतनामको सुनकर कृतार्थ हो गये। यों मैंने सम्पूर्ण चरित्रोंमें प्रधान तथा कल्याणकारक यह ब्रह्मा और नारदका संवाद पूर्णरूपसे कह दिया, अब तुम्हारी और क्या सुननेकी इच्छा है?

(अध्याय ५९)

☆

॥ रुद्रसंहिताका युद्धखण्ड सम्पूर्ण ॥

☆

॥ रुद्रसंहिता समाप्त ॥

☆

शतरुद्रसंहिता

शिवजीके सद्योजात, वामदेव, तत्पुरुष, अघोर और ईशान नामक पाँच अवतारोंका वर्णन

वन्दे महानन्दमनन्तलीलं महेश्वरं सर्वविभुं महान्तम्।
गौरीप्रियं कार्तिकविघ्नराजसमुद्भवं शंकरमादिदेवम्॥

जो परमानन्दमय हैं, जिनकी लीलाएँ अनन्त हैं, जो ईश्वरोंके भी ईश्वर, सर्वव्यापक, महान्, गौरीके प्रियतम तथा स्वामिकार्तिक और विघ्नराज गणेशको उत्पन्न करनेवाले हैं, उन आदिदेव शंकरकी मैं वन्दना करता हूँ।

शौनकजीने कहा—महाभाग सूतजी! आप तो (पुराणकर्ता) व्यासजीके शिष्य तथा ज्ञान और दयाकी निधि हैं, अतः अब आप शम्भुके उन अवतारोंका वर्णन कीजिये, जिनके द्वारा उन्होंने सत्पुरुषोंका कल्याण किया है।

सूतजी बोले—शौनकजी! आप तो मननशील व्यक्ति हैं, अतः अब मैं आपसे शिवजीके उन अवतारोंका वर्णन करता हूँ, आप अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके सद्भक्तिपूर्वक मन लगाकर श्रवण कीजिये। मुने! पूर्वकालमें सनत्कुमारजीने नन्दीश्वरसे, जो सत्पुरुषोंकी गति तथा शिवस्वरूप ही हैं, यही प्रश्न किया था; उस समय नन्दीश्वरने शिवजीका स्मरण करते हुए उन्हें यों उत्तर दिया था।

नन्दीश्वरने कहा—मुने! यों तो सर्वव्यापी सर्वेश्वर शिवके कल्प-कल्पान्तरोंमें असंख्य अवतार हुए हैं, तथापि इस समय मैं अपनी बुद्धिके अनुसार उनमेंसे कुछका वर्णन करता हूँ। उन्नीसवाँ कल्प, जो श्वेतलोहित नामसे विख्यात है, उसमें शिवजीका 'सद्योजात' नामक अवतार हुआ था। वह उनका प्रथम अवतार कहलाता है। उस कल्पमें जब ब्रह्मा परब्रह्मका ध्यान कर रहे थे, उसी समय एक श्वेत और लोहित वर्णवाला शिखाधारी कुमार उत्पन्न हुआ। उसे देखकर ब्रह्माने मन-ही-मन विचार किया। जब उन्हें यह ज्ञात हो गया कि यह पुरुष ब्रह्मरूपी परमेश्वर है, तब उन्होंने अञ्जलि बाँधकर उसकी वन्दना की। फिर जब भुवनेश्वर ब्रह्माको पता लग गया कि यह सद्योजात कुमार शिव ही हैं, तब उन्हें महान् हर्ष हुआ। वे अपनी सद्बुद्धिसे बारंबार उस परब्रह्मका चिन्तन करने लगे। ब्रह्माजी ध्यान कर ही रहे थे कि वहाँ श्वेत वर्णवाले चार यशस्वी कुमार प्रकट हुए। वे परमोत्कृष्ट ज्ञानसम्पन्न तथा परब्रह्मके स्वरूप थे। उनके नाम थे—सुनन्द, नन्दन, विश्वनन्द और उपनन्दन। ये सब-के-सब महात्मा थे और ब्रह्माजीके शिष्य हुए। इनसे वह ब्रह्मलोक व्याप्त हो गया। तदनन्तर सद्योजातरूपसे प्रकट हुए परमेश्वर शिवने परम प्रसन्न होकर ब्रह्माको ज्ञान तथा सृष्टिरचनाकी शक्ति प्रदान की। (यह सद्योजात नामक पहला अवतार हुआ।)

तदनन्तर 'रक्त' नामसे प्रसिद्ध बीसवाँ कल्प आया। उस कल्पमें ब्रह्माजीने रक्तवर्णका शरीर धारण किया था। जिस समय ब्रह्माजी पुत्रकी कामनासे ध्यान कर रहे थे, उसी समय उनसे एक पुत्र प्रकट हुआ। उसके शरीरपर लाल रंगकी माला और लाल ही वस्त्र शोभा पा रहे थे। उसके नेत्र भी लाल थे और वह आभूषण भी लाल

रंगका ही धारण किये हुए था। उस महान् आत्मबलसे सम्पन्न कुमारको देखकर ब्रह्माजी ध्यानस्थ हो गये। जब उन्हें ज्ञात हो गया कि ये वामदेव शिव हैं, तब उन्होंने हाथ जोड़कर उस कुमारको प्रणाम किया। तत्पश्चात् उनके विरजा, विवाह, विशोक और विश्वभावन नामके चार पुत्र उत्पन्न हुए, जो सभी लाल वस्त्र धारण किये हुए थे। तब वामदेव-रूपधारी परमेश्वर शम्भुने परम प्रसन्न होकर ब्रह्माको ज्ञान तथा सृष्टिरचनाकी शक्ति प्रदान की। (यह 'वामदेव' नामक दूसरा अवतार हुआ।)

इसके बाद इक्कीसवाँ कल्प आया, जो 'पीतवासा' नामसे कहा जाता था। उस कल्पमें महाभाग ब्रह्मा पीतवस्त्रधारी हुए। जब वे पुत्रकी कामनासे ध्यान कर रहे थे, उस समय उनसे एक महातेजस्वी कुमार उत्पन्न हुआ। उस प्रौढ़ कुमारकी भुजाएँ विशाल थीं और उसके शरीरपर पीताम्बर झलमला रहा था। उस ध्यानमग्न बालकको देखकर ब्रह्माजीने अपनी बुद्धिके बलसे उसे 'तत्पुरुष' शिव समझा। तब उन्होंने ध्यानयुक्त चित्तसे सम्पूर्ण लोकोंद्वारा नमस्कृत महादेवी शांकरी गायत्री (तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि) का जप करके उन्हें नमस्कार किया, इससे महादेवजी प्रसन्न हो गये। तत्पश्चात् उनके पार्श्वभागसे पीतवस्त्रधारी दिव्यकुमार प्रकट हुए, वे सब-के-सब योगमार्गके प्रवर्तक हुए। (यह 'तत्पुरुष' नामक तीसरा अवतार हुआ।)

तत्पश्चात् स्वयम्भू ब्रह्माके उस पीतवर्ण नामक कल्पके बीत जानेपर पुनः दूसरा कल्प प्रवृत्त हुआ। उसका नाम 'शिव' था। जब एकार्णवकी दशामें एक सहस्र दिव्य वर्ष व्यतीत हो गये, तब ब्रह्माजी प्रजाओंकी सृष्टि करनेकी इच्छासे दुःखी हो विचार करने लगे। उस समय उन महातेजस्वी ब्रह्माके समक्ष एक कुमार उत्पन्न हुआ। उस महापराक्रमी बालकके शरीरका रंग काला था। वह अपने तेजसे उद्दीप्त हो रहा था तथा काला वस्त्र, काली पगड़ी और काला यज्ञोपवीत धारण किये हुए था। उसका मुकुट भी काला था और स्नानके पश्चात् अनुलेपन—चन्दन भी काले रंगका ही था। उन भयंकर-पराक्रमी, महामनस्वी, देवदेवेश्वर, अलौकिक, कृष्णपिङ्गल वर्णवाले अघोरको देखकर ब्रह्माजीने उनकी वन्दना की। तत्पश्चात् ब्रह्माजी उन भक्तवत्सल अविनाशी अघोरको ब्रह्मरूप समझकर इष्ट वचनोंद्वारा उनकी स्तुति करने लगे। तब उनके पार्श्वभागसे कृष्णवर्णवाले तथा काले रंगका अनुलेपन धारण किये हुए चार महामनस्वी कुमार उत्पन्न हुए। वे सब-के-सब परम तेजस्वी, अव्यक्तनामा तथा शिवसरीखे रूपवाले थे। उनके नाम थे—कृष्ण, कृष्णशिख, कृष्णास्य और कृष्णकण्ठधृक्। इस प्रकार उत्पन्न होकर इन महात्माओंने ब्रह्माजीकी सृष्टिरचनाके निमित्त महान् अद्भुत 'घोर' नामक योगका प्रचार किया। (यह 'अघोर' नामक चौथा अवतार हुआ।)

मुनीश्वरो! तदनन्तर ब्रह्माका दूसरा कल्प प्रारम्भ हुआ। वह परम अद्भुत था और 'विश्वरूप' नामसे विख्यात था। उस कल्पमें जब ब्रह्माजी पुत्रकी कामनासे मन-ही-मन शिवजीका ध्यान कर रहे थे, उसी समय महान् सिंहनाद करनेवाली विश्वरूपा सरस्वती प्रकट हुई तथा उसी

प्रकार परमेश्वर भगवान् ईशान प्रादुर्भूत हुए, जिनका वर्ण शुद्ध स्फटिकके समान उज्ज्वल था और जो समस्त आभूषणोंसे विभूषित थे। उन अजन्मा, सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी, सब कुछ प्रदान करनेवाले, सर्वस्वरूप, सुन्दर रूपवाले तथा अरूप ईशानको देखकर ब्रह्माजीने उन्हें प्रणाम किया। तब शक्तिसहित विभु ईशानने भी ब्रह्माको सन्मार्गका उपदेश देकर चार सुन्दर बालकोंकी कल्पना की। उन उत्पन्न हुए शिशुओंका नाम था—जटी, मुण्डी, शिखण्डी और अर्धमुण्ड। वे योगानुसार सद्धर्मका पालन करके योगगतिको प्राप्त हो गये। (यह 'ईशान' नामक पाँचवाँ अवतार हुआ।)

सर्वज्ञ सनत्कुमारजी ! इस प्रकार मैंने जगत्‌की हितकामनासे सद्योजात आदि अवतारोंका प्राकट्य संक्षेपसे वर्णन किया। उनका वह सारा लोकहितकारी व्यवहार यथातथ्यरूपसे ब्रह्माण्डमें वर्तमान है। महेश्वरकी ईशान, पुरुष, घोर, वामदेव और ब्रह्म—ये पाँच मूर्तियाँ विशेषरूपसे प्रसिद्ध हैं। इनमें ईशान, जो शिवस्वरूप तथा सबसे बड़ा है, पहला कहा जाता है। वह साक्षात् प्रकृतिके भोक्ता क्षेत्रज्ञमें निवास करता है। शिवजीका दूसरा स्वरूप तत्पुरुष नामसे ख्यात है। वह गुणोंके आश्रयरूप तथा भोग्य सर्वज्ञमें अधिष्ठित है। पिनाकधारी शिवका जो अघोर नामक तीसरा स्वरूप है, वह धर्मके लिये अङ्गोंसहित बुद्धितत्त्वका विस्तार करके अंदर विराजमान रहता है। वामदेव नामवाला शंकरका चौथा स्वरूप अहंकारका अधिष्ठान है। वह सदा अनेकों प्रकारका कार्य करता रहता है। विचारशील बुद्धिमानोंका कथन है कि शंकरका ईशानसंज्ञक स्वरूप सदा कर्ण, वाणी और सर्वव्यापी आकाशका अधीश्वर है तथा महेश्वरका पुरुष नामक रूप त्वक्, पाणि और स्पर्शगुणविशिष्ट वायुका स्वामी है। मनीषीगण अघोर नामवाले रूपको शरीर, रस, रूप और अग्निका अधिष्ठान बतलाते हैं। शंकरजीका वामदेवसंज्ञक स्वरूप रसना, पायु, रस और जलका स्वामी कहा जाता है। प्राण, उपस्थ, गन्ध और पृथ्वीका ईश्वर शिवजीका सद्योजात नामक रूप बताया जाता है। कल्याणकामी मनुष्योंको शंकरजीके इन स्वरूपोंकी सदा प्रयत्नपूर्वक वन्दना करनी चाहिये; क्योंकि ये श्रेयःप्राप्तिमें एकमात्र हेतु हैं। जो मनुष्य इन सद्योजात आदि अवतारोंके प्राकट्यको पढ़ता अथवा सुनता है, वह जगत्‌में समस्त काम्य भोगोंका उपभोग करके अन्तमें परमगतिको प्राप्त होता है।

(अध्याय १)

☆

शिवजीकी अष्टमूर्तियोंका तथा अर्धनारीनररूपका सविस्तर वर्णन

नन्दीश्वरजी कहते हैं—ऐश्वर्यशाली मुने ! अब तुम महेश्वरके उन श्रेष्ठ अवतारोंका वर्णन श्रवण करो, जो लोकमें सबके सम्पूर्ण कार्योंको पूर्ण करनेवाले अतएव सुखदाता हैं। तात ! यह जगत् उन परमेश्वर शम्भुकी आठ मूर्तियोंका स्वरूप ही है। जैसे सूतमें मणियाँ पिरोयी रहती हैं, उसी तरह यह विश्व उन अष्टमूर्तियोंमें व्याप्त होकर

स्थित है। वे प्रसिद्ध आठ मूर्तियाँ ये हैं—शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान और महादेव। शिवजीके इन शर्व आदि अष्टमूर्तियोंद्वारा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, क्षेत्रज्ञ, सूर्य और चन्द्रमा अधिष्ठित हैं। शास्त्रका ऐसा निश्चय है कि कल्याणकर्ता महेश्वरका विश्वम्भरात्मक रूप ही चराचर विश्वको धारण किये हुए है। परमात्मा शिवका सलिलात्मक रूप जो समस्त जगत्‌को जीवन प्रदान करनेवाला है, 'भव' नामसे कहा जाता है। जो जगत्‌के बाहर-भीतर वर्तमान है और स्वयं ही विश्वका भरण-पोषण करता तथा स्पन्दित होता है, उग्ररूपधारी प्रभुके उस रूपको सत्पुरुष 'उग्र' कहते हैं। महादेवका जो सबको अवकाश देनेवाला सर्वव्यापी आकाशात्मक रूप है, उसे 'भीम' कहते हैं। वह भूतवृन्दका भेदक है। जो रूप समस्त आत्माओंका अधिष्ठान, सम्पूर्ण क्षेत्रोंमें निवास करनेवाला और जीवोंके भव-पाशका छेदक है, उसे 'पशुपति'का रूप समझना चाहिये। महेश्वरका सम्पूर्ण जगत्‌को प्रकाशित करनेवाला जो सूर्य नामक रूप है, उसे 'ईशान' कहते हैं। वह द्युलोकमें भ्रमण करता है। अमृतमयी रश्मियोंवाला जो चन्द्रमा सम्पूर्ण विश्वको आह्लादित करता है, शिवका वह रूप 'महादेव' नामसे पुकारा जाता है। 'आत्मा' परमात्मा शिवका आठवाँ रूप है। यह मूर्ति अन्य मूर्तियोंकी व्यापिका है। इसलिये सारा विश्व शिवमय है। जिस प्रकार वृक्षके मूलको सींचनेसे उसकी शाखाएँ पुष्पित हो जाती हैं, उसी तरह शिवका पूजन करनेसे शिवस्वरूप विश्व परिपुष्ट होता है। जैसे इस लोकमें पुत्र-पौत्र आदिको प्रसन्न देखकर पिता हर्षित होता है, उसी तरह विश्वको भलीभाँति हर्षित देखकर शंकरको आनन्द मिलता है। इसलिये यदि कोई किसी भी देहधारीको कष्ट देता है तो निस्संदेह मानो उसने अष्टमूर्ति शिवका ही अनिष्ट किया है। सनत्कुमारजी! इस प्रकार भगवान् शिव अपनी अष्टमूर्तियोंद्वारा समस्त विश्वको अधिष्ठित करके विराजमान हैं, अतः तुम पूर्ण भक्तिभावसे उन परम कारण रुद्रका भजन करो।

प्रिय सनत्कुमारजी! अब तुम शिवजीके अनुपम अर्धनारीनररूपका वर्णन सुनो। महाप्राज्ञ! वह रूप ब्रह्माकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। (सृष्टिके आदिमें) जब सृष्टिकर्ता ब्रह्माद्वारा रची हुई सारी प्रजाएँ विस्तारको नहीं प्राप्त हुईं, तब ब्रह्मा उस दुःखसे दुःखी हो चिन्ताकुल हो गये। उसी समय यों आकाशवाणी हुई—'ब्रह्मन्! अब मैथुनी सृष्टिकी रचना करो।' उस व्योमवाणीको सुनकर ब्रह्माने मैथुनी सृष्टि उत्पन्न करनेका विचार किया; परंतु इससे पहले नारियोंका कुल ईशानसे प्रकट ही नहीं हुआ था, इसलिये पद्मयोनि ब्रह्मा मैथुनी सृष्टि रचनेमें समर्थ न हो सके। तब वे यों विचार कर कि शम्भुकी कृपाके बिना मैथुनी प्रजा उत्पन्न नहीं हो सकती, तप करनेको उद्यत हुए। उस समय ब्रह्मा पराशक्ति शिवासहित परमेश्वर शिवका प्रेमपूर्वक हृदयमें ध्यान करके घोर तप करने लगे। तदनन्तर तपोऽनुष्ठानमें लगे हुए ब्रह्माके उस तीव्र तपसे थोड़े ही समयमें शिवजी प्रसन्न हो गये। तब वे कष्टहारी शंकर पूर्णसच्चिदानन्दकी कामदा मूर्तिमें

प्रविष्ट होकर अर्धनारीनरके रूपसे ब्रह्माके निकट प्रकट हो गये! उन देवाधिदेव शंकरको पराशक्ति शिवाके साथ आया हुआ देख ब्रह्माने दण्डकी भाँति भूमिपर लेटकर उन्हें प्रणाम किया और फिर वे हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे। तब विश्वकर्ता देवाधिदेव महादेव महेश्वर परम प्रसन्न होकर ब्रह्मासे मेघकी-सी गम्भीर वाणीमें बोले।

ईश्वरने कहा—महाभाग वत्स! मेरे प्यारे पुत्र पितामह! मुझे तुम्हारा सारा मनोरथ पूर्णतया ज्ञात हो गया है। तुमने जो इस समय प्रजाओंकी वृद्धिके लिये घोर तप किया है, तुम्हारे उस तपसे मैं प्रसन्न हो गया हूँ और तुम्हें तुम्हारा अभीष्ट प्रदान करूँगा। यों स्वभावसे ही मधुर तथा परम उदार वचन कहकर शिवजीने अपने शरीरके अर्धभागसे शिवादेवीको पृथक् कर दिया। तब शिवसे पृथक् होकर प्रकट हुई उन परमा शक्तिको देखकर ब्रह्मा विनम्रभावसे प्रणाम करके उनसे प्रार्थना करने लगे।

ब्रह्माने कहा—शिवे! सृष्टिके प्रारम्भमें तुम्हारे पति देवाधिदेव परमात्मा शम्भुने मेरी सृष्टि की थी और (मेरेद्वारा) सारी प्रजाओंकी रचना की थी। शिवे! तब मैंने देवता आदि समस्त प्रजाओंकी मानसिक सृष्टि की; परंतु बारंबार रचना करनेपर भी उनकी वृद्धि नहीं हो रही है, अतः अब मैं स्त्री-पुरुषके समागमसे उत्पन्न होनेवाली सृष्टिका निर्माण करके अपनी सारी प्रजाओंकी वृद्धि करना चाहता हूँ। किंतु अभीतक तुमसे अक्षय नारीकुलका प्राकट्य नहीं हुआ है, इस कारण नारीकुलकी सृष्टि करना मेरी शक्तिके बाहर है। चूँकि सारी शक्तियोंका उद्गमस्थान तुम्हीं हो, इसलिये मैं तुम अखिलेश्वरी परमा शक्तिसे प्रार्थना करता हूँ। शिवे! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ, तुम मुझे नारीकुलकी सृष्टि करनेके लिये शक्ति प्रदान करो; क्योंकि शिवप्रिये! इसीको तुम चराचर जगत्‌की उत्पत्तिका कारण समझो। वरदेश्वरि! मैं तुमसे एक और वरकी याचना करता हूँ, जगन्मातः! कृपा करके उसे भी मुझे दीजिये। मैं तुम्हारे चरणोंमें नमस्कार करता हूँ। (वह वर यह है—) 'सर्वव्यापिनी जगज्जननि! तुम चराचर जगत्‌की वृद्धिके लिये अपने एक सर्वसमर्थ रूपसे मेरे पुत्र दक्षकी पुत्री हो जाओ।' ब्रह्माद्वारा यों याचना किये जानेपर परमेश्वरी देवी शिवाने 'तथास्तु—ऐसा ही होगा' कहकर वह शक्ति ब्रह्माको प्रदान कर दी। सुतरां जगन्मयी शिवशक्ति शिवादेवीने अपनी भौंहोंके मध्यभागसे अपने ही समान प्रभावाली एक शक्तिकी रचना की। उस शक्तिको देखकर देवश्रेष्ठ भगवान् शंकर, जो लीलाकारी, कष्टहारी और कृपाके सागर हैं, हँसते हुए जगदम्बिकासे बोले।

शिवजीने कहा—'देवि ! परमेष्ठी ब्रह्माने तपस्याद्वारा तुम्हारी आराधना की है, अतः अब तुम उनपर प्रसन्न हो जाओ और उनका सारा मनोरथ पूर्ण करो।' तब शिवादेवीने परमेश्वर शिवकी उस आज्ञाको सिर झुकाकर ग्रहण किया और ब्रह्माके कथनानुसार दक्षकी पुत्री होना स्वीकार कर लिया। मुने ! इस प्रकार शिवादेवी ब्रह्माको अनुपम शक्ति प्रदान करके शम्भुके शरीरमें प्रविष्ट हो गयीं। तत्पश्चात् भगवान् शंकर भी तुरंत ही अन्तर्धान हो गये। तभीसे इस लोकमें स्त्री-भागकी कल्पना हुई और मैथुनी सृष्टि चल पड़ी; इससे ब्रह्माको महान् आनन्द प्राप्त हुआ। तात ! इस प्रकार मैंने तुमसे शिवजीके महान् अनुपम अर्धनारी-नरार्धरूपका वर्णन कर दिया, यह सत्पुरुषोंके लिये मङ्गलदायक है।

(अध्याय २-३)

☆

वाराहकल्पमें होनेवाले शिवजीके प्रथम अवतारसे लेकर नवम ऋषभ अवतारतकका वर्णन

नन्दीश्वरजी कहते हैं—सर्वज्ञ सनत्कुमारजी ! एक बार रुद्रने हर्षित होकर ब्रह्माजीसे शंकरके चरित्रका प्रेमपूर्वक वर्णन किया था। वह चरित्र सदा परम सुखदायक है। (उसे तुम श्रवण करो। वह चरित्र इस प्रकार है।)

शिवजीने कहा था—ब्रह्मन् ! वाराह-कल्पके सातवें मन्वन्तरमें सम्पूर्ण लोकोंको प्रकाशित करनेवाले भगवान् कल्पेश्वर, जो तुम्हारे प्रपौत्र हैं, वैवस्वत मनुके पुत्र होंगे। तब उस मन्वन्तरकी चतुर्युगियोंके किसी द्वापरयुगमें मैं लोकोंपर अनुग्रह करने तथा ब्राह्मणोंका हित करनेके लिये प्रकट हूँगा। ब्रह्मन् ! युग-प्रवृत्तिके अनुसार उस प्रथम चतुर्युगीके प्रथम द्वापरयुगमें जब प्रभु स्वयं ही व्यास होंगे, तब मैं उस कलियुगके अन्तमें ब्राह्मणोंके हितार्थ शिवासहित श्वेत नामक महामुनि होकर प्रकट हूँगा। उस समय हिमालयके रमणीय शिखर छागल नामक पर्वतश्रेष्ठपर मेरे शिखाधारी चार शिष्य उत्पन्न होंगे। उनके नाम होंगे—श्वेत, श्वेतशिख, श्वेताश्व और श्वेतलोहित। वे चारों ध्यानयोगके आश्रयसे मेरे नगरमें जायँगे। वहाँ वे मुझ अविनाशीको तत्त्वतः जानकर मेरे भक्त हो जायँगे तथा जन्म, जरा और मृत्युसे रहित होकर परब्रह्मकी समाधिमें लीन रहेंगे। वत्स पितामह ! उस समय मनुष्य ध्यानके अतिरिक्त दान, धर्म आदि कर्महेतुक साधनोंद्वारा मेरा दर्शन नहीं पा सकेंगे। दूसरे द्वापरमें प्रजापति सत्य व्यास होंगे। उस समय मैं कलियुगमें सुतार नामसे उत्पन्न होऊँगा। वहाँ भी मेरे दुन्दुभि, शतरूप, ह्रषीक तथा केतुमान् नामक चार वेदवादी द्विज शिष्य होंगे। वे चारों ध्यानयोगके बलसे मेरे नगरको जायँगे और मुझ अविनाशीको तत्त्वतः जानकर मुक्त हो जायँगे। तीसरे द्वापरमें जब भार्गव नामक व्यास होंगे, तब मैं भी नगरके निकट ही दमन नामसे प्रकट होऊँगा। उस समय भी मेरे विशोक, विशेष, विपाप और पापनाशन नामक चार पुत्र होंगे। चतुरानन ! उस अवतारमें मैं शिष्योंको साथ ले व्यासकी सहायता करूँगा

और उस कलियुगमें निवृत्तिमार्गको सुदृढ़ बनाऊँगा। चौथे द्वापरमें जब अङ्गिरा व्यास कहे जायँगे, उस समय मैं सुहोत्र नामसे अवतार लूँगा। उस समय भी मेरे चार योगसाधक महात्मा पुत्र होंगे। ब्रह्मन्! उनके नाम होंगे—सुमुख, दुर्मुख, दुर्दम और दुरतिक्रम। उस अवसरपर भी इन शिष्योंके साथ मैं व्यासकी सहायतामें लगा रहूँगा। पाँचवें द्वापरमें सविता व्यास नामसे कहे जायँगे। तब मैं कङ्क नामक महातपस्वी योगी होऊँगा। ब्रह्मन्! वहाँ भी मेरे चार योगसाधक महात्मा पुत्र होंगे। उनके नाम बतलाता हूँ, सुनो—सनक, सनातन, प्रभावशाली सनन्दन और सर्वव्यापक निर्मल तथा अहंकाररहित सनत्कुमार। उस समय भी कङ्क नामधारी मैं सविता नामक व्यासका सहायक बनूँगा और निवृत्ति-मार्गको बढ़ाऊँगा। पुनः छठे द्वापरके प्रवृत्त होनेपर जब मृत्यु लोकोपकारक व्यास होंगे और वेदोंका विभाजन करेंगे, उस समय भी मैं व्यासकी सहायता करनेके लिये लोकाक्षि नामसे प्रकट होऊँगा और निवृत्ति-पथकी उन्नति करूँगा। वहाँ भी मेरे चार दृढ़व्रती शिष्य होंगे। उनके नाम होंगे—सुधामा, विरजा, संजय तथा विजय। विप्रो! सातवें द्वापरके आरम्भमें जब शतक्रतु नामक व्यास होंगे, उस समय भी मैं योगमार्गमें परम निपुण जैगीषव्य नामसे प्रकट होऊँगा और काशीपुरीमें गुफाके अंदर दिव्यदेशमें कुशासनपर बैठकर योगको सुदृढ़ बनाऊँगा तथा शतक्रतु नामक व्यासकी सहायता और संसारभयसे भक्तोंका उद्धार करूँगा। उस युगमें भी मेरे सारस्वत, योगीश, मेघवाह और सुवाहन नामक चार पुत्र होंगे। आठवें द्वापरके आनेपर मुनिवर वसिष्ठ वेदोंका विभाजन करनेवाले वेदव्यास होंगे। योगवित्तम! उस युगमें भी मैं दधिवाहन नामसे अवतार लूँगा और व्यासकी सहायता करूँगा। उस समय कपिल, आसुरि, पञ्चशिख और शाल्वल नामवाले मेरे चार योगी पुत्र उत्पन्न होंगे, जो मेरे ही समान होंगे। ब्रह्मन्! नवीं चतुर्युगीके द्वापरयुगमें मुनिश्रेष्ठ सारस्वत व्यास नामसे प्रसिद्ध होंगे। उन व्यासके निवृत्तिमार्गकी वृद्धिके लिये ध्यान करनेपर मैं ऋषभनामसे अवतार लूँगा। उस समय पराशर, गर्ग, भार्गव तथा गिरीश नामके चार महायोगी मेरे शिष्य होंगे। प्रजापते! उनके सहयोगसे मैं योगमार्गको सुदृढ़ बनाऊँगा। सम्मुने! इस प्रकार मैं व्यासका सहायक बनूँगा। ब्रह्मन्! उसी रूपसे मैं बहुत-से दुःखी भक्तोंपर दया करके उनका भवसागरसे उद्धार करूँगा। मेरा वह ऋषभ नामक अवतार योगमार्गका प्रवर्तक, सारस्वत व्यासके मनको संतोष देनेवाला और नाना प्रकारसे रक्षा करनेवाला होगा। उस अवतारमें मैं भद्रायु नामक राजकुमारको, जो विषदोषसे मर जानेके कारण पिताद्वारा त्याग दिया जायगा, जीवन प्रदान करूँगा। तदनन्तर उस राजपुत्रकी आयुके सोलहवें वर्षमें ऋषभ ऋषि, जो मेरे ही अंश हैं, उसके घर पधारेंगे। प्रजापते! उस राजकुमारद्वारा पूजित होनेपर वे सद्रूपधारी कृपालु मुनि उसे राजधर्मका उपदेश करेंगे। तत्पश्चात् वे दीनवत्सल मुनि हर्षित चित्तसे उसे दिव्य कवच, खड्ग और सम्पूर्ण शत्रुओंका विनाश करनेवाला एक चमकीला खड्ग प्रदान करेंगे। फिर कृपापूर्वक उसके शरीरपर

भस्म लगाकर उसे बारह हजार हाथियोंका बल भी देंगे। यों मातासहित भद्रायुको भलीभाँति आश्वासन देकर तथा उन दोनोंद्वारा पूजित हो प्रभावशाली ऋषभ मुनि स्वेच्छानुसार चले जायँगे। ब्रह्मन्! तब राजर्षि भद्रायु भी रिपुगणोंको जीतकर और कीर्तिमालिनीके साथ विवाह करके धर्मपूर्वक राज्य करेगा। मुने! मुझ शंकरका वह ऋषभ नामक नवाँ अवतार ऐसा प्रभाववाला होगा, वह सत्पुरुषोंकी गति तथा दीनोंके लिये बन्धु-सा हितकारी होगा। मैंने उसका वर्णन तुम्हें सुना दिया। यह ऋषभ-चरित्र परम पावन, महान् तथा स्वर्ग, यश और आयुको देनेवाला है; अतः इसे प्रयत्नपूर्वक सुनाना चाहिये।

(अध्याय ४)

☆

शिवजीद्वारा दसवेंसे लेकर अट्ठाईसवें योगेश्वरावतारोंका वर्णन

शिवजी कहते हैं—ब्रह्मन्! दसवें द्वापरमें त्रिधामा नामके मुनि व्यास होंगे। वे हिमालयके रमणीय शिखर पर्वतोत्तम भृगुतुङ्गपर निवास करेंगे। वहाँ भी मेरे श्रुतिविदित चार पुत्र होंगे। उनके नाम होंगे—भृङ्ग, बलबन्धु, नरामित्र और तपोधन केतुशृङ्ग। ग्यारहवें द्वापरमें जब त्रिवृत नामक व्यास होंगे, तब मैं कलियुगमें गङ्गाद्वारमें तप नामसे प्रकट होऊँगा। वहाँ भी मेरे लम्बोदर, लम्बाक्ष, केशलम्ब और प्रलम्बक नामक चार दृढ़व्रती पुत्र होंगे। बारहवीं चतुर्युगीके द्वापरयुगमें शततेजा नामके वेदव्यास होंगे। उस समय मैं द्वापरके समाप्त होनेपर कलियुगमें हेमकञ्चुकमें जाकर अत्रि नामसे अवतार लूँगा और व्यासकी सहायताके लिये निवृत्तिमार्गको प्रतिष्ठित करूँगा। महामुने! वहाँ भी मेरे सर्वज्ञ, समबुद्धि, साध्य और शर्व नामक चार उत्तम योगी पुत्र होंगे। तेरहवें द्वापरयुगमें जब धर्मस्वरूप नारायण व्यास होंगे, तब मैं पर्वतश्रेष्ठ गन्धमादनपर बालखिल्याश्रममें महामुनि बलि नामसे उत्पन्न हूँगा। वहाँ भी मेरे सुधामा, काश्यप, वसिष्ठ और विरजा नामक चार सुन्दर पुत्र होंगे। चौदहवीं चतुर्युगीके द्वापरयुगमें जब रक्ष नामक व्यास होंगे, उस समय मैं अङ्गिराके वंशमें गौतम नामसे उत्पन्न होऊँगा। उस कलियुगमें भी अत्रि, वशद, श्रवण और श्रविष्कट मेरे पुत्र होंगे। पंद्रहवें द्वापरमें जब त्रय्यारुणि व्यास होंगे, उस समय मैं हिमालयके पृष्ठभागमें स्थित वेदशीर्ष नामक पर्वतपर सरस्वतीके उत्तरतटका आश्रय ले वेदशिरा नामसे अवतार ग्रहण करूँगा। उस समय महापराक्रमी वेदशिर ही मेरा अस्त्र होगा। वहाँ भी मेरे चार दृढ़ पराक्रमी पुत्र होंगे। उनके नाम होंगे—कुणि, कुणिबाहु, कुशरीर और कुनेत्रक।

सोलहवें द्वापरयुगमें जब व्यासका नाम देव होगा, तब मैं योग प्रदान करनेके लिये परम पुण्यमय गोकर्णवनमें गोकर्ण नामसे प्रकट होऊँगा। वहाँ भी मेरे काश्यप, उशना, च्यवन और बृहस्पति नामक चार पुत्र होंगे। वे जलके समान निर्मल और योगी होंगे तथा उसी मार्गके आश्रयसे शिवलोकको प्राप्त हो जायँगे। सतरहवीं चतुर्युगीके द्वापरयुगमें देवकृतञ्जय व्यास होंगे, उस समय मैं

हिमालयके अत्यन्त ऊँचे एवं रमणीय शिखर महालय पर्वतपर गुहावासी नामसे अवतार धारण करूँगा; क्योंकि हिमालय शिवक्षेत्र कहलाता है। वहीं उतथ्य, वामदेव, महायोग और महाबल नामके मेरे पुत्र भी होंगे। अठारहवीं चतुर्युगीके द्वापरयुगमें जब व्रतञ्जय व्यास होंगे, तब मैं हिमालयके उस सुन्दर शिखरपर, जिसका नाम शिखण्डी पर्वत है और जहाँ महान् पुण्यमय सिद्धक्षेत्र तथा सिद्धोंद्वारा सेवित शिखण्डीवन भी है शिखण्डी नामसे उत्पन्न होऊँगा। वहाँ भी वाचःश्रवा, रुचीक, श्यावास्य और यतीश्वर नामक मेरे चार तपस्वी पुत्र होंगे। उन्नीसवें द्वापरमें महामुनि भरद्वाज व्यास होंगे। उस समय भी मैं हिमालयके शिखरपर माली नामसे उत्पन्न होऊँगा और मेरे सिरपर लंबी-लंबी जटाएँ होंगी। वहाँ भी मेरे सागरके-से गम्भीर स्वभाववाले हिरण्यनाभ, कौसल्य, लोकाक्षि और प्रधिमि नामक पुत्र होंगे। बीसवीं चतुर्युगीके द्वापरमें होनेवाले व्यासका नाम गोतम होगा। तब मैं भी हिमवान्‌के पृष्ठभागमें स्थित पर्वतश्रेष्ठ अट्टहासपर, जो सदा देवता, मनुष्य, यक्षेन्द्र, सिद्ध और चारणोंद्वारा अधिष्ठित रहता है, अट्टहास नामसे अवतार धारण करूँगा। उस युगके मनुष्य अट्टहासके प्रेमी होंगे। उस समय भी मेरे उत्तम योगसम्पन्न चार पुत्र होंगे। उनके नाम होंगे—सुमन्त, वर्वरि, विद्वान् कबन्ध और कुणिकन्धर। इक्कीसवें द्वापरयुगमें जब वाचःश्रवा नामके व्यास होंगे, तब मैं दारुक नामसे प्रकट होऊँगा। इसलिये उस शुभ स्थानका नाम 'दारुवन' पड़ जायगा। वहाँ भी मेरे प्लक्ष, दार्भायणि, केतुमान् तथा गौतम नामके चार परम योगी पुत्र उत्पन्न होंगे। बाईसवीं चतुर्युगीके द्वापरमें जब शुष्मायण नामक व्यास होंगे, तब मैं भी वाराणसीपुरीमें लाङ्गली भीम नामक महामुनिके रूपमें अवतरित होऊँगा। उस कलियुगमें इन्द्रसहित समस्त देवता मुझ हलायुधधारी शिवका दर्शन करेंगे। उस अवतारमें भी मेरे भल्लवी, मधु, पिङ्ग और श्वेतकेतु नामक चार परम धार्मिक पुत्र होंगे। तेईसवीं चतुर्युगीमें जब तृणबिन्दु मुनि व्यास होंगे, तब मैं सुन्दर कालिञ्जरगिरिपर श्वेत नामसे प्रकट होऊँगा। वहाँ भी मेरे उशिक, बृहदश्व, देवल और कवि नामसे प्रसिद्ध चार तपस्वी पुत्र होंगे। चौबीसवीं चतुर्युगीमें जब ऐश्वर्यशाली यक्ष व्यास होंगे तब उस युगमें मैं नैमिषक्षेत्रमें शूली नामक महायोगी होकर उत्पन्न हूँगा। उस युगमें भी मेरे चार तपस्वी शिष्य होंगे। उनके नाम होंगे—शालिहोत्र, अग्निवेश, युवनाश्व और शरद्वसु। पचीसवें द्वापरमें जब व्यास शक्ति नामसे प्रसिद्ध होंगे, तब मैं भी प्रभावशाली एवं दण्डधारी महायोगीके रूपमें प्रकट हूँगा। मेरा नाम मुण्डीश्वर होगा। उस अवतारमें भी छगल, कुण्डकर्ण, कुम्भाण्ड और प्रवाहक मेरे तपस्वी शिष्य होंगे। छब्बीसवें द्वापरमें जब व्यासका नाम पराशर होगा, तब मैं भद्रवट नामक नगरमें सहिष्णु नामसे अवतार लूँगा। उस समय भी उलूक, विद्युत, शम्बूक और आश्वलायन नामवाले चार तपस्वी शिष्य होंगे। सत्ताईसवें द्वापरमें जब जातूकर्ण्य व्यास होंगे, तब मैं भी प्रभासतीर्थमें सोमशर्मा नामसे प्रकट हूँगा। वहाँ भी अक्षपाद, कुमार, उलूक और वत्स नामसे प्रसिद्ध मेरे चार तपस्वी शिष्य होंगे। अट्ठाईसवें द्वापरमें जब भगवान् श्रीहरि

पराशरके पुत्ररूपमें द्वैपायन नामक व्यास होंगे, तब पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण अपने छठे अंशसे वसुदेवके श्रेष्ठ पुत्रके रूपमें उत्पन्न होकर वासुदेव कहलायेंगे। उसी समय योगात्मा मैं भी लोकोंको आश्चर्यमें डालनेके लिये योगमायाके प्रभावसे ब्रह्मचारीका शरीर धारण करके प्रकट होऊँगा। फिर श्मशानभूमिमें मृतकरूपसे पड़े हुए अविच्छिन्न शरीरको देखकर मैं ब्राह्मणोंके हित-साधनके लिये योगमायाके आश्रयसे उसमें घुस जाऊँगा और फिर तुम्हारे तथा विष्णुके साथ मेरुगिरिकी पुण्यमयी दिव्य गुहामें प्रवेश करूँगा। ब्रह्मन्! वहाँ मेरा नाम लकुली होगा। इस प्रकार मेरा यह कायावतार उत्कृष्ट सिद्धक्षेत्र कहलायेगा और यह जबतक पृथ्वी कायम रहेगी, तबतक लोकमें परम विख्यात रहेगा। उस अवतारमें भी मेरे चार तपस्वी शिष्य होंगे। उनके नाम कुशिक, गर्ग, मित्र और पौरुष्य होंगे। वे वेदोंके पारगामी ऊर्ध्वरेता ब्राह्मण योगी होंगे और माहेश्वर योगको प्राप्त करके शिवलोकको चले जायँगे।

उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मुनियो! इस प्रकार परमात्मा शिवने वैवस्वत मन्वन्तरके सभी चतुर्युगियोंके योगेश्वरावतारोंका सम्यक्-रूपसे वर्णन किया था। विभो! अट्ठाईस व्यास क्रमशः एक-एक करके प्रत्येक द्वापरमें होंगे और योगेश्वरावतार प्रत्येक कलियुगके प्रारम्भमें। प्रत्येक योगेश्वरावतारके साथ उनके चार अविनाशी शिष्य भी होंगे, जो महान् शिवभक्त और योगमार्गकी वृद्धि करनेवाले होंगे। इन पशुपतिके शिष्योंके शरीरोंपर भस्म रमी रहेगी, ललाट त्रिपुण्ड्रसे सुशोभित रहेगा और रुद्राक्षकी माला ही इनका आभूषण होगा। ये सभी शिष्य धर्मपरायण, वेद-वेदाङ्गके पारगामी विद्वान् और सदा बाहर-भीतरसे लिङ्गार्चनमें तत्पर रहनेवाले होंगे। ये शिवजीमें भक्ति रखकर योगपूर्वक ध्यानमें निष्ठा रखनेवाले और जितेन्द्रिय होंगे। विद्वानोंने इनकी संख्या एक सौ बारह बतलायी है। इस प्रकार मैंने अट्ठाईस युगोंके क्रमसे मनुसे लेकर कृष्णावतारपर्यन्त सभी अवतारोंके लक्षणोंका वर्णन कर लिया। जब श्रुतिसमूहोंका वेदान्तके रूपमें प्रयोग होगा, तब उस कल्पमें कृष्णद्वैपायन व्यास होंगे। यों महेश्वरने ब्रह्माजीपर अनुग्रह करके योगेश्वरावतारोंका वर्णन किया और फिर वे देवेश्वर उनकी ओर दृष्टिपात करके वहीं अन्तर्धान हो गये। (अध्याय ५)

☆

नन्दीश्वरावतारका वर्णन

यहाँतक बयालीस अवतारोंका वर्णन किया गया। अब नन्दीश्वरावतारका वर्णन किया जाता है।

सनत्कुमारजीने पूछा—प्रभो! आप महादेवके अंशसे उत्पन्न होकर पीछे शिवको कैसे प्राप्त हुए थे? यह सारा वृत्तान्त मैं सुनना चाहता हूँ, उसे वर्णन करनेकी कृपा करें।

नन्दीश्वर बोले—सर्वज्ञ सनत्कुमारजी! मैं जिस प्रकार महादेवके अंशसे जन्म लेकर शिवको प्राप्त हुआ, उस प्रसङ्गका वर्णन करता हूँ; तुम सावधानीपूर्वक श्रवण करो।

शिलाद नामक एक धर्मात्मा मुनि थे। पितरोंके आदेशसे उन्होंने अयोनिज सुव्रत मृत्युहीन पुत्रकी प्राप्तिके लिये तप करके देवेश्वर इन्द्रको प्रसन्न किया। परंतु देवराज इन्द्रने ऐसा पुत्र प्रदान करनेमें अपनेको असमर्थ बताकर सर्वेश्वर महाशक्तिसम्पन्न महादेवकी आराधना करनेका उपदेश दिया। तब शिलाद भगवान् महादेवको प्रसन्न करनेके लिये तप करने लगे। उनके तपसे प्रसन्न होकर महादेव वहाँ पधारे और महासमाधिमग्न शिलादको थपथपाकर जगाया। तब शिलादने शिवका स्तवन किया और भगवान् शिवके उन्हें वर देनेको प्रस्तुत होनेपर उनसे कहा—'प्रभो! मैं आपके ही समान मृत्युहीन अयोनिज पुत्र चाहता हूँ।' तब शिवजी प्रसन्न होकर मुनिसे बोले।

शिवजीने कहा—तपोधन विप्र! पूर्वकालमें ब्रह्माजीने, मुनियोंने तथा बड़े-बड़े देवताओंने मेरे अवतार धारण करनेके लिये तपस्याद्वारा मेरी आराधना की थी। इसलिये मुने! यद्यपि मैं सारे जगत्‌का पिता हूँ, फिर भी तुम मेरे पिता बनोगे और मैं तुम्हारा अयोनिज पुत्र होऊँगा तथा मेरा नाम नन्दी होगा।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने! यों कहकर कृपालु शंकरने अपने चरणोंमें प्रणिपात करके सामने खड़े हुए शिलाद मुनिकी ओर कृपादृष्टिसे देखा और उन्हें ऐसा आदेश दे वे तुरंत ही उमासहित वहीं अन्तर्धान हो गये। महादेवजीके चले जानेके पश्चात् महामुनि शिलादने अपने आश्रममें आकर ऋषियोंसे वह सारा वृत्तान्त कह सुनाया। कुछ समय बीत जानेके बाद जब यज्ञवेत्ताओंमें श्रेष्ठ मेरे पिताजी यज्ञ करनेके लिये यज्ञक्षेत्रको जोत रहे थे, उसी समय मैं शम्भुकी आज्ञासे यज्ञके पूर्व ही उनके शरीरसे उत्पन्न हो गया। उस समय मेरे शरीरकी प्रभा युगान्तकालीन अग्निके समान थी। तब सारी दिशाओंमें प्रसन्नता छा गयी और शिलाद मुनिकी भी बड़ी प्रशंसा हुई। उधर शिलादने भी जब मुझ बालकको प्रलयकालीन सूर्य और अग्निके सदृश प्रभाशाली, त्रिनेत्र, चतुर्भुज, प्रकाशमान, जटामुकुटधारी, त्रिशूल आदि आयुधोंसे युक्त, सर्वथा रुद्र-रूपमें देखा, तब वे महान् आनन्दमें निमग्न हो गये और मुझ प्रणम्यको नमस्कार करते हुए कहने लगे।

शिलाद बोले—सुरेश्वर! चूँकि तुमने नन्दी नामसे प्रकट होकर मुझे आनन्दित किया है, इसलिये मैं तुम आनन्दमय जगदीश्वरको नमस्कार करता हूँ।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने! तदनन्तर जैसे निर्धनको निधि प्राप्त हो जानेसे प्रसन्नता होती है, उसी प्रकार मेरी प्राप्तिसे हर्षित होकर पिताजीने महेश्वरकी भलीभाँति वन्दना की और फिर मुझे लेकर वे शीघ्र ही अपनी पर्णशालाको चल दिये। महामुने! जब मैं शिलादकी कुटियामें पहुँच गया, तब मैंने अपने उस रूपका परित्याग करके मनुष्यरूप धारण कर लिया। तदनन्तर शालङ्कायन-नन्दन पुत्रवत्सल शिलादने मेरे जातकर्म आदि सभी संस्कार सम्पन्न किये। फिर पाँचवें वर्षमें पिताजीने मुझे साङ्गोपाङ्ग सम्पूर्ण वेदोंका तथा अन्यान्य शास्त्रोंका भी अध्ययन कराया। सातवाँ वर्ष पूरा होनेपर शिवजीकी आज्ञासे मित्र और वरुण नामके मुनि मुझे देखनेके लिये पिताजीके

आश्रमपर पधारे। शिलाद मुनिने उनकी पूरी आवभगत की। जब वे दोनों महात्मा मुनीश्वर आनन्दपूर्वक आसनपर विराज गये, तब मेरी ओर बारंबार निहारकर बोले।

मित्र और वरुणने कहा—'तात शिलाद! यद्यपि तुम्हारा पुत्र नन्दी सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थोंका पारगामी विद्वान् है, तथापि इसकी आयु बहुत थोड़ी है। हमने बहुत तरहसे विचार करके देखा, परंतु इसकी आयु एक वर्षसे अधिक नहीं दीखती।' उन विप्रवरोंके यों कहनेपर पुत्रवत्सल शिलाद नन्दीको छातीसे लिपटाकर दुःखार्त हो फूट-फूटकर रोने लगे। तब पिता और पितामहको मृतककी भाँति भूमिपर पड़ा हुआ देख नन्दी शिवजीके चरण-कमलोंका स्मरण करके प्रसन्नतापूर्वक पूछने लगा—'पिताजी! आपको कौन-सा ऐसा दुःख आ पड़ा है, जिसके कारण आपका शरीर काँप रहा है और आप रो रहे हैं? आपको वह दुःख कहाँसे प्राप्त हुआ है, मैं इसे ठीक-ठीक जानना चाहता हूँ।'

पिताने कहा—बेटा! तुम्हारी अल्पायुके दुःखसे मैं अत्यन्त दुःखी हो रहा हूँ। (तुम्हीं बताओ) मेरे इस कष्टको कौन दूर कर सकता है? मैं उसकी शरण ग्रहण करूँ।

पुत्र बोला—पिताजी! मैं आपके सामने शपथ करता हूँ और यह बिलकुल सत्य बात कह रहा हूँ कि चाहे देवता, दानव, यम, काल तथा अन्यान्य प्राणी—ये सब-के-सब मिलकर मुझे मारना चाहें, तो भी मेरी बाल्यकालमें मृत्यु नहीं होगी, अतः आप दुःखी मत हों।

पिताने पूछा—मेरे प्यारे लाल! तुमने ऐसा कौन-सा तप किया है अथवा तुम्हें कौन-सा ऐसा ज्ञान, योग या ऐश्वर्य प्राप्त है, जिसके बलपर तुम इस दारुण दुःखको नष्ट कर दोगे?

पुत्रने कहा—तात! मैं न तो तपसे मृत्युको हटाऊँगा और न विद्यासे। मैं महादेवजीके भजनसे मृत्युको जीत लूँगा, इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने! यों कहकर मैंने सिर झुकाकर पिताजीके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर उनकी प्रदक्षिणा करके उत्तम वनकी राह ली।

(अध्याय ६)

☆

नन्दीश्वरके जन्म, वरप्राप्ति, अभिषेक और विवाहका वर्णन

नन्दिकेश्वर कहते हैं—मुने! वनमें जाकर मैंने एकान्त स्थानमें अपना आसन लगाया और उत्तम बुद्धिका आश्रय ले मैं उग्र तपमें प्रवृत्त हुआ, जो बड़े-बड़े मुनियोंके लिये भी दुष्कर था। उस समय मैं नदीके पावन उत्तर तटपर सुदृढ़रूपसे ध्यान लगाकर बैठ गया और एकाग्र तथा समाहित मनसे अपने हृदयकमलके मध्यभागमें तीन नेत्र, दस भुजा तथा पाँच मुखवाले शान्तिस्वरूप देवाधिदेव सदाशिवका ध्यान करके रुद्र-मन्त्रका जप करने लगा। तब उस जपमें मुझे तल्लीन देखकर चन्द्रार्धभूषण परमेश्वर महादेव प्रसन्न हो गये और उमासहित वहाँ पधारकर प्रेमपूर्वक बोले।

शिवजीने कहा—'शिलादनन्दन ! तुमने बड़ा उत्तम तप किया है। तुम्हारी इस तपस्यासे संतुष्ट होकर मैं तुम्हें वर देनेके लिये आया हूँ। तुम्हारे मनमें जो अभीष्ट हो, वह माँग लो।' महादेवजीके यों कहनेपर मैं सिरके बल उनके चरणोंमें लोट गया और फिर बुढ़ापा तथा शोकका विनाश करनेवाले परमेशानकी स्तुति करने लगा। तब परम कष्टहारी वृषभध्वज परमेश्वर शम्भुने मुझ परम भक्तिसम्पन्न नन्दीको जिसके नेत्रोंमें आँसू छलक आये थे और जो सिरके बल चरणोंमें पड़ा था, अपने दोनों हाथोंसे पकड़कर उठा लिया और शरीरपर हाथ फेरने लगे। फिर वे जगदीश्वर गणाध्यक्षों तथा हिमाचलकुमारी पार्वती-देवीकी ओर दृष्टिपात करके मुझे कृपादृष्टिसे देखते हुए यों कहने लगे—'वत्स नन्दी ! इन दोनों विप्रोंको तो मैंने ही भेजा था। महाप्राज्ञ ! तुम्हें मृत्युका भय कहाँ; तुम तो मेरे ही समान हो। इसमें तनिक भी संशय नहीं है। तुम अमर, अजर, दुःखरहित, अव्यय और अक्षय होकर सदा गणनायक बने रहोगे तथा पिता और सुहृद्वर्गसहित मेरे प्रियजन होओगे। तुममें मेरे ही समान बल होगा। तुम नित्य मेरे पार्श्वभागमें स्थित रहोगे और तुमपर निरन्तर मेरा प्रेम बना रहेगा। मेरी कृपासे जन्म, जरा और मृत्यु तुमपर अपना प्रभाव नहीं डाल सकेंगे।'

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! यों कहकर कृपासागर शम्भुने कमलोंकी बनी हुई अपनी शिरोमालाको उतारकर तुरंत ही मेरे गलेमें डाल दिया। विप्रवर ! उस शुभ मालाके गलेमें पड़ते ही मैं तीन नेत्र और दस भुजाओंसे सम्पन्न हो गया तथा द्वितीय शंकर-सा प्रतीत होने लगा। तदनन्तर परमेश्वर शिवने मेरा हाथ पकड़कर पूछा—'बताओ, अब तुम्हें कौन-सा उत्तम वर दूँ ?'

फिर उन वृषध्वजने अपनी जटामें स्थित हारके समान निर्मल जलको हाथमें ले 'तुम नदी हो जाओ' यों कहकर उसे छोड़ दिया। तब वह जल उत्तम ढंगसे बहनेवाली, स्वच्छ जलसे परिपूर्ण, महान् वेगशालिनी, दिव्यरूपा पाँच सुन्दर नदियोंके रूपमें परिवर्तित हो गया। उनके नाम हैं—जटोदका, त्रिस्रोता, वृषध्वनि, स्वर्णोदका और जम्बूनदी। मुने ! यह पञ्चनद शिवके पृष्ठभागकी भाँति परम शुभ है। महेश्वरके निकट इसका नाम लेनेसे यह परम पावन हो जाता है। जो मनुष्य पञ्चनदपर जाकर स्नान और जप करके परमेश्वर शिवका पूजन करता है, वह शिवसायुज्यको प्राप्त होता है—इसमें संशय नहीं है। तत्पश्चात् शम्भुने उमासे कहा—'अव्यये ! मैं नन्दीका अभिषेक करके इसे गणाध्यक्ष बनाना

चाहता हूँ! इस विषयमें तुम्हारी क्या राय है?'

तब उमा बोलीं—देवेश! आप नन्दीको गणाध्यक्षपद प्रदान कर सकते हैं; क्योंकि परमेश्वर! यह शिलादनन्दन मेरे लिये पुत्र-सरीखा है, इसलिये नाथ! यह मुझे बहुत ही प्यारा है। तदनन्तर भक्तवत्सल भगवान् शंकरने अपने अतुलबलशाली गणोंको बुलाकर उनसे कहा।

शिवजी बोले—गणनायको! तुम सब लोग मेरी एक आज्ञाका पालन करो। यह मेरा प्रिय पुत्र नन्दीश्वर सभी गणनायकोंका अध्यक्ष और गणोंका नेता है; इसलिये तुम सब लोग मिलकर इसका मेरे गणोंके अधिपति-पदपर प्रेमपूर्वक अभिषेक करो। आजसे यह नन्दीश्वर तुमलोगोंका स्वामी होगा।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने! शंकरजीके इस कथनपर सभी गणनायकोंने 'एवमस्तु' कहकर उसे स्वीकार किया और वे सामग्री जुटानेमें लग गये। फिर सब देवताओं और मुनियोंने मिलकर मेरा अभिषेक किया। तदनन्तर मरुतोंकी मनोहारिणी दिव्य कन्या सुयशासे मेरा विवाह करवा दिया। उस समय मुझे बहुत-सी दिव्य वस्तुएँ मिलीं। महामुने! इस प्रकार विवाह करके मैंने अपनी उस पत्नीके साथ शम्भु, शिवा, ब्रह्मा और श्रीहरिके चरणोंमें प्रणाम किया। तब त्रिलोकेश्वर भक्तवत्सल भगवान् शिव पत्नीसहित मुझसे परम प्रेमपूर्वक बोले।

ईश्वरने कहा—सत्पुत्र! यह तुम्हारी प्रिया सुयशा और तुम मेरी बात सुनो। तुम मुझे परम प्रिय हो, अतः मैं स्नेहपूर्वक तुम्हें मनोवाञ्छित वर प्रदान करूँगा। गणेश्वर नन्दीश! देवी पार्वतीसहित मैं तुमपर सदा संतुष्ट हूँ, इसलिये वत्स! तुम मेरा उत्तम वचन श्रवण करो। तुम मेरे अटूट प्रेमी, विशिष्ट, परम ऐश्वर्यसम्पन्न, महायोगी, महान् धनुर्धारी, अजेय, सबको जीतनेवाले, महाबली और सदा पूज्य होओगे। जहाँ मैं रहूँगा, वहाँ तुम्हारी स्थिति होगी और जहाँ तुम रहोगे, वहाँ मैं उपस्थित रहूँगा। यही दशा तुम्हारे पिता और पितामहकी भी होगी। पुत्र! तुम्हारे ये महाबली पिता परम ऐश्वर्यशाली, मेरे भक्त और गणाध्यक्ष होंगे। वत्स! ये ही नियम तुम्हारे पितामहपर भी लागू होंगे। अन्तमें तुम सब लोग मुझसे वरदान प्राप्त करके मेरा सांनिध्य प्राप्त करोगे।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने! तत्पश्चात् महाभागा उमादेवी वर देनेके लिये उत्सुक हो मुझ नन्दीसे बोलीं—'बेटा! तू मुझसे भी वर माँग ले, मैं तेरी सारी अभीष्ट कामनाओंको पूर्ण कर दूँगी।' तब देवीके उस वचनको सुनकर मैंने हाथ जोड़कर कहा—'देवि! आपके चरणोंमें मेरी सदा उत्तम भक्ति बनी रहे।' मेरी याचना सुनकर देवीने कहा—'एवमस्तु—ऐसा ही होगा।' फिर शिवा नन्दीकी प्रियतमा पत्नी सुयशासे बोलीं।

देवीने कहा—वत्से! तुम भी अपना अभीष्ट वर ग्रहण करो—तुम्हारे तीन नेत्र होंगे। तुम जन्म-बन्धनसे छूट जाओगी और पुत्र-पौत्रोंसे सम्पन्न रहोगी तथा तुम्हारी मुझमें और अपने स्वामीमें अटल भक्ति बनी रहेगी।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने! तदनन्तर शिवजीकी आज्ञासे परम प्रसन्न हुए ब्रह्मा,

विष्णु तथा समस्त देवगणोंने भी प्रेमपूर्वक हम दोनोंको वरदान दिये। तत्पश्चात् परमेश्वर शिव कुटुम्बसहित मुझे अपनाकर तथा उमासहित वृषपर आरूढ़ हो सम्बन्धियों एवं बान्धवोंके साथ अपने निवासस्थानको चले गये। तब वहाँ उपस्थित विष्णु आदि समस्त देवता मेरी प्रशंसा तथा शिव-शिवाकी स्तुति करते हुए अपने-अपने धामको चल दिये। वत्स! इस प्रकार मैंने तुमसे अपने अवतारका वर्णन कर दिया। महामुने! यह मनुष्योंके लिये सदा आनन्ददायक और शिवभक्तिका वर्धक है। जो श्रद्धालु मानव भक्तिभावित चित्तसे मुझ नन्दीके इस जन्म, वरप्राप्ति, अभिषेक और विवाहके वृत्तान्तको सुनेगा अथवा दूसरोंको सुनायेगा तथा पढ़ेगा या दूसरेको पढ़ायेगा, वह इस लोकमें सम्पूर्ण सुखोंको भोगकर अन्तमें परमगतिको प्राप्त होगा। (अध्याय ७)

☆

कालभैरवका माहात्म्य, विश्वानरकी तपस्या और शिवजीका प्रसन्न होकर उनकी पत्नी शुचिष्मतीके गर्भसे उनके पुत्ररूपमें प्रकट होनेका उन्हें वरदान देना

तदनन्तर भगवान् शंकरके भैरवावतारका वर्णन करके नन्दीश्वरने कहा—महामुने! परमेश्वर शिव उत्तमोत्तम लीलाएँ रचनेवाले तथा सत्पुरुषोंके प्रेमी हैं। उन्होंने मार्गशीर्ष मासके कृष्णपक्षकी अष्टमीको भैरवरूपसे अवतार लिया था। इसलिये जो मनुष्य मार्गशीर्षमासकी कृष्णाष्टमीको कालभैरवके संनिकट उपवास करके रात्रिमें जागरण करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य अन्यत्र भी भक्तिपूर्वक जागरणसहित इस व्रतका अनुष्ठान करेगा, वह भी महापापोंसे मुक्त होकर सद्गतिको प्राप्त हो जायगा। प्राणियोंके लाखों जन्मोंमें किये हुए जो पाप हैं, वे सब-के-सब कालभैरवके दर्शनसे निर्मल हो जाते हैं। जो मूर्ख कालभैरवके भक्तोंका अनिष्ट करता है, वह इस जन्ममें दुःख भोगकर पुनः दुर्गतिको प्राप्त होता है। जो लोग विश्वनाथके तो भक्त हैं परंतु कालभैरवकी भक्ति नहीं करते, उन्हें महान् दुःखकी प्राप्ति होती है। काशीमें तो इसका विशेष प्रभाव पड़ता है। जो मनुष्य वाराणसीमें निवास करके कालभैरवका भजन नहीं करता, उसके पाप शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी भाँति बढ़ते रहते हैं। जो काशीमें प्रत्येक भौमवारकी कृष्णाष्टमीके दिन कालराजका भजन-पूजन नहीं करता, उसका पुण्य कृष्णपक्षके चन्द्रमाके समान क्षीण हो जाता है।

तदनन्तर नन्दीश्वरने वीरभद्र तथा शरभावतारका वृत्तान्त सुनाकर कहा—ब्रह्मपुत्र! भगवान् शिव जिस प्रकार प्रसन्न होकर विश्वानर मुनिके घर अवतीर्ण हुए थे, शशिमौलिके उस चरितको तुम प्रेमपूर्वक श्रवण करो। उस समय वे तेजकी निधि अग्निरूप सर्वात्मा परम प्रभु शिव अग्निलोकके अधिपतिरूपसे गृहपति नामसे अवतीर्ण हुए थे। पूर्वकालकी बात है, नर्मदाके रमणीय तटपर नर्मपुर नामका एक नगर था। उसी नगरमें विश्वानर नामके एक मुनि निवास करते थे। उनका जन्म शाण्डिल्य गोत्रमें हुआ था। वे परम पावन,

पुण्यात्मा, शिवभक्त, ब्रह्मतेजके निधि और जितेन्द्रिय थे। ब्रह्मचर्याश्रममें उनकी बड़ी निष्ठा थी। वे सदा ब्रह्मयज्ञमें तत्पर रहते थे। फिर उन्होंने शुचिष्मती नामकी एक सद्गुणवती कन्यासे विवाह कर लिया और वे ब्राह्मणोचित कर्म करते हुए देवता तथा पितरोंको प्रिय लगनेवाला जीवन बिताने लगे। इस प्रकार जब बहुत-सा समय व्यतीत हो गया, तब उन ब्राह्मणकी भार्या शुचिष्मती, जो उत्तम व्रतका पालन करनेवाली थी, अपने पतिसे बोली—'प्राणनाथ! स्त्रियोंके योग्य जितने आनन्दप्रद भोग हैं, उन सबको मैंने आपकी कृपासे आपके साथ रहकर भोग लिया; परंतु नाथ! मेरे हृदयमें एक लालसा चिरकालसे वर्तमान है और वह गृहस्थोंके लिये उचित भी है, उसे आप पूर्ण करनेकी कृपा करें। स्वामिन्! यदि मैं वर पानेके योग्य हूँ और आप मुझे वर देना चाहते हैं तो मुझे महेश्वर-सरीखा पुत्र प्रदान कीजिये। इसके अतिरिक्त मैं दूसरा वर नहीं चाहती।'

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने! पत्नीकी बात सुनकर पवित्र व्रतपरायण ब्राह्मण विश्वानर क्षणभरके लिये समाधिस्थ हो गये और हृदयमें यों विचार करने लगे—'अहो! मेरी इस सूक्ष्माङ्गी पत्नीने कैसा अत्यन्त दुर्लभ वर माँगा है। यह तो मेरे मनोरथ-पथसे बहुत दूर है। अच्छा, शिवजी तो सब कुछ करनेमें समर्थ हैं। ऐसा प्रतीत होता है, मानो उन शम्भुने ही इसके मुखमें बैठकर वाणीरूपसे ऐसी बात कही है, अन्यथा दूसरा कौन ऐसा करनेमें समर्थ हो सकता है। तदनन्तर वे एकपत्नीव्रती मुनि विश्वानर पत्नीको आश्वासन देकर वाराणसीमें गये और घोर तपके द्वारा भगवान् शिवके वीरेश लिङ्गकी आराधना करने लगे। इस प्रकार उन्होंने एक वर्षपर्यन्त भक्तिपूर्वक उत्तम वीरेश लिङ्गकी त्रिकाल अर्चना करते हुए अद्भुत तप किया। तेरहवाँ मास आनेपर एक दिन वे द्विजवर प्रातःकाल त्रिपथगामिनी गङ्गाके जलमें स्नान करके ज्यों ही वीरेशके निकट पहुँचे, त्यों ही उन तपोधनको उस लिङ्गके मध्य एक अष्टवर्षीय विभूतिभूषित बालक दिखायी दिया। उस नग्न शिशुके नेत्र कानोंतक फैले हुए थे, होठोंपर गहरी लालिमा छायी हुई थी, मस्तकपर पीले रंगकी सुन्दर जटा सुशोभित थी और मुखपर हँसी खेल रही थी। वह शैशवोचित अलंकार और चिताभस्म धारण किये हुए था तथा अपनी लीलासे हँसता हुआ श्रुतिसूक्तोंका पाठ कर रहा था। उस बालकको देखकर विश्वानर मुनि कृतार्थ हो गये और आनन्दके कारण उनका शरीर रोमाञ्चित हो उठा तथा बारंबार 'नमस्कार है, नमस्कार है' यों उनका हृदयोद्गार फूट पड़ा। फिर वे अभिलाषा पूर्ण करनेवाले आठ पद्योंद्वारा बालरूपधारी परमानन्दस्वरूप शम्भुका स्तवन करते हुए बोले।

विश्वानरने कहा—भगवन्! आप ही एकमात्र अद्वितीय ब्रह्म हैं, यह सारा जगत् आपका ही स्वरूप है, यहाँ अनेक कुछ भी नहीं है। यह बिलकुल सत्य है कि एकमात्र रुद्रके अतिरिक्त दूसरे किसीकी सत्ता नहीं है, इसलिये मैं आप महेशकी शरण ग्रहण करता हूँ। शम्भो! आप ही सबके कर्ता-हर्ता हैं, तथा जैसे आत्मधर्म एक होते हुए भी अनेक रूपसे दीखता है, उसी प्रकार आप भी एकरूप होकर नाना रूपोंमें व्याप्त हैं।

फिर भी आप रूपरहित हैं। इसलिये आप ईश्वरके अतिरिक्त मैं किसी दूसरेकी शरण नहीं ले सकता। जैसे रज्जुमें सर्प, सीपीमें चाँदी और मृगमरीचिकामें जलप्रवाहका भान मिथ्या है, उसी प्रकार, जिसे जान लेनेपर यह विश्वप्रपञ्च मिथ्या भासित होता है, उन महेश्वरकी मैं शरण लेता हूँ। शम्भो! जलमें जो शीतलता, अग्निमें दाहकता, सूर्यमें गरमी, चन्द्रमामें आह्लादकारिता, पुष्पमें गन्ध और दुग्धमें घी वर्तमान है, वह आपका ही स्वरूप है, अतः मैं आपके शरण हूँ। आप कानरहित होकर शब्द सुनते हैं; नासिका-विहीन होकर सूँघते हैं। पैर न होनेपर भी दूरतक चले जाते हैं, नेत्रहीन होकर सब कुछ देखते हैं और जिह्वारहित होकर भी समस्त रसोंके ज्ञाता हैं। भला, आपको सम्यक्-रूपसे कौन जान सकता है। इसलिये मैं आपकी शरणमें जाता हूँ। ईश! आपके रहस्यको न तो साक्षात् वेद ही जानता है न विष्णु, न अखिल विश्वके विधाता ब्रह्मा, न योगीन्द्र और न इन्द्र आदि प्रधान देवताओंको ही इसका पता है; परंतु आपका भक्त उसे जान लेता है, अतः मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूँ। ईश! न तो आपका कोई गोत्र है,न जन्म है, न नाम है न रूप है, न शील है और न देश है; ऐसा होनेपर भी आप त्रिलोकीके अधीश्वर तथा सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं, इसलिये मैं आपका भजन करता हूँ। स्मरारे! आप सर्वस्वरूप हैं, यह सारा विश्वप्रपञ्च आपसे ही प्रकट हुआ है। आप गौरीके प्राणनाथ, दिगम्बर और परम शान्त हैं। बाल, युवा और वृद्धरूपमें आप ही वर्तमान हैं। ऐसी कौन-सी वस्तु है, जिसमें आप व्याप्त न हों; अतः मैं आपके चरणोंमें नतमस्तक हूँ।*

नन्दीश्वर कहते हैं—मुने! यों स्तुति करके विप्रवर विश्वानर हाथ जोड़कर भूमिपर गिरना ही चाहते थे, तबतक सम्पूर्ण वृद्धोंके भी वृद्ध बालरूपधारी शिव परम हर्षित होकर उन भूदेवसे बोले।

बालरूपी शिवने कहा—मुनिश्रेष्ठ विश्वानर! तुमने आज मुझे संतुष्ट कर दिया है। भूदेव! मेरा मन परम प्रसन्न हो गया है, अतः अब तुम उत्तम वर माँग लो। यह सुनकर मुनिश्रेष्ठ विश्वानर कृतकृत्य हो गये

---

* विश्वानर उवाच—

एकं ब्रह्मैवाद्वितीयं समस्तं सत्यं सत्यं नेह नानास्ति किंचित्। एको रुद्रो न द्वितीयोऽवतस्थे तस्मादेकं त्वां प्रपद्ये महेशम्॥
कर्ता हर्ता त्वं हि सर्वस्य शम्भो नानारूपेष्वेकरूपोऽप्यरूपः। यद्वत्प्रत्यग्धर्म एकोऽप्यनेकस्तस्मान्नान्यं त्वां विनेशं प्रपद्ये॥
रज्जौ सर्पः शुक्तिकायां च रौप्यं नैरः पूरस्तन्मृगाख्ये मरीचौ। यद्वत्तद्वद्विष्वगेष प्रपञ्चो यस्मिन् ज्ञाते तं प्रपद्ये महेशम्॥
तोये शैत्यं दाहकत्वं च वह्नौ तापो भानौ शीतभानौ प्रसादः। पुष्पे गन्धो दुग्धमध्येऽपि सर्पिर्यत्तच्छम्भो त्वं ततस्त्वां प्रपद्ये॥
शब्दं गृह्णास्यश्रवास्त्वं हि जिघ्रस्यघ्राणस्त्वं व्यङ्घ्रिरायासि दूरात्। व्यक्षः पश्येस्त्वं रसज्ञोऽप्यजिह्वः कस्त्वां सम्यग्वेत्त्यतस्त्वां प्रपद्ये॥
नो वेद त्वामीश साक्षाद्धि वेदो नो वा विष्णुर्नो विधाताखिलस्य। नो योगीन्द्रा नेन्द्रमुख्याश्च देवा भक्तो वेद त्वामतस्त्वां प्रपद्ये॥
नो ते गोत्रं नेश जन्मापि नाख्या नो वा रूपं नैव शीलं न देशः। इत्थम्भूतोऽपीश्वरस्त्वं त्रिलोक्याः सर्वान् कामान् पूरयेस्तद् भजे त्वाम्॥
त्वत्तः सर्वं त्वं हि सर्वं स्मरारे त्वं गौरीशस्त्वं च नग्नोऽतिशान्तः। त्वं वै वृद्धस्त्वं युवा त्वं च बालस्तत् किं यत्त्वं नास्यतस्त्वां नतोऽहम्॥

(शि॰ पु॰ शतरुद्रसंहिता १३।४२—४९)

और उनका मन हर्षमग्न हो गया। तब वे उठकर बालरूपधारी शंकरजीसे बोले।

विश्वानरने कहा—प्रभावशाली महेश्वर! आप तो सर्वान्तर्यामी, ऐश्वर्यसम्पन्न, शर्व तथा भक्तोंको सब कुछ दे डालनेवाले हैं। भला, आप सर्वज्ञसे कौन-सी बात छिपी है। फिर भी आप मुझे दीनता प्रकट करनेवाली याचनाके प्रति आकृष्ट होनेके लिये क्यों कह रहे हैं। महेशान! ऐसा जानकर आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा कीजिये।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने! पवित्र व्रतमें तत्पर विश्वानरके उस वचनको सुनकर पावन शिशुरूपधारी महादेव हँसकर शुचि (विश्वानर) से बोले—'शुचे! तुमने अपने हृदयमें अपनी पत्नी शुचिष्मतीके प्रति जो अभिलाषा कर रखी है, वह निस्संदेह थोड़े ही समयमें पूर्ण हो जायगी। महामते! मैं शुचिष्मतीके गर्भसे तुम्हारा पुत्र होकर प्रकट होऊँगा। मेरा नाम गृहपति होगा। मैं परम पावन तथा समस्त देवताओंके लिये प्रिय होऊँगा। जो मनुष्य एक वर्षतक शिवजीके संनिकट तुम्हारे द्वारा कथित इस पुण्यमय अभिलाषाष्टक स्तोत्रका तीनों काल पाठ करेगा, उसकी सारी अभिलाषाएँ यह पूर्ण कर देगा। इस स्तोत्रका पाठ पुत्र, पौत्र और धनका प्रदाता, सर्वथा शान्तिकारक, सारी विपत्तियोंका विनाशक, स्वर्ग और मोक्षरूप सम्पत्तिका कर्ता तथा समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। निस्संदेह यह अकेला ही समस्त स्तोत्रोंके समान है।'

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने! इतना कहकर बालरूपधारी शम्भु, जो सत्पुरुषोंकी गति हैं, अन्तर्धान हो गये। तब विप्रवर विश्वानर भी प्रसन्न मनसे अपने घरको लौट गये। (अध्याय ८—१३)

☆

शिवजीका शुचिष्मतीके गर्भसे प्राकट्य, ब्रह्माद्वारा बालकका संस्कार करके 'गृहपति' नाम रखा जाना, नारदजीद्वारा उसका भविष्य-कथन, पिताकी आज्ञासे गृहपतिका काशीमें जाकर तप करना, इन्द्रका वर देनेके लिये प्रकट होना, गृहपतिका उन्हें ठुकराना, शिवजीका प्रकट होकर उन्हें वरदान देकर दिक्पालपद प्रदान करना तथा अग्नीश्वर-लिङ्ग और अग्निका माहात्म्य

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने! घर आकर उस ब्राह्मणने बड़े हर्षके साथ अपनी पत्नीसे वह सारा वृत्तान्त कह सुनाया। उसे सुनकर विप्रपत्नी शुचिष्मतीको महान् आनन्द प्राप्त हुआ। वह अत्यन्त प्रेमपूर्वक अपने भाग्यकी सराहना करने लगी। तदनन्तर समय आनेपर ब्राह्मणद्वारा विधिपूर्वक गर्भाधान कर्म सम्पन्न किये जानेपर वह नारी गर्भवती हुई। फिर उन विद्वान् मुनिने गर्भके स्पन्दन करनेसे पूर्व ही पुंस्त्वकी वृद्धिके लिये गृह्यसूत्रमें वर्णित विधिके अनुसार सम्यक्-रूपसे पुंसवन-संस्कार किया। तत्पश्चात् आठवाँ महीना आनेपर कृपालु विश्वानरने सुखपूर्वक प्रसव

होनेके अभिप्रायसे गर्भके रूपकी समृद्धि करनेवाला सीमन्त-संस्कार सम्पन्न कराया। तदुपरान्त ताराओंके अनुकूल होनेपर जब बृहस्पति केन्द्रवर्ती हुए और शुभ ग्रहोंका योग आया, तब शुभ लग्नमें भगवान् शंकर, जिनके मुखकी कान्ति पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान है तथा जो अरिष्टरूपी दीपकको बुझानेवाले, समस्त अरिष्टोंके विनाशक और भूः, भुवः, स्वः—तीनों लोकोंके निवासियोंको सब तरहसे सुख देनेवाले हैं, उस शुचिष्मतीके गर्भसे पुत्ररूपमें प्रकट हुए। उस समय गन्धको वहन करनेवाले वायुके वाहन मेघ दिशारूपी वधुओंके मुखपर वस्त्र-से बन गये अर्थात् चारों ओर काली घटा उमड़ आयी। वे घनघोर बादल उत्तम गन्धवाले पुष्पसमूहोंकी वर्षा करने लगे। देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं। चारों ओर दिशाएँ निर्मल हो गयीं। प्राणियोंके मनोंके साथ-साथ सरिताओंका जल निर्मल हो गया। प्राणियोंकी वाणी सर्वथा कल्याणी और प्रियभाषिणी हो उठी। सम्पूर्ण प्रसिद्ध ऋषि-मुनि तथा देवता, यक्ष, किंनर, विद्याधर आदि मङ्गल द्रव्य ले-लेकर पधारे। स्वयं ब्रह्माजीने नम्रतापूर्वक उसका जातकर्म-संस्कार किया और उस बालकके रूप तथा वेदका विचार करके यह निश्चय किया कि इसका नाम गृहपति होना चाहिये। फिर ग्यारहवें दिन उन्होंने नामकरणकी विधिके अनुसार वेदमन्त्रोंका उच्चारण करते हुए उसका 'गृहपति' ऐसा नामकरण किया। तत्पश्चात् सबके पितामह ब्रह्मा चारों वेदोंमें कथित आशीर्वादात्मक मन्त्रोंद्वारा उसका अभिनन्दन करके हंसपर आरूढ़ हो अपने लोकको चले गये। तदुपरान्त शंकर भी लौकिकी गतिका आश्रय ले उस बालककी उचित रक्षाका विधान करके अपने वाहनपर चढ़कर अपने धामको पधार गये। इसी प्रकार श्रीहरिने भी अपने लोककी राह ली। इस प्रकार सभी देवता, ऋषि-मुनि आदि भी प्रशंसा करते हुए अपने-अपने स्थानको पधार गये। तदनन्तर ब्राह्मण देवताने यथासमय सब संस्कार करते हुए बालकको वेदाध्ययन कराया। तत्पश्चात् नवाँ वर्ष आनेपर माता-पिताकी सेवामें तत्पर रहनेवाले विश्वानर-नन्दन गृहपतिको देखनेके लिये वहाँ नारदजी पधारे। बालकने माता-पितासहित नारदजीको प्रणाम किया। फिर नारदजीने बालककी हस्तरेखा, जिह्वा, तालु आदि देखकर कहा—'मुनि विश्वानर! मैं तुम्हारे पुत्रके लक्षणोंका वर्णन करता हूँ, तुम आदरपूर्वक उसे श्रवण करो। तुम्हारा यह पुत्र परम भाग्यवान् है, इसके सम्पूर्ण अङ्गोंके लक्षण शुभ हैं। किंतु इसके सर्वगुणसम्पन्न, सम्पूर्ण शुभलक्षणोंसे समन्वित और चन्द्रमाके समान सम्पूर्ण निर्मल कलाओंसे सुशोभित होनेपर भी विधाता ही इसकी रक्षा करें। इसलिये सब तरहके उपायोंद्वारा इस शिशुकी रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि विधाताके विपरीत होनेपर गुण भी दोष हो जाता है। मुझे शङ्का है कि इसके बारहवें वर्षमें इसपर बिजली अथवा अग्निद्वारा विघ्न आयेगा।' यों कहकर नारदजी जैसे आये थे, वैसे ही देवलोकको चले गये।

सनत्कुमारजी! नारदजीका कथन सुनकर पत्नीसहित विश्वानरने समझ लिया कि यह तो बड़ा भयंकर वज्रपात हुआ। फिर वे 'हाय! मैं मारा गया' यों कहकर छाती पीटने लगे और पुत्रशोकसे व्याकुल होकर

गहरी मूर्च्छाके वशीभूत हो गये। उधर शुचिष्मती भी दुःखसे पीड़ित हो अत्यन्त ऊँचे स्वरसे हाहाकार करती हुई बाढ़ मारकर रो पड़ी, उसकी सारी इन्द्रियाँ अत्यन्त व्याकुल हो उठीं। तब पत्नीके आर्तनादको सुनकर विश्वानर भी मूर्च्छा त्यागकर उठ बैठे और 'ऐं! यह क्या है? क्या हुआ?' यों उच्चस्वरसे बोलते हुए कहने लगे—'गृहपति! जो मेरा बाहर विचरनेवाला प्राण, मेरी सारी इन्द्रियोंका स्वामी तथा मेरे अन्तरात्मामें निवास करनेवाला है, कहाँ है?' तब माता-पिताको इस प्रकार अत्यन्त शोकग्रस्त देखकर शंकरके अंशसे उत्पन्न हुआ यह बालक गृहपति मुसकराकर बोला।

गृहपतिने कहा—माताजी तथा पिताजी! बताइये इस समय आपलोगोंके रोनेका क्या कारण है? किसलिये आपलोग फूट-फूटकर रो रहे हैं? कहाँसे ऐसा भय आपलोगोंको प्राप्त हुआ है? यदि मैं आपकी चरणरेणुओंसे अपने शरीरकी रक्षा कर लूँ तो मुझपर काल भी अपना प्रभाव नहीं डाल सकता; फिर इस तुच्छ, चञ्चल एवं अल्प बलवाली मृत्युकी तो बात ही क्या है। माता-पिताजी! अब आपलोग मेरी प्रतिज्ञा सुनिये—'यदि मैं आपलोगोंका पुत्र हूँ तो ऐसा प्रयत्न करूँगा जिससे मृत्यु भी भयभीत हो जायगी। मैं सत्पुरुषोंको सब कुछ दे डालनेवाले सर्वज्ञ मृत्युञ्जयकी भलीभाँति आराधना करके महाकालको भी जीत लूँगा—यह मैं आप लोगोंसे बिलकुल सत्य कह रहा हूँ।'

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने! तब वे द्विजदम्पति, जो शोकसे संतप्त हो रहे थे, गृहपतिके ऐसे वचन, जो अकालमें हुई अमृतकी घनघोर वृष्टिके समान थे, सुनकर संतापरहित हो कहने लगे—'बेटा! तू उन शिवकी शरणमें जा, जो ब्रह्मा आदिके भी कर्ता, मेघवाहन, अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले और विश्वकी रक्षामणि हैं।'

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने! माता-पिताकी आज्ञा पाकर गृहपतिने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। फिर उनकी प्रदक्षिणा करके और उन्हें बहुत तरहसे आश्वासन दे वे वहाँसे चल पड़े और उस काशीपुरीमें जा पहुँचे, जो ब्रह्मा और नारायण आदि देवोंके लिये (भी) दुष्प्राप्य, महाप्रलयके संतापका विनाश करनेवाली और विश्वनाथद्वारा सुरक्षित थी तथा जो कण्ठप्रदेशमें हारकी तरह पड़ी हुई गङ्गासे सुशोभित तथा विचित्र गुणशालिनी हरपत्नी गिरिजासे विभूषित थी। वहाँ पहुँचकर वे विप्रवर पहले मणिकर्णिकापर गये। वहाँ उन्होंने विधिपूर्वक स्नान करके भगवान् विश्वनाथका दर्शन किया। फिर बुद्धिमान् गृहपतिने परमानन्द-मग्न हो त्रिलोकीके प्राणियोंकी प्राणरक्षा करनेवाले शिवको प्रणाम किया। उस समय उनकी अञ्जलि बँधी थी और सिर झुका हुआ था। वे बारंबार उस शिवलिङ्गकी ओर देखकर हृदयमें हर्षित हो रहे थे (और यह सोच रहे थे कि) यह लिङ्ग निस्संदेह स्पष्टरूपसे आनन्दकन्द ही है। (वे कहने लगे—) अहो! आज मुझे जो सर्वव्यापी श्रीमान् विश्वनाथका दर्शन प्राप्त हुआ, इसलिये इस चराचर त्रिलोकीमें मुझसे बढ़कर धन्यवादका पात्र दूसरा कोई नहीं है। जान पड़ता है, मेरा भाग्योदय होनेसे ही उन दिनोंमें

महर्षि नारदने आकर वैसी बात कही थी, जिसके कारण आज मैं कृतकृत्य हो रहा हूँ।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! इस प्रकार आनन्दामृतरूपी रसोंद्वारा पारण करके गृहपतिने शुभ दिनमें सर्वहितकारी शिवलिङ्गकी स्थापना की और पवित्र गङ्गाजलसे भरे हुए एक सौ आठ कलशोंद्वारा शिवजीको स्नान कराकर ऐसे घोर नियमोंको स्वीकार किया, जो अकृतात्मा पुरुषोंके लिये दुष्कर थे। नारदजी ! इस प्रकार एकमात्र शिवमें मन लगाकर तपस्या करते हुए उस महात्मा गृहपतिकी आयुका एक वर्ष व्यतीत हो गया। तब जन्मसे बारहवाँ वर्ष आनेपर नारदजीके कहे हुए उस वचनको सत्य-सा करते हुए वज्रधारी इन्द्र उनके निकट पधारे और बोले—'विप्रवर ! मैं इन्द्र हूँ और तुम्हारे शुभ व्रतसे प्रसन्न होकर आया हूँ। अब तुम वर माँगो, मैं तुम्हारी मनोवाञ्छा पूर्ण कर दूँगा।'

तब गृहपतिने कहा—मघवन् ! मैं जानता हूँ, आप वज्रधारी इन्द्र हैं; परंतु वृत्रशत्रो ! मैं आपसे वर याचना करना नहीं चाहता, मेरे वरदायक तो शंकरजी ही होंगे।

इन्द्र बोले—शिशो ! शंकर मुझसे भिन्न थोड़े ही हैं। अरे ! मैं देवराज हूँ, अतः तुम अपनी मूर्खताका परित्याग करके वर माँग लो, देर मत करो।

गृहपतिने कहा—पाकशासन ! आप अहल्याका सतीत्व नष्ट करनेवाले दुराचारी पर्वत-शत्रु ही हैं न। आप जाइये; क्योंकि मैं पशुपतिके अतिरिक्त किसी अन्य देवके सामने स्पष्टरूपसे प्रार्थना करना नहीं चाहता।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! गृहपतिके उस वचनको सुनकर इन्द्रके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। वे अपने भयंकर वज्रको उठाकर उस बालकको डराने-धमकाने लगे। तब बिजलीकी ज्वालाओंसे व्याप्त उस वज्रको देखकर बालक गृहपतिको नारदजीके वाक्य स्मरण हो आये। फिर तो वे भयसे व्याकुल होकर मूर्च्छित हो गये। तदनन्तर अज्ञानान्धकारको दूर भगानेवाले गौरीपति शम्भु वहाँ प्रकट हो गये और अपने हस्तस्पर्शसे उसे जीवनदान देते हुए-से बोले—'वत्स ! उठ, उठ। तेरा कल्याण हो।' तब रात्रिके समय मुँदे हुए कमलकी तरह उसके नेत्रकमल खुल गये और उसने उठकर अपने सामने सैकड़ों सूर्योंसे भी अधिक प्रकाशमान शम्भुको उपस्थित देखा। उनके ललाटमें तीसरा नेत्र चमक रहा था, गलेमें नीला चिह्न था, ध्वजापर वृषभका स्वरूप दीख रहा था, वामाङ्गमें गिरिजादेवी विराजमान थीं। मस्तकपर चन्द्रमा सुशोभित था। बड़ी-बड़ी जटाओंसे उनकी अद्भुत शोभा हो रही थी। वे अपने आयुध त्रिशूल और आजगव धनुष धारण किये हुए थे। कपूरके समान गौरवर्णका शरीर अपनी प्रभा बिखेर रहा था, वे गजचर्म लपेटे हुए थे। उन्हें देखकर शास्त्रकथित लक्षणों तथा गुरु-वचनोंसे जब गृहपतिने समझ लिया कि ये महादेव ही हैं, तब हर्षके मारे उनके नेत्रोंमें आँसू छलक आये, गला रुँध गया और शरीर रोमाञ्चित हो उठा। वे क्षणभरतक अपने-आपको भूलकर चित्रकूट एवं त्रिपुत्रक पर्वतकी भाँति निश्चल खड़े रह गये। जब वे स्तवन करने, नमस्कार करने अथवा कुछ भी

कहनेमें समर्थ न हो सके, तब शिवजी मुसकराकर बोले।

ईश्वरने कहा—गृहपते! जान पड़ता है, तुम वज्रधारी इन्द्रसे डर गये हो। वत्स! तुम भयभीत मत होओ; क्योंकि मेरे भक्तपर इन्द्र और वज्रकी कौन कहे, यमराज भी अपना प्रभाव नहीं डाल सकते। यह तो मैंने तुम्हारी

परीक्षा ली है और मैंने ही तुम्हें इन्द्ररूप धारण करके डराया है। भद्र! अब मैं तुम्हें वर देता हूँ—आजसे तुम अग्निपदके भागी होओगे। तुम समस्त देवताओंके लिये वरदाता बनोगे। अग्ने! तुम समस्त प्राणियोंके अंदर जठराग्निरूपसे विचरण करोगे। तुम्हें दिक्पाललरूपसे धर्मराज और इन्द्रके मध्यमें राज्यकी प्राप्ति होगी। तुम्हारे द्वारा स्थापित यह शिवलिङ्ग तुम्हारे नामपर 'अग्नीश्वर' नामसे प्रसिद्ध होगा। यह सब प्रकारके तेजोंकी वृद्धि करनेवाला होगा। जो लोग इस अग्नीश्वरलिङ्गके भक्त होंगे, उन्हें बिजली और अग्निका भय नहीं रह जायगा, अग्निमान्द्य नामक रोग नहीं होगा और न कभी उनकी अकालमृत्यु ही होगी। काशीपुरीमें स्थित सम्पूर्ण समृद्धियोंके प्रदाता अग्नीश्वरकी भलीभाँति अर्चना करनेवाला भक्त यदि प्रारब्धवश किसी अन्य स्थानमें भी मृत्युको प्राप्त होगा तो भी वह वह्निलोकमें प्रतिष्ठित होगा।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने! यों कहकर शिवजीने गृहपतिके बन्धुओंको बुलाकर उनके माता-पिताके सामने उस अग्निका दिक्पति पदपर अभिषेक कर दिया और स्वयं उसी लिङ्गमें समा गये। तात! इस प्रकार मैंने तुमसे परमात्मा शंकरके गृहपति नामक अग्न्यवतारका, जो दुष्टोंको पीड़ित करनेवाला है, वर्णन कर दिया। जो सुदृढ़ पराक्रमी जितेन्द्रिय पुरुष अथवा सत्त्वसम्पन्न स्त्रियाँ अग्निप्रवेश कर जाती हैं, वे सब-के-सब अग्निसरीखे तेजस्वी होते हैं। इसी प्रकार जो ब्राह्मण अग्निहोत्रपरायण, ब्रह्मचारी तथा पञ्चाग्निका सेवन करनेवाले हैं, वे अग्निके समान वर्चस्वी होकर अग्निलोकमें विचरते हैं। जो शीतकालमें शीत-निवारणके निमित्त बोझ-की-बोझ लकड़ियाँ दान करता है अथवा जो अग्निकी इष्टि करता है, वह अग्निके संनिकट निवास करता है। जो श्रद्धापूर्वक किसी अनाथ मृतकका अग्निसंस्कार कर देता है अथवा स्वयं शक्ति न होनेपर दूसरेको प्रेरित करता है, वह अग्निलोकमें प्रशंसित होता है। द्विजातियोंके लिये परम कल्याणकारक एक अग्नि ही है। वही निश्चितरूपसे गुरु, देवता, व्रत, तीर्थ अर्थात् सब कुछ है। जितनी अपावन वस्तुएँ हैं, वे सब अग्निका संसर्ग

होनेसे उसी क्षण पावन हो जाती है; इसीलिये अग्निको पावक कहा जाता है। यह शम्भुकी प्रत्यक्ष तेजोमयी दहनात्मिका मूर्ति है, जो सृष्टि रचनेवाली, पालन करनेवाली और संहार करनेवाली है। भला, इसके बिना कौन-सी वस्तु दृष्टिगोचर हो सकती है। इनके द्वारा भक्षण किये हुए धूप, दीप, नैवेद्य, दूध, दही, घी और खाँड़ आदिका देवगण स्वर्गमें सेवन करते हैं।

(अध्याय १४-१५)

☆

शिवजीके महाकाल आदि दस अवतारोंका तथा ग्यारह रुद्र-अवतारोंका वर्णन

तदनन्तर यक्षेश्वरावतारकी बात कहकर नन्दीश्वरने कहा—मुने! अब शंकरजीके उपासनाकाण्डद्वारा सेवित महाकाल आदि दस अवतारोंका वर्णन भक्तिपूर्वक श्रवण करो। उनमें पहला अवतार 'महाकाल' नामसे प्रसिद्ध है, जो सत्पुरुषोंको भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है। उस अवतारकी शक्ति भक्तोंकी मनोवाञ्छा पूर्ण करनेवाली महाकाली हैं। दूसरा 'तार' नामक अवतार हुआ, जिसकी शक्ति तारादेवी हुईं। वे दोनों भुक्ति-मुक्तिके प्रदाता तथा अपने सेवकोंके लिये सुखदायक हैं। 'बाल भुवनेश' नामसे तीसरा अवतार हुआ। उसमें बाला भुवनेशी शिवा शक्ति हुईं, जो सज्जनोंको सुख देनेवाली हैं। चौथा भक्तोंके लिये सुखद तथा भोग-मोक्ष प्रदायक 'षोडश श्रीविद्येश' नामक अवतार हुआ और षोडशी-श्रीविद्या शिवा उसकी शक्ति हुईं। पाँचवाँ अवतार 'भैरव' नामसे प्रसिद्ध हुआ, जो सर्वदा भक्तोंकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। इस अवतारकी शक्तिका नाम है भैरवी गिरिजा, जो अपने उपासकोंकी अभीष्ट-दायिनी हैं। छठा शिवावतार 'छिन्नमस्तक' नामसे कहा जाता है और भक्तकामप्रदा गिरिजाका नाम छिन्नमस्ता है। सम्पूर्ण मनोरथोंके दाता शम्भुका सातवाँ अवतार 'धूमवान्' नामसे विख्यात हुआ। उस अवतारमें श्रेष्ठ उपासकोंकी लालसा पूर्ण करनेवाली शिवा धूमावती हुईं। शिवजीका आठवाँ सुखदायक अवतार 'बगलामुख' है। उसकी शक्ति महान् आनन्ददायिनी बगलामुखी नामसे विख्यात हुईं। नवाँ शिवावतार 'मातङ्ग' नामसे कहा जाता है। उस समय सम्पूर्ण अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाली शर्वाणी मातङ्गी हुईं। शम्भुके भुक्ति-मुक्तिरूप फल प्रदान करनेवाले दसवें अवतारका नाम 'कमल' है, जिसमें अपने भक्तोंका सर्वथा पालन करनेवाली गिरिजा कमला कहलायीं। ये ही शिवजीके दस अवतार हैं। ये सब-के-सब भक्तों तथा सत्पुरुषोंके लिये सुखदायक तथा भोग-मोक्षके प्रदाता हैं। जो लोग महात्मा शंकरके इन दसों अवतारोंकी निर्विकारभावसे सेवा करते हैं, उन्हें ये नित्य नाना प्रकारके सुख देते रहते हैं। मुने! इस प्रकार मैंने दसों अवतारोंका माहात्म्य वर्णन कर दिया। तन्त्रशास्त्रमें तो यह सर्वकामप्रद बतलाया गया है। मुने! इन शक्तियोंकी भी अद्भुत महिमा है। तन्त्र आदि शास्त्रोंमें इस महिमाका सर्वकामप्रदरूपसे वर्णन किया गया है। ये नित्य दुष्टोंको दण्ड देनेवाली और ब्रह्मतेजकी विशेष रूपसे वृद्धि करनेवाली

हैं। ब्रह्मन्! इस प्रकार मैंने तुमसे महेश्वरके महाकाल आदि दस शुभ अवतारोंका शक्तिसहित वर्णन कर दिया। जो मनुष्य समस्त शिवपर्वोंके अवसरपर इस परम पावन कथाका भक्तिपूर्वक पाठ करता है, वह शिवजीका परम प्यारा हो जाता है। (इस आख्यानका पाठ करनेसे) ब्राह्मणके ब्रह्मतेजकी वृद्धि होती है, क्षत्रिय विजय-लाभ करता है, वैश्य धनपति हो जाता है और शूद्रको सुखकी प्राप्ति होती है। स्वधर्मपरायण शिवभक्तोंको यह चरित सुननेसे सुख प्राप्त होता है और उनकी शिवभक्ति विशेषरूपसे बढ़ जाती है।

मुने! अब मैं शंकरजीके एकादश श्रेष्ठ अवतारोंका वर्णन करता हूँ, सुनो। उन्हें श्रवण करनेसे असत्यादिजनित बाधा पीड़ा नहीं पहुँचा सकती। पूर्वकालकी बात है, एक बार इन्द्र आदि समस्त देवता दैत्योंसे पराजित हो गये। तब वे भयभीत हो अपनी पुरी अमरावतीको छोड़कर भाग खड़े हुए। यों दैत्योंद्वारा अत्यन्त पीड़ित हुए वे सभी देवता कश्यपजीके पास गये। वहाँ उन्होंने परम व्याकुलतापूर्वक हाथ जोड़ एवं मस्तक झुकाकर उनके चरणोंमें अभिवादन किया और उनका भलीभाँति स्तवन करके आदर-पूर्वक अपने आनेका कारण प्रकट किया तथा दैत्योंद्वारा पराजित होनेसे उत्पन्न हुए अपने सारे दुःखोंको कह सुनाया। तात! तब उनके पिता कश्यपजी देवताओंकी उस कष्ट-कहानीको सुनकर अधिक दुःखी नहीं हुए; क्योंकि उनकी बुद्धि शिवजीमें आसक्त थी। मुने! उन शान्तबुद्धि मुनिने धैर्य धारण करके देवताओंको आश्वासन दिया और स्वयं परम हर्षपूर्वक विश्वनाथपुरी काशीको चल पड़े। वहाँ पहुँचकर उन्होंने गङ्गाजीके जलमें स्नान करके अपना नित्य-नियम पूरा किया और फिर आदरपूर्वक उमासहित सर्वेश्वर भगवान् विश्वनाथकी भलीभाँति अर्चना की। तदनन्तर शम्भुदर्शनके उद्देश्यसे एक शिवलिङ्गकी स्थापना करके वे देवताओंके हितार्थ परम प्रसन्नतापूर्वक घोर तप करने लगे। मुने! शिवजीके चरण-कमलोंमें आसक्त मनवाले धैर्यशाली मुनिवर कश्यपको जब यों तप करते हुए बहुत अधिक समय व्यतीत हो गया, तब सत्पुरुषोंके गतिस्वरूप भगवान् शंकर अपने चरणोंमें तल्लीन मनवाले कश्यप ऋषिको वर देनेके लिये वहाँ प्रकट हुए। भक्तवत्सल महेश्वर परम प्रसन्न तो थे ही, अतः वे अपने भक्त मुनिवर कश्यपसे बोले—'वर माँगो।' उन महेश्वरको देखते ही प्रसन्न बुद्धिवाले देवताओंके पिता कश्यपजी हर्षमग्न हो गये और हाथ जोड़कर उनके चरणोंमें नमस्कार करके स्तुति करते हुए यों बोले—'महेश्वर! मैं सर्वथा आपका शरणागत हूँ। स्वामिन्! देवताओंके दुःखका विनाश करके मेरी अभिलाषा पूर्ण कीजिये। देवेश! मैं पुत्रोंके दुःखसे विशेष दुःखी हूँ, अतः ईश! मुझे सुखी कीजिये; क्योंकि आप देवताओंके सहायक हैं। नाथ! महाबली दैत्योंने देवताओं और यक्षोंको पराजित कर दिया है, इसलिये शम्भो! आप मेरे पुत्ररूपसे प्रकट होकर देवताओंके लिये आनन्ददाता बनिये।'

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने! कश्यपजीके ऐसा कहनेपर सर्वेश्वर भगवान् शंकर उनसे 'तथेति—ऐसा ही होगा' यों कहकर उनके सामने वहीं अन्तर्धान हो गये।

तब कश्यप भी महान् आनन्दके साथ तुरंत ही अपने स्थानको लौट गये। वहाँ उन्होंने वह सारा वृत्तान्त आदरपूर्वक देवताओंसे कह सुनाया। तदनन्तर भगवान् शंकर अपना वचन सत्य करनेके लिये कश्यपद्वारा सुरभीके पेटसे ग्यारह रूप धारण करके प्रकट हुए। उस समय महान् उत्सव मनाया गया। सारा जगत् शिवमय हो गया। कश्यपमुनिके साथ-साथ सभी देवता हर्ष-विभोर हो गये। उनके नाम रखे गये—कपाली, पिङ्गल, भीम, विरूपाक्ष, विलोहित, शास्ता, अजपाद, अहिर्बुध्न्य, शम्भु, चण्ड तथा भव। ये ग्यारहों रुद्र सुरभीके पुत्र कहलाते हैं। ये सुखके आवासस्थान हैं तथा देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये शिवरूपसे उत्पन्न हुए। ये कश्यपनन्दन वीरवर रुद्र महान् बल-पराक्रमसम्पन्न थे; इन्होंने संग्राममें देवताओंकी सहायता करके दैत्योंका संहार कर डाला। इन्हीं रुद्रोंकी कृपासे इन्द्र आदि देवगण दैत्योंको जीतकर निर्भय हो गये। उनका मन स्वस्थ हो गया और वे अपना-अपना राज्य-कार्य सँभालने लगे। अब भी शिव-स्वरूपधारी वे सभी महारुद्र देवताओंकी रक्षाके लिये सदा स्वर्गमें विराजमान रहते हैं। तात! इस प्रकार मैंने तुमसे शंकरजीके ग्यारह रुद्र-अवतारोंका वर्णन कर दिया। ये सभी समस्त लोकोंके लिये सुखदायक हैं। यह निर्मल आख्यान सम्पूर्ण पापोंका विनाशक, धन, यश और आयुका प्रदाता तथा सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला है। (अध्याय १६—१८)

शिवजीके 'दुर्वासावतार' तथा 'हनुमदवतार'का वर्णन

नन्दीश्वरजी कहते हैं—महामुने! अब तुम शम्भुके एक दूसरे चरितको, जिसमें शंकरजी धर्मके लिये दुर्वासा होकर प्रकट हुए थे, प्रेमपूर्वक श्रवण करो। अनसूयाके पति ब्रह्मवेत्ता तपस्वी अत्रिने ब्रह्माजीके निर्देशानुसार पत्नीसहित ऋक्षकुल पर्वतपर जाकर पुत्रकामनासे घोर तप किया। उनके तपसे प्रसन्न होकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर तीनों उनके आश्रमपर गये। उन्होंने कहा कि 'हम तीनों संसारके ईश्वर हैं। हमारे अंशसे तुम्हारे तीन पुत्र होंगे, जो त्रिलोकीमें विख्यात तथा माता-पिताका यश बढ़ानेवाले होंगे।' यों कहकर वे चले गये। ब्रह्माजीके अंशसे चन्द्रमा हुए, जो देवताओंके समुद्रमें डाले जानेपर समुद्रसे प्रकट हुए थे। विष्णुके अंशसे श्रेष्ठ संन्यास-पद्धतिको प्रचलित करनेवाले 'दत्त' उत्पन्न हुए और रुद्रके अंशसे मुनिवर दुर्वासाने जन्म लिया।

इन दुर्वासाने महाराज अम्बरीषकी परीक्षा की थी। जब सुदर्शनचक्रने इनका पीछा किया, तब शिवजीके आदेशसे अम्बरीषके द्वारा प्रार्थना करनेपर चक्र शान्त हुआ। इन्होंने भगवान् रामकी परीक्षा की। कालने मुनिका वेष धारण करके श्रीरामके साथ यह शर्त की थी कि 'मेरे साथ बात करते समय श्रीरामके पास कोई न आये; जो आयेगा उसका निर्वासन कर दिया जायगा।' दुर्वासाजीने हठ करके लक्ष्मणको भेजा, तब श्रीरामने तुरंत लक्ष्मणका त्याग कर दिया। इन्होंने भगवान् श्रीकृष्णकी

परीक्षा की और उनको श्रीरुक्मिणीसहित रथमें जोता। इस प्रकार दुर्वासा मुनिने अनेक विचित्र चरित्र किये।

मुने! अब इसके बाद तुम हनुमान्‌जीका चरित्र श्रवण करो। हनुमद्रूपसे शिवजीने बड़ी उत्तम लीलाएँ की हैं। विप्रवर! इसी रूपसे महेश्वरने भगवान् रामका परम हित किया था। वह सारा चरित्र सब प्रकारके सुखोंका दाता है, उसे तुम प्रेमपूर्वक सुनो। एक समयकी बात है, जब अत्यन्त अद्भुत लीला करनेवाले गुणशाली भगवान् शम्भुको विष्णुके मोहिनीरूपका दर्शन प्राप्त हुआ, तब वे कामदेवके बाणोंसे आहत हुएकी तरह क्षुब्ध हो उठे। उस समय उन परमेश्वरने रामकार्यकी सिद्धिके लिये अपना वीर्यपात किया। तब सप्तर्षियोंने उस वीर्यको पत्रपुटकमें स्थापित कर लिया, क्योंकि शिवजीने ही रामकार्यके लिये आदरपूर्वक उनके मनमें प्रेरणा की थी। तत्पश्चात् उन महर्षियोंने शम्भुके उस वीर्यको रामकार्यकी सिद्धिके लिये गौतमकन्या अञ्जनीमें कानके रास्ते स्थापित कर दिया। तब समय आनेपर उस गर्भसे शम्भु महान् बल-पराक्रमसम्पन्न वानर-शरीर धारण करके उत्पन्न हुए, उनका नाम हनुमान् रखा गया। महाबली कपीश्वर हनुमान् जब शिशु ही थे, उसी समय उदय होते हुए सूर्यबिम्बको छोटा-सा फल समझकर तुरंत ही निगल गये। जब देवताओंने उनकी प्रार्थना की, तब उन्होंने उसे महाबली सूर्य जानकर उगल दिया। तब देवर्षियोंने उन्हें शिवका अवतार माना और बहुत-सा वरदान दिया। तदनन्तर हनुमान् अत्यन्त हर्षित होकर अपनी माताके पास गये और उन्होंने यह सारा वृत्तान्त आदरपूर्वक कह सुनाया। फिर माताकी आज्ञासे धीर-वीर कपि हनुमान्‌ने नित्य सूर्यके निकट जाकर उनसे अनायास ही

सारी विद्याएँ सीख लीं। तदनन्तर रुद्रके अंशभूत कपिश्रेष्ठ हनुमान् सूर्यकी आज्ञासे सूर्यांशसे उत्पन्न हुए सुग्रीवके पास चले गये। इसके लिये उन्हें अपनी मातासे भी अनुज्ञा मिल चुकी थी।

तदनन्तर नन्दीश्वरने भगवान् रामका सम्पूर्ण चरित्र संक्षेपसे वर्णन करके कहा—'मुने! इस प्रकार कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌ने सब तरहसे श्रीरामका कार्य पूरा किया, नाना प्रकारकी लीलाएँ कीं, असुरोंका मान-मर्दन किया, भूतलपर रामभक्तिकी स्थापना की और स्वयं भक्ताग्रगण्य होकर सीता-रामको सुख प्रदान किया। वे रुद्रावतार ऐश्वर्यशाली हनुमान् लक्ष्मणके प्राणदाता, सम्पूर्ण देवताओंके गर्वहारी और भक्तोंका उद्धार करनेवाले हैं। महावीर हनुमान् सदा रामकार्यमें तत्पर रहनेवाले, लोकमें

'रामदूत' नामसे विख्यात, दैत्योंके संहारक और भक्तवत्सल हैं। तात ! इस प्रकार मैंने हनूमान्‌जीका श्रेष्ठ चरित—जो धन, कीर्ति और आयुका वर्धक तथा सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंका दाता है—तुमसे वर्णन कर दिया। जो मनुष्य इस चरितको भक्तिपूर्वक सुनता है अथवा समाहित चित्तसे दूसरेको सुनाता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण भोगोंको भोगकर अन्तमें परम मोक्षको प्राप्त कर लेता है।

(अध्याय १९-२०)

☆

शिवजीके पिप्पलाद-अवतारके प्रसङ्गमें देवताओंकी दधीचि मुनिसे अस्थि-याचना, दधीचिका शरीरत्याग, वज्र-निर्माण तथा उसके द्वारा वृत्रासुरका वध, सुवर्चाका देवताओंको शाप, पिप्पलादका जन्म और उनका विस्तृत वृत्तान्त

तदनन्तर महेशावतार तथा वृषेशावतारका चरित सुनाकर नन्दीश्वरने कहा—महाबुद्धिमान् सनत्कुमारजी ! अब तुम अत्यन्त आह्लादपूर्वक महेश्वरके 'पिप्पलाद' नामक परमोत्कृष्ट अवतारका वर्णन श्रवण करो। यह उत्तम आख्यान भक्तिकी वृद्धि करनेवाला है। मुनीश्वर ! एक समय दैत्योंने वृत्रासुरकी सहायतासे इन्द्र आदि समस्त देवताओंको पराजित कर दिया। तब उन सभी देवताओंने सहसा दधीचिके आश्रममें अपने-अपने अस्त्रोंको फेंककर तत्काल ही हार मान ली। तत्पश्चात् मारे जाते हुए वे इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता तथा देवर्षि शीघ्र ही ब्रह्मलोकमें जा पहुँचे और वहाँ (ब्रह्माजीसे) उन्होंने अपना यह दुखड़ा कह सुनाया। देवताओंका वह कथन सुनकर लोकपितामह ब्रह्माने सारा रहस्य यथार्थरूपसे प्रकट कर दिया कि 'यह सब त्वष्टाकी करतूत है, त्वष्टाने ही तुमलोगोंका वध करनेके लिये तपस्याद्वारा इस महातेजस्वी वृत्रासुरको उत्पन्न किया है। यह दैत्य महान् आत्मबलसे सम्पन्न तथा समस्त दैत्योंका अधिपति है। अतः अब ऐसा प्रयत्न करो जिससे इसका वध हो सके। बुद्धिमान् देवराज ! मैं धर्मके कारण इस विषयमें एक उपाय बतलाता हूँ, सुनो। जो दधीचि नामवाले महामुनि हैं, वे तपस्वी और जितेन्द्रिय हैं। उन्होंने पूर्वकालमें शिवजीकी समाराधना करके वज्र-सरीखी अस्थियाँ हो जानेका वर प्राप्त किया है। अतः तुमलोग उनसे उनकी हड्डियोंके लिये याचना करो। वे अवश्य दे देंगे। फिर उन अस्थियोंसे वज्रदण्डका निर्माण करके तुम निश्चय ही उससे वृत्रासुरको मार डालना।'

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! ब्रह्माका यह वचन सुनकर इन्द्र देवगुरु बृहस्पति तथा देवताओंको साथ ले तुरंत ही दधीचि ऋषिके उत्तम आश्रमपर आये। वहाँ इन्द्रने सुवर्चासहित दधीचि मुनिका दर्शन किया और आदरपूर्वक हाथ जोड़कर उन्हें नमस्कार किया; फिर देवगुरु बृहस्पति तथा अन्य देवताओंने भी नम्रतापूर्वक उन्हें सिर झुकाया। दधीचि मुनि विद्वानोंमें श्रेष्ठ तो थे ही, वे तुरंत ही उसके अभिप्रायको ताड़

गये। तब उन्होंने अपनी पत्नी सुवर्चाको अपने आश्रमसे अन्यत्र भेज दिया। तत्पश्चात् देवताओंसहित देवराज इन्द्र, जो स्वार्थ-साधनमें बड़े दक्ष हैं, अर्थशास्त्रका आश्रय लेकर मुनिवरसे बोले।

इन्द्रने कहा—'मुने! आप महान् शिवभक्त, दाता तथा शरणागतरक्षक हैं; इसीलिये हम सभी देवता तथा देवर्षि त्वष्टाद्वारा अपमानित होनेके कारण आपकी शरणमें आये हैं। विप्रवर! आप अपनी वज्रमयी अस्थियाँ हमें प्रदान कीजिये; क्योंकि आपकी हड्डीसे वज्रका निर्माण करके मैं उस देवद्रोहीका वध करूँगा।' इन्द्रके यों कहनेपर परोपकारपरायण दधीचि मुनिने अपने स्वामी शिवका ध्यान करके अपना शरीर छोड़ दिया। उनके समस्त बन्धन नष्ट हो चुके थे, अतः वे तुरंत ही ब्रह्मलोकको चले गये। उस समय वहाँ पुष्पोंकी वर्षा होने लगी और सभी लोग आश्चर्यचकित हो गये। तदनन्तर इन्द्रने शीघ्र ही सुरभि गौको बुलाकर उस शरीरको चटवाया और उन हड्डियोंसे अस्त्र-निर्माण करनेके लिये विश्वकर्माको आदेश दिया। तब इन्द्रकी आज्ञा पाकर विश्वकर्माने शिवजीके तेजसे सुदृढ़ हुई मुनिकी वज्रमयी हड्डियोंसे सम्पूर्ण अस्त्रोंकी कल्पना की। उनके रीढ़की हड्डीसे वज्र और ब्रह्मशिर नामक बाण बनाया तथा अन्य अस्थियोंसे अन्यान्य बहुत-से अस्त्रोंका निर्माण किया। तब शिवजीके तेजसे उत्कर्षको प्राप्त हुए इन्द्रने उस वज्रको लेकर क्रोधपूर्वक वृत्रासुरपर आक्रमण किया, ठीक उसी तरह जैसे रुद्रने यमराजपर धावा किया था। फिर तो कवच आदिसे भलीभाँति सुरक्षित हुए इन्द्रने तुरंत ही पराक्रम प्रकट करके उस वज्रद्वारा वृत्रासुरके पर्वतशिखर-सरीखे सिरको काट गिराया। तात! उस समय स्वर्गवासियोंने महान् विजयोत्सव मनाया, इन्द्रपर पुष्पोंकी वृष्टि होने लगी और सभी देवता उनकी स्तुति करने लगे। तदनन्तर महान् आत्मबलसे सम्पन्न दधीचि मुनिकी पतिव्रता पत्नी सुवर्चा पतिके आज्ञानुसार अपने आश्रमके भीतर गयी। वहाँ देवताओंके लिये पतिको मरा हुआ जानकर वह देवताओंको शाप देते हुए बोली।

सुवर्चाने कहा—'अहो! इन्द्रसहित ये सभी देवता बड़े दुष्ट हैं और अपना कार्य सिद्ध करनेमें निपुण, मूर्ख तथा लोभी हैं; इसलिये ये सब-के-सब आजसे मेरे शापसे पशु हो जायँ।' इस प्रकार उस तपस्वी मुनिपत्नी सुवर्चाने उन इन्द्र आदि समस्त देवताओंको शाप दे दिया। तत्पश्चात् उस पतिव्रताने पतिलोकमें जानेका विचार किया। फिर तो मनस्विनी सुवर्चाने परम पवित्र लकड़ियोंद्वारा एक चिता तैयार की। उसी समय शंकरजीकी प्रेरणासे सुखदायिनी आकाशवाणी हुई, वह उस मुनिपत्नी सुवर्चाको आश्वासन देती हुई बोली।

आकाशवाणीने कहा—प्राज्ञे! ऐसा साहस मत करो, मेरी उत्तम बात सुनो। देवि! तुम्हारे उदरमें मुनिका तेज वर्तमान है, तुम उसे यत्नपूर्वक उत्पन्न करो। पीछे तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा करना; क्योंकि शास्त्रका ऐसा आदेश है कि गर्भवतीको अपना शरीर नहीं जलाना चाहिये अर्थात् सती नहीं होना चाहिये।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुनीश्वर! यों कहकर वह आकाशवाणी उपराम हो गयी।

उसे सुनकर वह मुनिपत्नी क्षणभरके लिये विस्मयमें पड़ गयी। परंतु उस सती-साध्वी सुवर्चाको तो पतिलोककी प्राप्ति ही अभीष्ट थी, अतः उसने बैठकर पत्थरसे अपने उदरको विदीर्ण कर डाला। तब उसके पेटसे मुनिवर दधीचिका वह गर्भ बाहर निकल आया। उसका शरीर परम दिव्य और प्रकाशमान था तथा वह अपनी प्रभासे दसों दिशाओंको उद्भासित कर रहा था। तात! दधीचिके उत्तम तेजसे प्रादुर्भूत हुआ वह गर्भ अपनी लीला करनेमें समर्थ साक्षात् रुद्रका अवतार था। मुनिप्रिया सुवर्चाने दिव्य-स्वरूपधारी अपने उस पुत्रको देखकर मन-ही-मन समझ लिया कि यह रुद्रका अवतार है। फिर तो वह महासाध्वी परमानन्दमग्न हो गयी और शीघ्र ही उसे नमस्कार करके उसकी स्तुति करने लगी। मुनीश्वर! उसने उस स्वरूपको अपने हृदयमें धारण कर लिया। तदनन्तर पतिलोककी कामनावाली विमलेक्षणा माता सुवर्चा मुसकराकर अपने उस पुत्रसे परम स्नेहपूर्वक बोली।

सुवर्चाने कहा—तात परमेशान! तुम इस अश्वत्थ वृक्षके निकट चिरकालतक स्थित रहो। महाभाग! तुम समस्त प्राणियोंके लिये सुखदाता होओ और अब मुझे प्रेमपूर्वक पतिलोकमें जानेके लिये आज्ञा दो। वहाँ पतिके साथ रहती हुई मैं रुद्ररूपधारी तुम्हारा ध्यान करती रहूँगी।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने! साध्वी सुवर्चाने अपने पुत्रसे यों कहकर परम समाधिद्वारा पतिका ही अनुगमन किया। मुनिवर! इस प्रकार दधीचिपत्नी सुवर्चा शिवलोकमें पहुँचकर अपने पतिसे जा मिली और आनन्दपूर्वक शंकरजीकी सेवा करने लगी। तात! इतनेमें ही हर्षमें भरे हुए इन्द्रसहित समस्त देवता मुनियोंके साथ आमन्त्रित हुएकी तरह शीघ्रतासे वहाँ आ पहुँचे। तब प्रसन्न बुद्धिवाले ब्रह्माने उस बालकका नाम पिप्पलाद रखा। फिर सभी देवता महोत्सव मनाकर अपने-अपने धामको चले गये। तदनन्तर महान् ऐश्वर्यशाली रुद्रावतार पिप्पलाद उसी अश्वत्थके नीचे लोकोंकी हितकामनासे चिरकालिक तपमें प्रवृत्त हुए। लोकाचारका अनुसरण करनेवाले पिप्पलादका यों तपस्या करते हुए बहुत बड़ा समय व्यतीत हो गया।

तदनन्तर पिप्पलादने राजा अनरण्यकी कन्या पद्मासे विवाह करके तरुण हो उसके साथ विलास किया। उन मुनिके दस पुत्र उत्पन्न हुए, जो सब-के-सब पिताके ही समान महात्मा और उग्र तपस्वी थे। वे अपनी माता पद्माके सुखकी वृद्धि करनेवाले हुए। इस प्रकार महाप्रभु शंकरके लीलावतार मुनिवर पिप्पलादने महान् ऐश्वर्यशाली तथा नाना प्रकारकी लीलाएँ कीं। उन कृपालुने जगत्में शनैश्चरकी पीड़ाको, जिसका निवारण करना सबकी शक्तिके बाहर था, देखकर लोगोंको प्रसन्नतापूर्वक यह वरदान दिया कि 'जन्मसे लेकर सोलह वर्षतककी आयुवाले मनुष्योंको तथा शिवभक्तोंको शनिकी पीड़ा नहीं हो सकती। यह मेरा वचन सर्वथा सत्य है। यदि कहीं शनि मेरे वचनका अनादर करके उन मनुष्योंको पीड़ा पहुँचायेगा तो वह निस्संदेह भस्म हो जायगा।' तात! इसीलिये उस भयसे भीत हुआ ग्रहश्रेष्ठ शनैश्चर विकृत होनेपर भी वैसे मनुष्योंको कभी पीड़ा नहीं पहुँचाता। मुनिवर! इस प्रकार मैंने लीलासे

मनुष्यरूप धारण करनेवाले पिप्पलादका उत्तम चरित तुम्हें सुना दिया, यह सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। गाधि, कौशिक और महामुनि पिप्पलाद—ये तीनों स्मरण किये जानेपर शनैश्चरजनित पीड़ाका नाश कर देते हैं। वे मुनिवर दधीचि, जो परम ज्ञानी, सत्पुरुषोंके प्रिय तथा महान् शिवभक्त थे, धन्य हैं, जिनके यहाँ स्वयं आत्मज्ञानी महेश्वर पिप्पलाद नामक पुत्र होकर उत्पन्न हुए। तात! यह आख्यान निर्दोष, स्वर्गप्रद, कुग्रहजनित दोषोंका संहारक, सम्पूर्ण मनोरथोंका पूरक और शिवभक्तिकी विशेष वृद्धि करनेवाला है।

(अध्याय २१—२५)

☆

भगवान् शिवके द्विजेश्वरावतारकी कथा—राजा भद्रायु तथा रानी कीर्तिमालिनीकी धार्मिक दृढ़ताकी परीक्षा

तदनन्तर वैश्यनाथ अवतारका वर्णन करके नन्दीश्वरने द्विजेश्वरावतारका प्रसङ्ग चलाया। वे बोले—तात! पहले जिन नृपश्रेष्ठ भद्रायुका परिचय दिया गया था और जिनपर भगवान् शिवने ऋषभरूपसे अनुग्रह किया था, उन्हीं नरेशके धर्मकी परीक्षा लेनेके लिये वे भगवान् फिर द्विजेश्वररूपसे प्रकट हुए थे। ऋषभके प्रभावसे रणभूमिमें शत्रुओंपर विजय पाकर शक्तिशाली राजकुमार भद्रायु जब राज्य-सिंहासनपर आरूढ़ हुए, तब राजा चन्द्राङ्गद तथा रानी सीमन्तिनीकी बेटी सती-साध्वी कीर्तिमालिनीके साथ उनका विवाह हुआ। किसी समय राजा भद्रायुने अपनी धर्मपत्नीके साथ वसन्त ऋतुमें वन-विहार करनेके लिये एक गहन वनमें प्रवेश किया। उनकी पत्नी शरणागतजनोंका पालन करनेवाली थी। राजाका भी ऐसा ही नियम था। उन राजदम्पतिकी धर्ममें कितनी दृढ़ता है, इसकी परीक्षाके लिये पार्वतीसहित भगवान् शिवने एक लीला रची। शिवा और शिव उस वनमें ब्राह्मणी और ब्राह्मणके रूपमें प्रकट हुए। उन दोनोंने लीलापूर्वक एक मायामय व्याघ्रका निर्माण किया। वे दोनों भयसे विह्वल हो व्याघ्रसे थोड़ी ही दूर आगे रोते-चिल्लाते भागने लगे और व्याघ्र उनका पीछा करने लगा। राजाने उन्हें इस अवस्थामें देखा। वे ब्राह्मण-दम्पति भी भयसे विह्वल हो महाराजकी शरणमें गये और इस प्रकार बोले।

ब्राह्मण-दम्पतिने कहा—महाराज! हमारी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। यह व्याघ्र हम दोनोंको खा जानेके लिये आ रहा है। समस्त प्राणियोंको कालके समान भय देनेवाला यह हिंसक प्राणी हमें अपना आहार बनाये, इसके पूर्व ही आप हम दोनोंको बचा लीजिये।

उन दोनोंका यह करुणक्रन्दन सुनकर महावीर राजाने ज्यों ही धनुष उठाया, त्यों ही वह व्याघ्र उनके निकट आ पहुँचा। उसने ब्राह्मणीको पकड़ लिया। वह बेचारी 'हा नाथ! हा नाथ! हा प्राणवल्लभ! हा शम्भो! हा जगद्गुरो!' इत्यादि कहकर रोने और विलाप करने लगी। व्याघ्र बड़ा भयानक था। उसने ज्यों ही ब्राह्मणीको अपना ग्रास बनानेकी चेष्टा की, त्यों ही

भद्रायुने तीखे बाणोंसे उसके मर्ममें आघात किया; परंतु उन बाणोंसे उस महाबली व्याघ्रको तनिक भी व्यथा नहीं हुई। वह ब्राह्मणीको बलपूर्वक घसीटता हुआ तत्काल दूर निकल गया। अपनी पत्नीको बाघके पंजेमें पड़ी देख ब्राह्मणको बड़ा दुःख हुआ और वह बारंबार रोने लगा। देरतक रोकर उसने राजा भद्रायुसे कहा—'राजन्! तुम्हारे वे बड़े-बड़े अस्त्र कहाँ हैं? दुःखियोंकी रक्षा करनेवाला तुम्हारा विशाल धनुष कहाँ है? सुना था तुममें बारह हजार बड़े-बड़े हाथियोंका बल है। यह क्या हुआ? तुम्हारे शङ्ख, खड्ग तथा मन्त्रास्त्र-विद्यासे क्या लाभ हुआ? दूसरोंको क्षीण होनेसे बचाना क्षत्रियका परम धर्म है। धर्मज्ञ राजा अपना धन और प्राण देकर भी शरणमें आये हुए दीन-दुःखियोंकी रक्षा करते हैं। जो पीड़ितोंकी प्राणरक्षा नहीं कर सकते, ऐसे लोगोंके लिये तो जीनेकी अपेक्षा मर जाना ही अच्छा है।'

इस प्रकार ब्राह्मणका विलाप और उसके मुखसे अपने पराक्रमकी निन्दा सुनकर राजाने शोकसे मन-ही-मन इस प्रकार विचार किया—'अहो! आज भाग्यके उलट-फेरसे मेरा पराक्रम नष्ट हो गया। मेरे धर्मका भी नाश हो गया। अतः अब मेरी सम्पदा, राज्य और आयुका भी निश्चय ही नाश हो जायगा।' यों विचारकर राजा भद्रायु ब्राह्मणके चरणोंमें गिर पड़े और उसे धीरज बँधाते हुए बोले—'ब्रह्मन्! मेरा पराक्रम नष्ट हो गया है। महामते! मुझ क्षत्रियाधमपर कृपा करके शोक छोड़ दीजिये। मैं आपको मनोवाञ्छित पदार्थ दूँगा। यह राज्य, यह रानी और मेरा यह शरीर सब कुछ आपके अधीन है। बोलिये, आप क्या चाहते हैं?'

ब्राह्मण बोले—राजन्! अंधेको दर्पणसे क्या काम? जो भिक्षा माँगकर जीवन-निर्वाह करता हो, वह बहुत-से घर लेकर क्या करेगा। जो मूर्ख है, उसे पुस्तकसे क्या काम तथा जिसके पास स्त्री नहीं है, वह धन लेकर क्या करेगा? मेरी पत्नी चली गयी, मैंने कभी काम-सुखका उपभोग नहीं किया। अतः कामभोगके लिये आप अपनी इस बड़ी रानीको मुझे दे दीजिये।

राजाने कहा—ब्रह्मन्! क्या यही तुम्हारा धर्म है? क्या तुम्हें गुरुने यही उपदेश किया है? क्या तुम नहीं जानते कि परायी स्त्रीका स्पर्श स्वर्ग एवं सुयशकी हानि करनेवाला है? परस्त्रीके उपभोगसे जो पाप कमाया जाता है, उसे सैकड़ों प्रायश्चित्तोंद्वारा भी धोया नहीं जा सकता।

ब्राह्मण बोले—राजन्! मैं अपनी तपस्यासे भयंकर ब्रह्महत्या और मदिरापान-जैसे पापका भी नाश कर डालूँगा। फिर परस्त्री-संगम किस गिनतीमें है। अतः आप अपनी इस भार्याको मुझे अवश्य दे दीजिये अन्यथा आप निश्चय ही नरकमें पड़ेंगे।

ब्राह्मणकी इस बातपर राजाने मन-ही-मन विचार किया कि ब्राह्मणके प्राणोंकी रक्षा न करनेसे महापाप होगा, अतः इससे बचनेके लिये पत्नीको दे डालना ही श्रेष्ठ है। इस श्रेष्ठ ब्राह्मणको अपनी पत्नी देकर मैं पापसे मुक्त हो शीघ्र ही अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा। मन-ही-मन ऐसा निश्चय करके राजाने आग जलायी और ब्राह्मणको बुलाकर उसे अपनी पत्नीको दे दिया।

तत्पश्चात् स्नान करके पवित्र हो देवताओंको प्रणाम करके उन्होंने अग्निकी दो बार परिक्रमा की और एकाग्रचित्त होकर भगवान् शिवका ध्यान किया। इस प्रकार राजाको अग्निमें गिरनेके लिये उद्यत देख जगत्पति भगवान् विश्वनाथ सहसा वहाँ प्रकट हो गये। उनके पाँच मुख थे। मस्तकपर चन्द्रकला आभूषणका काम दे रही थी। कुछ-कुछ पीले रंगकी जटा लटकी हुई थी। वे कोटि-कोटि सूर्योंके समान तेजस्वी थे। हाथोंमें त्रिशूल, खट्वाङ्ग, कुठार, डाल, मृग, अभय, वरद और पिनाक धारण किये, बैलकी पीठपर बैठे हुए भगवान् नीलकण्ठको राजाने अपने सामने प्रत्यक्ष देखा। उनके दर्शनजनित आनन्दसे युक्त हो राजा भद्रायुने हाथ जोड़कर स्तवन किया।

राजाके स्तुति करनेपर पार्वतीके साथ प्रसन्न हुए महेश्वरने कहा—राजन्! तुमने किसी अन्यका चिन्तन न करके जो सदा-सर्वदा मेरा पूजन किया है, तुम्हारी इस भक्तिके कारण और तुम्हारे द्वारा की हुई इस पवित्र स्तुतिको सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। तुम्हारे भक्तिभावकी परीक्षाके लिये मैं स्वयं ब्राह्मण बनकर आया था। जिसे व्याघ्रने ग्रस लिया था, वह ब्राह्मणी और कोई नहीं, ये गिरिराजनन्दिनी उमादेवी ही थीं। तुम्हारे बाण मारनेसे भी जिसके शरीरको चोट नहीं पहुँची, वह व्याघ्र मायानिर्मित था। तुम्हारे धैर्यको देखनेके लिये ही मैंने तुम्हारी पत्नीको माँगा था, इस कीर्तिमालिनीकी और तुम्हारी भक्तिसे मैं संतुष्ट हूँ। तुम कोई दुर्लभ वर माँगो, मैं उसे दूँगा।

राजा बोले—देव! आप साक्षात् परमेश्वर हैं। आपने सांसारिक तापसे घिरे हुए मुझ अधमको जो प्रत्यक्ष दर्शन दिया है, यही मेरे लिये महान् वर है। देव! आप वरदाताओंमें श्रेष्ठ हैं। आपसे मैं दूसरा कोई वर नहीं माँगता। मेरी यही इच्छा है कि मैं, मेरी रानी, मेरे माता-पिता, पद्माकर वैश्य और उसके पुत्र सुनय—इन सबको आप अपना पार्श्ववर्ती सेवक बना लीजिये।

तत्पश्चात् रानी कीर्तिमालिनीने प्रणाम करके अपनी भक्तिसे भगवान् शंकरको प्रसन्न किया और यह उत्तम वर माँगा—'महादेव! मेरे पिता चन्द्राङ्गद और माता सीमन्तिनी इन दोनोंको भी आपके समीप निवास प्राप्त हो।' भक्तवत्सल भगवान् गौरीपतिने प्रसन्न होकर 'एवमस्तु' कहा और उन दोनों पति-पत्नीको इच्छानुसार वर देकर वे क्षणभरमें अन्तर्धान हो गये। इधर राजाने भगवान् शंकरका प्रसाद प्राप्त करके रानी कीर्तिमालिनीके साथ प्रिय विषयोंका उपभोग किया और दस हजार वर्षोंतक राज्य करनेके पश्चात् अपने पुत्रोंको राज्य देकर उन्होंने शिवजीके परमपदको प्राप्त किया। राजा और रानी दोनों ही भक्तिपूर्वक महादेवजीकी पूजा करके भगवान् शिवके धामको प्राप्त हुए। यह परम पवित्र, पाप-नाशक एवं अत्यन्त गोपनीय भगवान् शिवका विचित्र गुणानुवाद जो विद्वानोंको सुनाता है अथवा स्वयं भी शुद्धचित्त होकर पढ़ता है, वह इस लोकमें भोग-ऐश्वर्यको प्राप्तकर अन्तमें भगवान् शिवको प्राप्त होता है।

(अध्याय २६-२७)

☆